ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन

प्रवचनसार गाथा १३

अब, ज्ञेयतत्त्व का प्रज्ञापन करते हैं अर्थात् ज्ञेयतत्त्व बतलाते हैं। उसमें (प्रथम) पदार्थ का सम्यक् (यथार्थ) द्रव्यगुणपर्यायस्वरूप वर्णन करते हैं :ह्न

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया।।१३।।

(हरिगीत)

गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही हैं परसमय।।१३।।

अन्वयार्थ :ह्न **[** अर्थः खलु **]** पदार्थ **[** द्रव्यमयः **]** द्रव्यस्वरूप है; **[** द्रव्याणि **]** द्रव्य **[** गुणात्मकानि **]** गुणात्मक **[** भणितानि **]** कहे गये हैं; **[** तैः तु पुनः **]** और द्रव्य तथा गुणों से **[** पर्यायाः **]** पर्यायें होती हैं। **[** पर्ययमूढाः हि **]** पर्यायमूढ़ जीव ही **[** परसमयाः **]** परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं।

टीका :ह्न इस विश्व में जो कोई जानने में आनेवाला पदार्थ है, वह समस्त ही [1]विस्तारसामान्यसमुदायात्मक और [2]आयतसामान्यसमुदायात्मक द्रव्य से रचित होने से द्रव्यमय (द्रव्यस्वरूप) है। और

१. विस्तारसामान्य समुदाय = विस्तारसामान्यस्वरूप समुदाय। विस्तार का अर्थ है चौड़ाई। द्रव्य की चौड़ाई की अपेक्षा के (- एकसाथ रहनेवाले, सहभावी) भेदों को (विस्तारविशेषों को) गुण कहा जाता है; जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र इत्यादि जीवद्रव्य के विस्तार विशेष अर्थात् गुण हैं। उन विस्तारविशेषों में रहनेवाले विशेषत्व को गौण करें तो इन सबमें एक आत्मस्वरूप सामान्यत्व भासित होता है। यह विस्तारसामान्य (अथवा विस्तारसामान्य समुदाय) वह द्रव्य है।

२. आयत सामान्य समुदाय = आयत सामान्य रूप समुदाय। आयत का अर्थ है लम्बाई अर्थात् कालापेक्षितप्रवाह। द्रव्य के लम्बाई की अपेक्षा के (एक के बाद एक प्रवर्तमान, क्रमभावी, कालापेक्षित) भेदों को (आयत विशेषों को) पर्याय कहा जाता है। उन क्रमभावी पर्यायों में प्रवर्तमान विशेषत्व को गौण करें तो एक द्रव्यत्वरूप सामान्यत्व ही भासित होता है। यह आयतसामान्य (अथवा आयतसामान्य समुदाय) वह द्रव्य है।

[1]द्रव्य एक जिनका आश्रय है, ऐसे विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से रचित (गुणों से बने हुए) होने से गुणात्मक है। और पर्यायें ह्न जो कि आयतविशेषस्वरूप हैं, वे ह्न जिनके लक्षण (ऊपर) कहे गये हैं, ऐसे द्रव्यों से तथा गुणों से रचित होने से द्रव्यात्मक भी हैं और गुणात्मक भी हैं। उसमें, अनेकद्रव्यात्मक एकता की [2]प्रतिपत्ति की कारणभूत द्रव्यपर्याय है। वह दो प्रकार है (१) समानजातीय और (२) असमानजातीय। उसमें (१) समानजातीय वह है ह्न जैसे कि अनेक पुद्गलात्मक [3]द्विअणुक, त्रिअणुक इत्यादि; (२) असमानजातीय वह है ह्न जैसे कि जीवपुद्गलात्मक देव, मनुष्य इत्यादि। गुण द्वारा आयत की अनेकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत गुणपर्याय है। वह भी दो प्रकार है। (१) स्वभावपर्याय और (२) विभावपर्याय। उसमें समस्त द्रव्यों के अपने-अपने अगुरुलघुगुण द्वारा प्रतिसमय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप अनेकत्व की वह स्वभावपर्याय है; (२) रूपादि के या ज्ञानादि के [4]स्व-पर के कारण प्रवर्तमान [5]पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभाव विशेष रूप अनेकत्व की [6]आपत्ति विभावपर्याय है।

अब यह (पूर्वोक्त कथन) दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं :ह्न

जैसे सम्पूर्ण [7]पट, अवस्थायी (स्थिर) विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते (बहते, प्रवाहरूप) हुए ऐसे आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ तन्मय ही है, उसीप्रकार सम्पूर्ण पदार्थ द्रव्य नामक अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते हुए आयत सामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ द्रव्यमय ही है। और जैसे पट में, अवस्थायी विस्तार सामान्यसमुदाय या दौड़ते हुए आयतसामान्यसमुदाय गुणों से रचित होता हुआ गुणों से पृथक् अप्राप्त होने से गुणात्मक ही है; उसीप्रकार पदार्थों में, अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय या दौड़ता हुआ आयतसामान्य समुदाय - जिसका नाम 'द्रव्य' है वह - गुणों से रचित

१. अनन्तगुणों का आश्रय एक द्रव्य है। २. प्रतिपत्ति=प्राप्ति; ज्ञान; स्वीकार।
३. द्विअणुक = दो अणुओं से बना हुआ स्कंध। ४. स्व उपादान और पर निमित्त है।
५. पूर्वोत्तर = पहले की और बाद की। ६. आपत्ति = आपतित, आ पड़ना। ७. पट = वस्त्र।

होता हुआ गुणों से पृथक् अप्राप्य होने से गुणात्मक ही है और जैसे अनेकपटात्मक (एक से अधिक वस्त्रों से निर्मित) [8]द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसे समानजातीय द्रव्यपर्याय है, उसीप्रकार अनेक पुद्गलात्मक द्वि-अणुक, त्रि-अणुक ऐसी समानजातीय द्रव्यपर्याय है; और जैसे अनेक रेशमी और सूती पटों के बने हुए द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है, उसीप्रकार अनेक जीव पुद्गलात्मक देव, मनुष्य ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। और जैसे कभी पट में अपने स्थूल अगुरुलघुगुण द्वारा कालक्रम से प्रवर्तमान अनेक प्रकाररूप से परिणमित होने के कारण अनेकत्व की प्रतिपत्ति गुणात्मक स्वभावपर्याय है, उसीप्रकार समस्त द्रव्यों में अपने-अपने सूक्ष्म अगुरुलघुगुण द्वारा प्रति समय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप अनेकत्व की अनुभूति, वह गुणात्मक स्वभाव पर्याय है; और जैसे पट में, रूपादिक के स्व-पर के कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेष रूप अनेकत्व की आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है। उसीप्रकार समस्त द्रव्यों में, रूपादि के या ज्ञानादि के स्व-पर के कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभाव विशेष रूप अनेकत्व की आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है।

वास्तव में यह, सर्व पदार्थों के द्रव्यगुणपर्यायस्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था भली-उत्तम-पूर्ण-योग्य है, दूसरी कोई नहीं; क्योंकि बहुत से (जीव) पर्याय मात्र का ही अवलम्बन करके, तत्त्व की अप्रतिपत्ति लक्षण है ह्न ऐसे मोह को प्राप्त होते हुए परसमय होते हैं।

भावार्थ :ह्न पदार्थ द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य अनन्तगुणमय है। द्रव्यों और गुणों से पर्यायें होती हैं। पर्याय के दो प्रकार हैं :ह्न १. द्रव्यपर्याय और २. गुणपर्याय। इनमें से द्रव्यपर्याय के दो भेद हैं :- १. समानजातीय ह्न जैसे द्वि-अणुक, त्रि-अणुक इत्यादि स्कन्ध; २. असमानजातीय ह्न जैसे

८. द्विपटिक = दो थानों को जोड़कर (सीकर) बनाया गया एक वस्त्र (यदि दोनों थान एक ही जाति के हों तो समानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाता है और यदि दो थान भिन्न जाति के हों (जैसे एक रेशमी और दूसरा सूती) तो असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाता है।)

मनुष्य-देव इत्यादि। गुणपर्याय के भी दो भेद हैं ह्न १. स्वभावपर्याय ह्न जैसे सिद्ध के गुणपर्याय २. विभावपर्याय ह्न जैसे स्वपरहेतुक मतिज्ञानपर्याय।

ऐसा जिनेन्द्र भगवान की वाणी से कथित सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप ही यथार्थ है। जो जीव द्रव्य-गुण को न जानते हुए मात्र पर्याय का ही आलम्बन लेते हैं, वे निज स्वभाव को न जानते हुए परसमय हैं।

गाथा १३ पर प्रवचन

अब, तात्त्विक मुख्य और सूक्ष्म अधिकार शुरू होता है।

ज्ञेय अर्थात् क्या? आत्मा का ज्ञान स्व-पर विषयों को जानता है ह्न निर्णय करता है, इसलिये जो ज्ञान द्वारा जानने योग्य हैं, उनको ज्ञेय कहते हैं। जिन्हें आत्मा का हित करना है, उन्हें क्या करना चाहिए, उसकी यहाँ बात चलती है।

जो ज्ञान स्व-सन्मुख नहीं होता, पर के जानने में रुका (अटका) है, उसे एक भी वस्तु का वास्तविक निर्णय नहीं होता।

अंश बुद्धिवाला भूल में ही पड़ा हुआ है

जैसे नमक की डली क्षार से भरी हुई है ह्न वैसे ही आत्मा ज्ञान-आनन्द आदि अनन्त गुणों का पिण्ड है। वह सदा ज्ञातारूप है, उसकी ओर नहीं देखने पर अज्ञानी स्व को भूलकर पुण्य-पाप और संयोगों पर दृष्टि करता है और उनसे अपने अस्तित्व का होना मानता है।

इस देह में रहा हुआ आत्मा, देह से भिन्न ज्ञानमय वस्तु है। आत्मा त्रिकाल है, उसका ज्ञान भी त्रिकाल है। अज्ञानी उसकी वर्तमान दशा अर्थात् वर्तमान विकाररूप अंश को स्व की तरफ नहीं झुकाता, किन्तु पर की तरफ झुकाता है; इसलिये त्रिकाली अंश को भूलकर वर्तमान अंश को मानता है। अंश में, संयोग में, शुभाशुभ विकारी भाव में जो एकताबुद्धि करता है, वह नित्य ज्ञान का तिरस्कार करता है, उसी का नाम हिंसा है।

अज्ञानी अंश में संपूर्ण मानता है ह्न मैं रागी हूँ, शरीर का रक्षक हूँ, इत्यादि रूप में अपना अस्तित्व मानता है। वह वर्तमान पर्याय में पुण्य-पाप, दया-दान, देश व समाज में अपना अधिकार मानकर संयोग में और शुभाशुभ विभाव में ही रुचि रखता है और असंयोगी अविकारी ज्ञाता तत्त्व को भूलता है; इसीलिये वह स्व-पर ज्ञेय को ह्न जैसे हैं, वैसा नहीं जानकर, विपरीतरूप जानता-मानता हुआ ज्ञेयों में इष्ट-अनिष्ट का भेद करके पुण्य-पाप संयोग को ही जाननेवाला होता है। अतः वह मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञानी का अभिप्राय समझने पर ही तत्त्वों का रहस्य समझ में आता है। आत्मा एक समय में संपूर्ण वस्तु है, उसका आदि-अन्त नहीं है। वर्तमान पर्याय पर की सन्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख हुई ह्न त्रिकाली अंशी के ऊपर झुकी तो सम्यग्दर्शनरूप धर्म होता है। यथार्थरूप से भूल समझ में आए तो भूल नहीं रहती। इस गाथा में मुख्य सिद्धान्त बताया गया है। जो द्रव्य को भूलकर पर लक्ष्य से होनेवाले पुण्य-पाप में अटककर अंश को ही ह्न पर्याय को ही जानता है, वह पर्यायमूढ़ है। अंश के लक्ष्य से राग होता है और अज्ञानी उससे लाभ मानता है, इसलिए मिथ्यात्व होता है; उसे पर्यायमूढ़ कहा है। इस रहस्य को नहीं जाननेवाले यशोविजयजी (एक श्वेताम्बर साधु) ने इस गाथा का खण्डन करके वस्तुस्थिति का विरोध किया है।

यह गाथा अलौकिक रहस्य प्रगट करनेवाली है। पदार्थ द्रव्यस्वरूप है। यहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों अर्थ मिलकर पदार्थ कहा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ द्वारा सभी पदार्थ द्रव्यगुणस्वरूप कहे गये हैं। पदार्थ में छहों द्रव्य आ जाते हैं। शब्द अर्थ को बतानेवाले हैं। इस जगत में जितने पदार्थ हैं, वे सभी द्रव्यस्वरूप हैं। उनका द्रव्य नाम इसलिए है कि वस्तु अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करती है, प्राप्त होती है, पहुँचती है, द्रवती है अर्थात् धारावाही प्रवाहित होती है। एक गुण में दूसरा गुण नहीं है, परन्तु द्रव्य में गुण रहते हैं, जैसे ह्न शक्कर मिठासस्वरूप ही है, वैसे ही आत्मा ज्ञानादि अनंत गुणस्वरूप ही है। गुण और द्रव्य का क्षेत्र पृथक् नहीं रहता। पर्याय अर्थात् गुणों की वर्तमान दशा-अवस्था। (यहाँ शुभाशुभ राग और

असमानजातीय मनुष्यपर्याय एकताबुद्धि को पर्यायमूढ़ता कहा गया है।)

जैसे सोना द्रव्य है, जो कायम रहता है; उसमें से जो हार, कंगन, कुण्डल होते हैं, वे पर्यायें हैं, द्रव्य को गुणात्मक कहा है। अपने द्रव्य तथा गुणों से पर्यायें होती हैं, किन्तु किसी भिन्न द्रव्य-गुण से अथवा पर से पर्यायें उत्पन्न हों ह्न ऐसा उनका स्वरूप नहीं है।

पदार्थ विज्ञान और उसका प्रयोजन

प्रत्येक वस्तु तीनों काल भिन्न-भिन्न है। अनन्त वस्तु कहो तो अनन्त अनन्तरूप हैं, किन्तु एक वस्तु वह दूसरी वस्तुरूप नहीं है व दूसरे के कारण से नहीं है। वैसे ही आत्मा और शरीर दोनों ही वस्तुएँ भिन्न-भिन्न होने से, भिन्नता के लक्षण द्वारा उनको देखने पर दोनों भिन्न रहकर ही तीनों काल भिन्न-भिन्न स्वरूप अपनी-अपनी क्रिया कर रहे हैं ह्न ऐसा देखने में आता है।

परमाणु द्रव्य अपने स्पर्शादि गुण सहित है, उसके द्वारा उसकी अनेक पर्यायें रची जाती हैं, उसे किसी अन्य पदार्थ से नहीं होना पड़ता; वैसे ही आत्मद्रव्य की अवस्था भी आत्मा से होती है, किन्तु किसी अन्य आत्मा द्वारा नहीं होती। जो ऐसे स्वतंत्र वस्तु स्वभाव को भूलता है, वह अंश में सर्वस्व मानकर, अंशी का विरोध करता है।

एक परमाणु भी दूसरे परमाणु द्रव्य का काम नहीं करता। शरीर में रोग हो जाये तो उसे नहीं मिटा सकता। सफेद बाल होना, वृद्धावस्था, शरीर का जीर्ण होना, वियोग होना ह्न यह कोई नहीं रोक सकता। फिर भी अज्ञानी मोह से मानता है कि परवस्तुएँ और उनकी अवस्थाएँ मेरे आधीन हैं, किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि जिस द्रव्य-गुण में से पर्यायें होती हैं, वह उस द्रव्य से तन्मय है; उसे दूसरा कौन करे?

पर्याय का आधार द्रव्य है, किन्तु उसे भूलकर वर्तमान अंश में अर्थात् भेदरूप अशुद्ध पर्याय तथा शरीर में दृष्टि रखकर, उनसे मुझे कुछ होता है और मेरे से उनमें कुछ होता है, इसप्रकार अंशमात्र के प्रति जिसे मोह है ह्न एकताबुद्धि है; उसे पर्यायमूढ़ कहा है। यह बात जिसने नहीं

समझी, उसने इसका विरोध किया।

निर्मल द्रव्यस्वभाव में आरूढ़ होनेवाला पर्यायमूढ़ होता ही नहीं। जो वर्तमान पर्याय को स्व-सन्मुख करके अभेद स्वद्रव्य में एकताबुद्धिरूप परिणमित होता है, उसे द्रव्यदृष्टिवान अर्थात् सम्यग्दृष्टि कहते हैं; क्योंकि उसकी निर्मल द्रव्य के साथ पर्याय अभेद होती जाती है। इसलिये उसे पर्यायमूढ़पना नहीं, किन्तु स्व-पर ज्ञेयों को ज्ञेयरूप जानकर अखण्ड स्वज्ञेय को पकड़कर स्वसन्मुखज्ञातपना है।

एक समय में पूर्ण अखण्ड द्रव्य स्वभाव है, उसमें जिसकी रुचि, दृष्टि या झुकाव रहता है, वह द्रव्य स्वभाव की मूल पूँजी को दृष्टि में रखते हुए भी जो वर्तमान कमजोरी से होनेवाले राग को ज्ञेयरूप जानता है, इसलिये वह कभी भी पर्यायमूढ़ नहीं होता।

जो जीव वर्तमान दशा में पर तरफ झुकाव होने पर दया-दान, पुण्य-पापरूप रागादि तथा शरीर में एकताबुद्धि करता है, राग में भला मानता है ह्न उसे करने लायक मानता है; इससे वह शुभाशुभ रागरूप अंश को ही सर्वस्व मानता है। उस जीव को भगवान ने पर्यायमूढ़ – मिथ्यादृष्टि कहा है, क्योंकि उसकी रुचि और लक्ष्य संयोग और विकार में ही जाती है; वह असंयोगी ज्ञाता को भूलता है।

प्रत्येक आत्मा नित्य सर्वज्ञ परमात्मारूप है, किन्तु वह स्वयं की नई-नई भूल से पर्याय अंश में मोही होता है। एक समय में ज्ञाता चिदानन्द स्वभाव पूर्ण है। जो स्वभाव होता है, क्या वह अपूर्ण होता है? नहीं। प्रत्येक आत्मा में शक्तिरूप से पूर्ण स्वभाव सदा ही भरा है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। जो भी परमात्मदशा को प्राप्त हुए, परमानन्दरूप हुए हैं, उन्हें यह सामर्थ्य कहाँ से आई है? तो कहते हैं कि ऐसी सामर्थ्य उनके द्रव्य-गुण-पर्याय से ही आई है।

इसप्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मपना है, सर्वज्ञपना है। ऐसा पूर्ण स्वभावी आत्मा होने पर भी जो वर्तमान ज्ञान के विकारसरूप अंश को

पुण्य-पापरूप व्यवहार में जोड़कर उसमें एकताबुद्धि करता है, वह त्रिकाल स्वभाव ह्र अंशी से विरुद्ध शरीर और रागादि में रुचि द्वारा पर्यायमूढ़ होता है।

इस विद्यमान छह द्रव्यरूप विश्व में जो कोई जानने में आनेवाले पदार्थ हैं; वे सभी पदार्थ, छहों द्रव्य अपनी-अपनी सत्ता में ह्र स्वरूप में परिपूर्ण ही हैं ह्र अखण्ड हैं, किसी के द्वारा नहीं; अर्थात् प्रत्येक पदार्थ विस्तार सामान्य समुदायस्वरूप (गुणरूप) और आयत सामान्य समुदायात्मक (क्रमभावी पर्याय समुदायरूप) द्रव्यरूप रचा हुआ होने से द्रव्यमय हैं; जो तीनों काल टिकता है; वह अपनी त्रिकाली शक्ति के (गुणसमूह) साथ में टिकता हुआ क्रमशः होनेवाली पर्याय सहित है; किन्तु किसी अन्य के द्वारा उसका रहना और वर्तन (परिणमन) नहीं है।

ज्ञानस्वभाव का आदर करनेवाला मिथ्याभाव का आदर नहीं करता। आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है। तीनों काल के पदार्थ विश्व में अनादि-अनन्त हैं। अतः ज्ञान उन्हें ज्ञेयरूप जानता ही है। जानने में आता है ह्र ऐसा कहकर क्या बताना है? किसी के द्वारा करने में नहीं आता। जो जो अल्पज्ञता का अभाव करके साक्षात् सर्वज्ञ हुए हैं, वे क्या जानते हैं? सर्व पदार्थ त्रिकाल हैं। त्रिकाल रहनेवाले हैं ह्र ऐसा जानते हैं। तथा जो सर्वज्ञ हैं, उन्हें सभी पदार्थ उनके ज्ञान द्वारा जानने में आते हैं; किन्तु जो हैं, हैं और हैं, उनका कोई कर्त्ता हो अथवा किसी के द्वारा उनकी रचना की जावे ह्र ऐसा किसी भी पदार्थ का स्वरूप नहीं है। सर्वज्ञ हो अथवा अल्पज्ञ हो, किन्तु कोई भी आत्मा शरीर का अथवा किसी अन्य जीव आदि का कुछ भी नहीं कर सकता; क्योंकि सभी की पर्याय उनके द्रव्य-गुण से होती है।

प्रत्येक आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इसलिये अपनी वर्तमान पर्याय स्वयं से होती है और पर की पर्याय पर के द्वारा होती है ह्र ऐसा जान सकता है, किन्तु इच्छा द्वारा अथवा ज्ञान के द्वारा शरीरादि अथवा अन्य जीवादि किसी का कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसा वस्तुस्वरूप होने पर भी मैं कर

सकता हूँ ह्र यह मानकर अज्ञानी मात्र राग-द्वेष-मोह कर सकता है अथवा पर्याय में स्व-पर को जैसा है, वैसा जाने तो पर में और अंश में ममता छोड़कर अंतर में सुख स्वभाव का आदर करके स्थिर हो सकता है। ज्ञान के साथ ही सुख है ह्र ऐसे पूर्णस्वभाव का आदर करनेवाला अपूर्ण और विरुद्ध भाव का आदर नहीं करता।

गुण-पर्याय द्वारा द्रव्य को बताते हैं।

जगत के पदार्थ कैसे हैं? जगत के पदार्थ विस्तार सामान्य समुदायात्मक हैं। द्रव्य के आश्रय से रहनेवाले द्रव्य बराबर चौड़ाई से साथ में रहने वाले भेदों को (विस्तार विशेषों को) गुण कहते हैं। जैसे कि आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि हैं; तो कोई पहले अथवा बाद में नहीं हैं, किन्तु एक ही साथ हैं।

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य में स्वयं अपने आश्रय से एक ही साथ विस्ताररूप रहनेवाले विस्तार सामान्य हैं, उन गुणों का समूह द्रव्य है। द्रव्य गुणों का पिण्ड है। इस वचन से यह समझना चाहिए कि तेरे गुण तेरे में हैं, तेरे से हैं, किन्तु पर से नहीं। ऐसा जाने तो पराश्रय की रुचि छोड़कर अखण्ड स्वभाव में रुचि और लीनता करे। यही धर्म अथवा सुखी होने का उपाय है।

यहाँ तात्त्विक पदार्थ-विज्ञान की बात चलती है। सर्वज्ञ वीतराग द्वारा जैसा यथार्थ सत्य कहा गया है, आचार्यदेव उसका स्पष्ट निरूपण करते हैं। जो भी पदार्थ जगत में हैं, वे सत्रूप कायम रहते हैं, उनकी अवस्थाओं का परिवर्तन उन्हीं से होता है; क्योंकि वह अवस्था उन गुणों से ही उत्पन्न होती है और बदलती है। वस्तु और उसकी शक्तियाँ नित्य होने से उन्हें कोई बनानेवाला, रक्षा करनेवाला अथवा नाश करनेवाला नहीं है; अपितु वे वस्तुएँ स्वयं अपने रूप से ध्रुव रहकर स्वयं से ही बदलती हैं। इसतरह सर्व वस्तुओं की मर्यादा है, उसे कोई नहीं बदल सकता ह्र ऐसी निश्चित् वस्तु मर्यादा को न जाने तो वह कभी भी कर्त्तापने

की आकुलता छोड़कर अपने ज्ञातास्वभाव का आश्रय नहीं कर सकता और वह ज्ञेयों का भी निर्णय नहीं कर सकता। अनंत पदार्थों की स्वतंत्रता अनादि-अनंत मर्यादा को जाने तो वह पर की अपेक्षा और स्वरूप की अपेक्षारूप होकर ज्ञानस्वभाव की मर्यादा में आ जाता है और उससे राग-द्वेषरूप संसार की मर्यादा आ जाती है।

वस्तु को उसके निश्चितरूप में न माने तो अमर्यादित कषाय में चला जाता है और माने तो संसार से तिर जाता है। प्रत्येक पदार्थ सत् है; उसका पलटना उसी के कारण से ही है। जगत में वस्तु अनंत ह्न अमर्यादित है। यदि उसमें किसी दूसरे को कर्त्ता मानो तो सर्व पदार्थ स्वयं के कारण से ही तो ध्रुव रहकर बदलते हैं ह्न ऐसी उनकी मर्यादा नहीं रहती, किन्तु कर्त्तापना ह्न पराधीनतापना माननेवाले की दृष्टि में अमर्यादित ममता और कषाय का कर्तृत्व आता है, इसका नाम संसार है। जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसी उसकी व्यवस्था ह्न मर्यादा न माने तो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र सुख की विपरीतता होने पर अपने में ही बिगाड़ होता है और जैसा है, वैसा स्वीकार करे तो सुखी होता है।

इसलिये सर्वज्ञ कथित आगम के अनुसार सत्समागम से सर्वप्रथम जैसे तत्त्व हैं, वैसे जानना ही चाहिए। शक्ति बिना शक्तिमान पदार्थ नहीं होता और शक्ति - स्वभाव स्वभाववान में अभेद एक ही साथ है। अतः जितनी शक्तियाँ द्रव्य के साथ हैं, उनका पलटना भी क्रम-क्रम से प्रत्येक समय में होना चाहिए। यह बात यहाँ कहते हैं।

यह पदार्थ-विज्ञान का पाठ चलता है। इस विश्व में जो कोई जानने योग्य पदार्थ हैं, वे सभी एक-एक पदार्थ स्व-सत्ता में ह्न स्वरूप की मर्यादा में परिपूर्ण अखण्ड हैं। वे विस्तार सामान्यसमुदाय रूप हैं। उनके विस्तार विशेष वे गुण हैं। जैसे कि आत्मा में ज्ञानादि, पुद्‌गल द्रव्य में स्पर्श-रस आदि गुणों का समुदाय द्रव्य है। गुण स्व-द्रव्य के आश्रय से एक ही साथ विस्तार विशेषपने रहनेवाले हैं और पर्यायें एक के बाद एक क्रम-क्रम से एक-एक समय की मर्यादा से द्रव्य में रहती हैं।

जगत के सभी पदार्थ एक ही प्रकार के हैं। जो कोई उसमें अनुकूल-प्रतिकूल का भेद करता है; वह स्व-पर के स्वरूप को जैसा है, वैसा नहीं मानता, वह ज्ञान के स्वभाव का विरोध करता है; इससे असत्य का स्वीकार होता है, वही दुःख है और दुःखी होने का कारण है।

विस्तार सामान्य समुदाय को द्रव्य कहते हैं, उसमें अनेक गुण जुदा-जुदा हैं। यदि उन विशेषों को गौण करें तो इन सभी गुणों के समूह में एक आत्मत्व रूप सामान्यपना भासित होता है। द्रव्य इस विस्तार सामान्यरूप (अथवा विस्तार सामान्य समुदायरूप) अनंत गुणों का अभेद पिण्ड है।

आयत-सामान्यरूप-समुदाय ह्न आयत ह्न लम्बाई, काल अपेक्षित प्रवाह। एक के बाद एक अवस्था का कालक्रम से वर्तन होता है। जिस समय जो अवस्था (पर्याय) होनेवाली है, वह होती है और दूसरे समय दूसरी अवस्था होती है। इसप्रकार क्रमभावीपना प्रवाहरूप से चलता है। उन क्रमशः होनेवाली पर्यायों के भेद को गौण करें तो एक द्रव्यपने रूप सामान्यपना ही भासित होता है। इसतरह त्रिकाल क्रमवर्ती समस्त पर्यायों का अभेद पिण्ड, वह द्रव्य है।

एक समय में एक गुण की एक समय की मर्यादावाली एक पर्याय वर्तती है। संसार अवस्था के साथ मोक्ष अवस्था नहीं होती, मिथ्यात्व के साथ सम्यक्त्व नहीं होता; इसतरह क्रमबद्ध अवस्था का होना, वह पदार्थ के द्रव्य-गुण से होता है, किन्तु दूसरे से नहीं।

जैसे ह्न स्वर्ण सामान्य द्रव्य उसके पीलापन, चिकनापन आदि गुणों का समूह (पिण्ड) है और क्रमशः होनेवाली कुण्डल, हार आदि कालक्रम से जितनी-जितनी अवस्थाएँ हैं ह्न उन सभी अवस्थाओं का अभेद पिण्ड वह स्वर्ण है। वैसे ही आत्मा, पुद्‌गल परमाणु, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ह्न इन छहों द्रव्यों का स्वरूप उनकी स्वतंत्र मर्यादा से है, किन्तु किसी के कारण उनका स्वरूप नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ अपने में व्याप्त अक्रमरूपशक्ति और क्रमशः होनेवाली त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायों का पिण्ड है; इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्यायरूप

वस्तु ज्ञेय है। उसे उसकी मर्यादा में जानकर पर से और शुभाशुभ विकार से पृथक् ज्ञान हूँ। ऐसे ज्ञानादि गुणों का पिण्ड स्वभाववान द्रव्य की एकतारूप श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता करना ही धर्म है।

प्रश्न ह्न इसमें व्यवहार कहाँ आया?

उत्तर ह्न ज्ञान आत्माश्रित है; उसे जानना निश्चय है और ऐसा पृथक्-पृथक् सभी ज्ञेयों का स्वरूप है, उन परज्ञेयों को पररूप जानना व्यवहार है। द्रव्य स्वभाव शुद्ध है, वह निश्चय है और उसके आश्रय से जो निर्मल पर्याय का भेद होता है, उसे जानना सद्भूत व्यवहार है और जो राग शेष रहा, उसे जानना असद्भूत व्यवहार है। आत्मा पर का तो कुछ भी नहीं कर सकता; अतः उसका व्यवहार पर में नहीं होता। पर का करे, उसे रखे अथवा छोड़े ह्न ऐसा व्यवहार आत्मा के पास नहीं है, भले ही कोई अज्ञान से ऐसा माने।

जिसने एक समय की पर्याय को पर से माना, उसने तीनों काल सर्वद्रव्यों की सत्ता का इन्कार किया, उसने एक भी द्रव्य को सम्पूर्ण नहीं माना। प्रत्येक पदार्थ तीनों काल पर्यायों का पिण्ड है। उसमें से किसी भी एक समय, एक अवस्था को निकाल दो अर्थात् पर के कारण उसकी पर्याय होती है, यदि ऐसा मानो तो वस्तु खण्ड-खण्ड (नाश) हो जाती है। जैसे कोई १०० वर्ष का पुरुष है, उसमें से बीच से एक समय की अवस्था को निकाल दो तो वह सम्पूर्ण पुरुष नहीं रहा अर्थात् उसका नाश हो गया। वैसे ही प्रत्येक द्रव्य अपनी अनादि-अनंत सर्व पर्यायों में अभेदपने व्यापक है, उसमें किसी पर्याय को पर के कारण होना माने तो उसे विश्व के किसी पदार्थ की श्रद्धा नहीं रहती और उसकी ज्ञेय और ज्ञातापने की श्रद्धा का नाश होता है।

वीतरागी सन्तों द्वारा वस्तु-विज्ञान का प्रसाद

दिगम्बर संत अमृतचन्द्राचार्यदेव जंगल में रहते थे। असंख्यप्रदेशी अमृतकुण्ड आत्मा में डुबकी मारकर बारम्बार निर्विकल्प आत्मध्यान में मग्न रहते थे; उन्होंने ही अमृत परोसा है। अर्थ = पदार्थों का द्रव्य स्वरूप;

और द्रव्य कैसे हैं? अक्रमभावीगुण और क्रमभावी पर्यायों के पिण्ड हैं। पर्यायें द्रव्य-गुण से ही होती हैं ह्न ऐसा कहकर तीनों काल प्रत्येक पदार्थ की स्वतंत्र मर्यादा सिद्ध की है।

अब गुणों की व्याख्या करते हैं। तथा गुण कैसे हैं? कि एक द्रव्य जिसका आश्रय है ह्न ऐसे अनंत विस्तार विशेषरूप गुण हैं, उनसे रचित (रचा हुआ) होने से वह द्रव्य ही गुणस्वरूप है। गुण से अभेद ह्न वह द्रव्य है। जैसे परमाणु जिसका आधार है ह्न ऐसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरूप जो अभेद द्रव्य है, वह परमाणु है। जो गुणों के आश्रय से द्रव्य को मानता है, उसकी दृष्टि भेद पर है। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ऐसा जहाँ कहा, वहाँ गुण अनेक हैं और वे अपने आश्रय से हैं, किन्तु एक गुण में दूसरा गुण नहीं है। प्रत्येक गुण परस्पर असहाय है। यह गुणों के स्वतंत्रपने की मर्यादा बताई है।

गुण अक्रमरूप से द्रव्य में, द्रव्य से अभेदरूप एक साथ हैं और पर्यायें द्रव्य-गुण से होती हैं ह्न इसप्रकार प्रशम के लक्ष्य से जो वीतराग दृष्टि और वीतराग चारित्र के लिए ज्ञेयों को जानता है, वह सुखी हो सकता है।

यह ज्ञेय अधिकार चलता है। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य सर्व पदार्थों को ज्ञेय कहते हैं। छह द्रव्य के समुदायरूप यह विश्व है। उसमें रहनेवाले सभी पदार्थ अनादि-अनंत होने से स्वत:सिद्ध हैं; वे किसी से रचित नहीं हैं। सदा ही अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप हैं; किन्तु पर-पदार्थों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप नहीं हैं।

द्रव्य, गुण और पर्याय वस्तु का स्वरूप है, उसमें स्वद्रव्य के आश्रय से क्षेत्र की चौड़ाईरूप एकमेकरूप से एक ही साथ रहे हुए अनंतगुण हैं; उन सर्व गुणों का अभेद पिण्ड द्रव्य है। उनका आधार वह क्षेत्र है। उनकी वर्तमान नई-नई होनेवाली अवस्थाएँ काल हैं और द्रव्य में अनंत गुण हैं, इस शक्ति को भाव कहा जाता है।

एक समय में आत्मा आदि सभी द्रव्य, गुण-पर्यायरूप शक्ति के

पिण्ड हैं। उसमें से प्रत्येक समय नई-नई पर्याय उत्पन्न होती है और बदलती रहती है। उनका आधार उनके गुण हैं और गुण का आधार द्रव्य है। द्रव्य-गुण नित्य अप्रगट शक्तिरूप स्थिर और अक्रमरूप से रहते हैं और उनकी पर्यायें कालक्रम से एक के बाद एक क्रमभावी होती हैं। इसलिये सभी पर्यायें एक साथ प्रगट होती हुई दिखाई नहीं देतीं, किन्तु जिस समय जो पर्याय होना निश्चित है, वह उस समय में ही प्रगट होती है। इसप्रकार वस्तु स्वरूप का निश्चय करे तो ज्ञान आत्मा में स्थिर हो सकता है।

स्व-पर ज्ञेयों का निश्चित स्वभाव जाने बिना ज्ञान नहीं हो सकता, वैसे ही समस्त ज्ञेयों की व्यवस्था निश्चित है। इसप्रकार ज्ञान सभी का निश्चय करनेवाला है। यदि स्व-पर के भेदज्ञानपूर्वक ज्ञेयों का और ज्ञानस्वभाव का निश्चय न करे तो शंका-भ्रम आदि दोष नहीं मिटते और ज्ञान अंश मात्र स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता। इसलिये सर्वप्रथम ज्ञान और ज्ञेयों के स्वरूप का पक्का निर्णय करना चाहिए। सत्य सुने नहीं, समझने का अभ्यास करे नहीं और कहे कि चलो व्रत, तप, उपवास करो, दया पालो, बस ! उससे कहते हैं कि इस विधि से किसी भी काल में हित का मार्ग नहीं मिल सकता।

द्रव्य में द्रव्य के क्षेत्र प्रमाण चौड़ाई से एक साथ रहनेवाले गुण हैं। उनका आश्रय (आधार) द्रव्य है; इसप्रकार द्रव्य को गुणस्वरूप कहा है तथा जितने कालप्रवाह की अपेक्षा से क्रमशः होनेवाली अवस्था विशेष हैं, वे द्रव्य का ही स्वरूप हैं। इसलिये वे सभी गुण-पर्यायें जिनका लक्षण हैं, वे द्रव्यों से तथा गुणों से रचित होने से पदार्थों की पर्यायें द्रव्यात्मक तथा गुणात्मक भी हैं।

इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ की अनादि-अनंत स्वतंत्र मर्यादा है। इस पर भी यदि कोई ऐसा माने कि किसी की अवस्था दूसरे के कारण होती है तो वह अनंत सत् कर विरोध करनेवाला ह्न मिथ्यादृष्टि है। आत्मा में किसी दूसरे पदार्थ के कारण लाभ-हानि अथवा कुछ फेरफार नहीं हो सकता। यदि पर के कारण उनकी पर्यायें हो जायें तो किसी भी वस्तु की मर्यादा नहीं रहती।

पर्यायमूढ़ जीव विषमता का ही वेदन करता है तथा जिसने सच्ची समझ की है, वह स्वभाव से ही समता का वेदन करता है। यहाँ, द्रव्य-गुण के आश्रय से पर्याय होती है ह्न ऐसा जाननेवाले को पर्यायमूढ़ नहीं कहा है, किन्तु वह ऊपर कहे अनुसार स्वतंत्र पदार्थ की व्यवस्था को नहीं मानता, जिससे उसकी रुचि मिथ्या होने से दृष्टि संयोग और विभाव में रुकी हुई है। जो एकमात्र अंश को मानता है, उसे पर्यायमूढ़ कहा है; उसे हित-अहित अर्थात् धर्म-अधर्म कैसे होता है? इसकी खबर नहीं है, जिससे वह सर्वत्र विषमता का ही वेदन करता है। लाखों रुपये, आबरू और ऊँचापद जीव की दुर्गति को नहीं रोक सकते; किन्तु यदि सच्ची समझ की हो तो शाश्वत चैतन्य ही स्वयं अपने को शरण होता है, जिससे वह नित्य स्वभाव से क्षमता का वेदन करता है।

अब पर्यायमूढ़ जीव किस तरह किसमें ममता करता है ह्न यह बताते हैं।

अज्ञानी को अनेक द्रव्यों में एकत्व मानने में निमित्तरूप द्रव्य-पर्यायें हैं, वे दो प्रकार की हैं ह्न (१) समानजातीय (२) असमानजातीय।

(१) परमाणु द्रव्य के द्वि-अणुक, त्रि-अणुक इत्यादि अनेक स्कंध हैं। इसतरह जो शरीरादि पुद्‌गल के संयोगरूप वस्तु दिखाई देती है, वह अनेक द्रव्यात्मक समानजातीय द्रव्यपर्याय है। उसमें प्रत्येक परमाणु पृथक् -पृथक् है। प्रत्येक परमाणु के द्रव्य-गुण-पर्याय त्रिकाल, पर से भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। उनकी अवस्था उन्हीं से होती है। इसप्रकार अज्ञानी पृथक् को पृथक्‌रूप न मानकर वस्तु का स्वरूप मानता है। प्रत्येक के पृथक् स्वभाव को नहीं जानता, इसलिए वह संयोग को ही मूल वस्तु मानता है ह्न अनेक को एक मानता है और समानजातीय पर्यायों में ममता करके मूढ़ होता है। वह ज्ञेयों को ज्ञेयरूप नहीं जानता, किन्तु उनमें इष्ट-अनिष्ट का भेद करके उन्हें विषमता का विषय बनाता है, जिससे वह

पर्यायमूढ़ है।

(२) असमानजातीय पर्याय अर्थात् जीव और पुद्‌गल स्वरूप जो देव मनुष्य आदि हैं; अज्ञानी उन्हें एक मानता है। उनसे अपना और पर का अस्तित्व मानता है। असमानजातीय पर्याय में जो अनेक को अनेक नहीं मानता, वह सभी को एक मानता है। एक से दूसरे को लाभ-नुकसान मानता है तथा एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व मानता है; इसप्रकार सभी में एकताबुद्धिरूप मिथ्या प्रतिभास द्वारा पर्यायमूढ़ रहता है ह्न यही अज्ञानी की पहचान है।

गुण-पर्याय दो प्रकार की हैं ह्न (१) स्वभाव पर्याय (२) विभाव पर्याय।

(१) उन समस्त द्रव्यों में स्वयं अपने अगुरुलघुगुण द्वारा प्रति समय प्रगट होनेवाली छह स्थान हानि-वृद्धिरूप अनेकपने की अनुभूति, वह स्वभाव पर्याय है।

(२) स्पर्श-रस-रूपादि की पर्याय और ज्ञानादि गुण की पर्याय में स्व-पर के निमित्त की अपेक्षा से नैमित्तिक अवस्था होती है, वह विभाव पर्याय है।

वे पर्यायें स्वयं अपने क्षणिक उपादान के अनुसार होती हैं, जिसमें एकरूप स्वभावपना नहीं है। जो अशुद्ध पर्यायें हैं, उन्हें विभाव पर्याय कहते हैं। वे विभाव गुण पर्यायें दो प्रकार की हैं ह्न विभाव अर्थ पर्याय और विभाव व्यंजन पर्याय। यह अशुद्धता जीव और पुद्‌गल ह्न इन दो द्रव्यों में ही होती है, किन्तु धर्मादि चार द्रव्यों में कभी विभाव पर्याय नहीं होती।

प्रश्न ह्न क्या विभाव को स्वभाव कह सकते हैं?

उत्तर ह्न हाँ, विभाव गुण स्वयं का पर्याय स्वभाव है, इसीलिये उसे स्वभाव कहते हैं। अशुद्ध उपादान स्वयं परिणमित होता है, किन्तु निमित्त का ज्ञान कराने के लिए निमित्त की अपेक्षा से उसे सापेक्ष और नैमित्तिक भाव कहा जाता है और उसी पर्याय को उपादान की अपेक्षा से उपादेय

अर्थात् कार्य कहा जाता है। स्व-पर के निमित्त से प्रवर्तती पूर्व की और बाद की अवस्था में जो हीनाधिकता दिखती है, वह स्वभाव विशेषरूप अनेकपना जिनमें है, वे विभाव पर्याय हैं।

केवलज्ञान में अनेक निर्मल पर्यायें सदृश्य होती हैं, किन्तु उसमें पूर्ण शुद्धता होने से उसे विभाव नहीं कहते; इसलिये पर्याय का अनेकपना दोष नहीं है, किन्तु गुण की पर्याय अशुद्धतारूप परिणमित होती है तो कर्म के उदय को निमित्त कहा जाता है।

यदि नैमित्तिक पदार्थ (उपादान) अशुद्धता करे तो दूसरे को निमित्त कहा जाता है, किन्तु कर्म का उदय है; इसलिये विकार होता है। इसप्रकार पर को अपनी अवस्था का कारण मानता है, उसे कभी भी स्व-सामर्थ्य के विश्वास करने का अवसर नहीं आता।

अज्ञानी जीव पर्याय को ही सम्पूर्ण वस्तु मानता है, पृथक्-पृथक् द्रव्यों को एक मानता है। पर्याय गुण और द्रव्य से अभेद है, इसके बदले वह उसे पर से होनेवाली भेदरूप देखता है, इसलिये वह जीव पर्यायमूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। इसलिये जिसे सत्य दृष्टिमान होना हो, वह सर्वप्रथम सर्वज्ञ वीतरागी देव द्वारा कथित देव-गुरु-शास्त्र और पदार्थ का स्वरूप, नवतत्त्वों का स्वरूप तथा श्री कुंदकुंद आचार्य जैसे भावलिंगी, मोक्षमार्ग में बढ़नेवाले दिगम्बर संतों का स्वरूप जानकर उनके द्वारा कहे गये आगम ज्ञान का अभ्यास करके; पदार्थों का स्वरूप ऐसा ही है ह्न अन्यरूप नहीं ह्न ऐसा निर्णय करे तो वह अपने ज्ञान मात्र स्वभाव में एकता और स्थिरता का उपाय समझकर सुखी होने का अधिकारी होता है।

आत्मा के ज्ञान में जानने लायक को ज्ञेय कहते हैं। ज्ञेय के तीन प्रकार होते हैं, द्रव्य, गुण और पर्याय। अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड, वह द्रव्य है। द्रव्य में उसके साथ विस्तार विशेषरूप गुण हैं और समय-समय क्रमश: उत्पाद-व्ययरूप होनेवाली अवस्थाएँ-वर्तमानदशा पर्यायें हैं; ये पदार्थों में स्वयं अपने द्रव्य और गुण से ही होती हैं; फिर भी जो ऐसा

मानता है कि पर्याय पर से होती है तो वह जीव अखण्ड स्व-पर ज्ञेयों को नहीं मानता और अंश मात्र में सम्पूर्ण द्रव्य को मानकर,देहादि संयोग में एकताबुद्धि द्वारा पर्यायमूढ़ होता है, इसी का नाम संसार है।

स्वभाव-सन्मुख होनेवाले ज्ञान द्वारा ही पदार्थ के ज्ञान की यथार्थता समझ में आती है। प्रत्येक पदार्थ ध्रुव है, इसलिये उसका स्वभाव-शक्तिरूप गुण भी ध्रुव हैं और उनका वर्तमान कार्य (पर्याय) उन्हीं से होता है, पर से नहीं होता। ऐसा वस्तु स्वरूप सत्य और अबाधित है, जिसे समझना कठिन नहीं है, किन्तु यदि असत्य कथन को सही बताना हो तो अनेक झूठे आधार रखने पड़ेंगे; फिर भी पूरा नहीं पड़ेगा (अर्थात् झूठ पकड़ लिया जाता है); इसलिये सत्य तो सीधा है। मध्यस्थ और जिज्ञासु होकर समझने की विधि से, दृष्टि को सीधी करके देखें तो अनंतकाल का नहीं जाना हुआ तत्त्व भी अपने ज्ञान स्वभाव द्वारा अवश्य ही जाना जा सकता है।

द्रव्य में से समय-समय नई-नई अवस्थायें प्रगट होती हैं, वे पर्यायें पर से नहीं होतीं; किन्तु जो इस अंश को सम्पूर्ण वस्तु मानता है, उसने ज्ञेय का सच्चा स्वरूप अंशमात्र भी नहीं जाना; क्योंकि त्रिकाली अंशी से अंश है ह्न ऐसा जिसने नहीं माना, उसने ज्ञेय और ज्ञान दोनों को ही यथार्थ नहीं माना कि जिससे द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप समझना सरल हो जावे। इसके लिए अब वस्त्र का दृष्टान्त देकर सिद्धान्त समझाते हैं।

जैसे सम्पूर्ण ही वस्त्र को सफेदादि वर्ण, स्पर्शह्नआदि रूप ऐसे विस्तार सामान्य समुदाय द्वारा और निरंतर दौड़ते (बहते प्रवाहरूप) ऐसे कालक्रम से क्रमशः आयतसामान्य समुदाय द्वारा पर्यायों से रचित होता हुआ उस मय ही है। वस्त्र उसके क्षेत्र, काल और भाव से पृथक् नहीं है, अपितु उसके स्वरूप से एकमेक है।

अर्थ अर्थात् पदार्थ किसे कहते हैं? जो अपने ही गुण-पर्याय को प्राप्त होता है, प्राप्त करके पहुँचता है; उसे पदार्थ कहते हैं। पर पदार्थ उसे प्राप्त नहीं कर सकता ह्न उसे पहुँच नहीं सकता। द्रव्य में गुण अक्रम से

अर्थात् एक साथ हैं और पर्यायें क्रमशः उनके निश्चित स्वकाल में क्रमशः वर्तती हैं। दौड़ते हुए आयतसामान्य समुदाय द्वारा वस्तु अवस्थित भी है।

जैसे पैरों द्वारा डग भरे जाते हैं; एक के बाद एक पैर क्रमशः दौड़ते हुए दिखाई देते हैं, वैसे ही द्रव्य-गुण से विकारी अथवा अविकारी पर्याय होती है। जिस क्रम में आनेवाली पर्याय है, वही उसके काल में आती है ह्न प्रगट होती है। सहवर्ती गुण और क्रमशः क्रमबद्ध पर्यायें ह्न ऐसी व्यवस्था से व्यवस्थित मर्यादावान प्रत्येक पदार्थ है।

पदार्थ में जो गुण हैं, वे स्वद्रव्य प्रमाण क्षेत्र में एक साथ चौड़ाईरूप से वर्तते हैं और पर्यायें कालक्रम से लम्बाईरूप निरंतर प्रवाहरूप क्रम में वर्तती हैं। जब ऐसा जाने तो बाह्यसंयोग में एकताबुद्धि छूट जाती है। पर्याय जितना नहीं, अपितु अनंत-गुण-पर्याय के पिण्ड त्रिकाली द्रव्य में जब दृष्टि जाती है और पर में कर्ता-भोक्तापना, स्वामीपना मानना छूटकर स्वभाव और स्वभाववान में एकत्व की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता द्वारा स्वयं धर्मरूप होता है; तब यह जीव धर्मी कहलाता है।

जैसे वस्त्र में क्षेत्र से चौड़ाईरूप सहवर्ती गुण और क्रमवर्ती होनेवाली पर्याय का दृष्टान्त दिया; वैसे ही यह आत्मा, परमाणु आदि प्रत्येक पदार्थ द्रव्यमय और गुण-पर्याय स्वरूप है अर्थात् अवस्थायी (स्थिर) विस्तार सामान्यसमुदाय द्वारा और कालक्रम से निश्चित अवस्थित क्रमबद्ध दौड़ते आयतसामान्यसमुदाय द्वारा रचित होता हुआ (पदार्थ) द्रव्यमय ही है। इसी प्रकार मेरा आत्मा भी द्रव्य-गुण-पर्यायमय होने से मेरे स्वभाव द्वारा प्राप्त है। मेरा स्वरूप गुणों से भिन्न रूप नहीं है, अपितु गुणात्मक ही है। ऐसा निश्चय करे तो सच्चा साहूकार कहा जाता है।

अब विभाव पर्याय समझाने के लिए दृष्टांत देते हैं। एक जाति की वस्तुएँ मिली हों तो हो उसे समानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं। अनेक पुद्गलरूप द्वि-अणुक आदि समानजातीय द्रव्यपर्याय हैं और रेशमी तथा सूती वस्त्र के मिले हुए कपड़े के समान अनेक जीव-पुद्गलरूप देवादि पर्याय असमानजातीय द्रव्यपर्याय हैं। तथा जैसे किसी वस्त्र में

अपने स्थूल अगुरुलघुगुण द्वारा क्रमशः प्रवर्तते अनेक प्रकार से परिणमन के कारण अनेकपने की प्राप्ति; गुणात्मक स्वभाव पर्याय है, वैसे ही सर्व द्रव्यों में सूक्ष्म अगुरुलघुगुण द्वारा प्रति समय प्रगट होने वाली छह-स्थान आश्रित हानि-वृद्धिरूप अनेकपने की अनुभूति, वह गुणात्मक स्वभाव पर्याय है। वस्त्र में रूपादिक की पर्याय और स्व-पर के कारण पूर्वक अपनी योग्यता से प्रवर्तती आगे-पीछे की अवस्थाओं में होनेवाली तारतम्यता के कारण दिखाई देने वाले स्वभाव विशेषरूप अनेकपने की आपत्ति, वह गुणात्मक विभाव पर्याय है। अपनी वर्तमान अवस्था का विकार स्वयं से है ह्न ऐसा देखें तो सामान्य स्वभाव पर दृष्टि जाती है, सर्वथा अंश पर दृष्टि नहीं रहती; इसलिये वह पर्यायमूढ़ नहीं है।

समस्त द्रव्यों में विभाव पर्याय है। रूपादिक और ज्ञानादिक की स्व-पर के कारण से प्रवर्तती आगे-पीछे क्रमशः अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण दिखाई देनेवाले स्वभाव विशेषोंरूप अनेकपने की आपत्ति, वह गुणात्मक विभावपर्याय है। संसारी जीव भी स्वयं के कारण से अपने स्वाभाविक गुण और क्रमभावी पर्यायपने वर्तते हैं, किन्तु पर से, किसी के अस्तित्व का रहना और वर्तन करना नहीं है ह्न ऐसी यथार्थ वस्तुस्थिति समझे तो विवाद और झगड़ा मिटकर अपना ज्ञान निश्चिंत होकर स्वरूप में ठहरे। इसके विपरीत में अंश मात्र में सम्पूर्ण वस्तु माननेवाला पर संयोग में एकता बुद्धि करके, बिलकुल भी स्थिर नहीं हो सकता।

अब पर्यायमूढ़ जीव कैसा है? यह कहते हैं :-

(१) वह अनेक परमाणु के संयोग को एक वस्तु मान लेता है। समानजातीय द्रव्यपर्याय जो अनेक हैं, फिर भी उन्हें एक मानता है। इसलिये वह पर्यायमूढ़ है।

असमानजातीय जड़ शरीर और जीव दोनों ही भिन्न-भिन्न वर्तते हैं; किन्तु ऐसा न मानकर वह पर के आधार से, एक-दूसरे का परिणमन मानता है। कर्म के कारण जीव को विकार होता है तथा जीव से कर्म की रचना होती है; इसप्रकार एक अंश की सत्ता को दूसरे से मानता है। अंशी से अंश अभेद है ह्न ऐसा न मानकर पर के साथ एकत्व मानता है; इसलिए अंश में सम्पूर्ण माननेवाला, अनेक को एक माननेवाला और द्रव्य-गुण के आश्रय से अंश (पर्याय) होता है ह्न ऐसा अभेद नहीं माननेवाला अथवा पर से पर्याय होती है, इसप्रकार भेद को ही माननेवाला होने से वह जीव पर्यायमूढ़ है।

तेरे आश्रय से विकारी अथवा अविकारी (दशा) होती है, किन्तु जो एक समय की पर्याय को ही सम्पूर्ण द्रव्य मानता है, उसे भी पर्यायमूढ़ कहा जाता है। जिसकी अंश के ऊपर दृष्टि है, उसको विकार व संयोग में एकता बुद्धि होने से वह त्रिकाली सामान्य स्वभाव को नहीं देख सकता। द्रव्य-गुण-पर्याय की स्पष्ट निश्चल व्यवस्था आचार्य देव द्वारा और परम्परा से श्री सर्वज्ञ द्वारा कही गई व्यवस्था है; जो वास्तव में यथार्थ है। इसलिये यह सर्व पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था भली, उत्तम और पूर्ण योग्य है, अन्य नहीं। बहुत से एकान्तिक जीव पर्यायमात्र का अर्थात् एक अंश का ही अवलम्बन लेकर तत्त्व की अप्रतिपत्ति (अप्राप्ति, अज्ञान) जिसका लक्षण है ह्न ऐसे मोह को प्राप्त होते हुए परसमय होते हैं। हीनाधिक पर्याय का संबंध द्रव्य के साथ है ह्न ऐसा जो नहीं मानता, वह संयोग और विभाव को ही भला मानता है और उसमें ही अपना अस्तित्व मानता है। देखो ! यह गाथा अलौकिक है। दिगम्बर संतों ने सर्वज्ञ कथित सम्पूर्ण वस्तु इसप्रकार बताई है। द्रव्य-गुण-पर्याय की ऐसी न्यायपूर्ण व्यवस्था समझे तो उसका मोह क्षय हो जाये ह्न ऐसी ही वस्तुस्थिति है। सर्वज्ञ केवली के बिना ऐसी पदार्थ व्यवस्था अन्य किसी ने नहीं जानी है; संतों द्वारा यह बात चली आ रही है।

गाथा १३ के भावार्थ पर प्रवचन

यह ज्ञेय अधिकार की प्रथम गाथा है। इसमें छहों द्रव्य का स्वरूप द्रव्य-गुण रूप से अक्रम अवस्थित कहा और पर्यायों को क्रमबद्ध दौड़ते हुए धारावाही आयतसामान्यरूप कहा है। इसमें कोई भी द्रव्य बाकी नहीं

रहता। यहाँ गुणों का अभेद पिण्ड, वह द्रव्य है अथवा गुण-पर्याय स्वरूप, वह द्रव्य है ह्र ऐसा कहा है; इसलिये पदार्थ द्रव्यमय और गुण-पर्यायमय है। सभी द्रव्य प्रत्येक समय में, सम्पूर्णरूप से परिपूर्ण हैं।

पदार्थ द्रव्यस्वरूप है और द्रव्य अनंत गुणमय है। द्रव्य और गुणों से पर्याय होती है, किन्तु किसी पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से किसी की पर्याय नहीं होती। पर्याय दो प्रकार की है ह्र (१) द्रव्यपर्याय, (२) गुणपर्याय। इसमें द्रव्य पर्याय दो प्रकार की है ह्र (१) समानजातीय (२) असमानजातीय।

उसमें द्वि-अणुक से लेकर अनंत परमाणु के स्कंध, वे समानजातीय द्रव्यपर्याय हैं। मनुष्य-देवादि पर्याय असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। इसके पश्चात् गुणपर्याय भी दो प्रकार की है ह्र

(१) स्वभाव पर्याय ह्र जैसे सिद्धपर्याय

(२) विभाव पर्याय ह्र जैसे मतिज्ञान पर्याय

इसप्रकार जिनेन्द्र भगवान की वाणी में दर्शाया हुआ सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप है ह्र वही यथार्थ है। ऐसा जो जीव नहीं जानते, वे केवल पर्याय अंश का ही अवलम्बन लेते हैं। वे एक अंश को ही ह्र शरीर को ही अथवा राग को ही सम्पूर्ण मानकर अंशी द्रव्य-स्वभाव को भूलते हैं। वे स्व-पर की स्वतंत्रता पृथक्ता नहीं मानते और निजस्वरूप को भी नहीं जानते, इसलिये वे मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्यादृष्टि को परसमय कहा है। अन्यमत में जन्मा हो, वह मिथ्यादृष्टि और जैनमत में जन्मा हो, वह सम्यग्दृष्टि ह्र ऐसा नहीं है; किन्तु जो पदार्थ की वर्तमान दशा को उस पदार्थ की नहीं माने और पर से माने तो उसकी तो वर्तमान अंश को ही सम्पूर्ण माननेवाली दृष्टि है, अतः वह मिथ्यादृष्टि है। सत्य-असत्य के निर्णय करने में दोष नहीं, अपितु दृढ़ता है।

प्रत्येक पदार्थ में स्वयं अपने द्रव्य-गुण के आश्रय से निरंतर नई-नई अवस्था होती ही है। यह स्वयं उसकी व्यवस्था है। इसे प्रगट करनेवाला अन्य कोई नहीं है। जो एक द्रव्य की अवस्था को पराधीन (दूसरे के

आधीन) मानता है, वह विश्व के सर्व पदार्थों को पराधीन माननेवाला अधर्मी है।

यदि मैं सामनेवाले पदार्थ की बराबर खबर रखूँ तो उनकी व्यवस्था होती है और यदि उनका ध्यान नहीं रखूँ तो उनकी व्यवस्था नहीं होगी ह्र ऐसा माननेवाला पर्याय में सम्पूर्ण द्रव्य माननेवाला पर्यायमूढ़ है। जैसे तिजोरी में २५ हजार रुपये हों और ज्ञान में पाँच हजार माने तो ज्ञान झूठा है; वैसे ही नित्य छह द्रव्यस्वरूप विश्व में सर्वज्ञ द्वारा द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जैसा व्यवस्थितरूप से बताया गया है, उससे विपरीत माने तो वह ज्ञान झूठा है और छह द्रव्य न माने तो उसका ज्ञेय झूठा है। जो विपरीत आदेश करें, वे गुरु भी झूठे हैं तो विपरीत तत्त्वों को कहनेवाले शास्त्रों में कहे गये देव भी झूठे हैं। यहाँ किसी के प्रति द्वेष नहीं है, अपितु सत्य का स्वीकार करके ज्ञेयस्वभाव का निश्चय कराते हैं।

द्रव्य-गुण-पर्याय की उससे अभेदता और पर से पृथक्ता है। इसतरह चेतन-अचेतन पदार्थ परिपूर्णरूप से स्व से हैं, पर से नहीं; इसलिये मैं पर का कुछ भी नहीं कर सकता और पर भी मेरा कुछ नहीं कर सकता। परलक्ष्य से जो क्षणिक विकार होता है, वह दुःख है। शरीरादि संयोग विकार और दुःख दशा जितना (मात्र) मैं नहीं हूँ। इसप्रकार त्रिकाली अखण्ड द्रव्यस्वभाव को एकमेक रूप से अनुभव करना सम्यग्दर्शन है। पहले से ही सत्य का संस्कार चाहिए। इससे विपरीत पहले शुभराग करो, फिर इसके बाद वीतराग होओगे ह्र ऐसा माननेवाला तो पहले से ही सत्य का विरोध करता है। यहाँ किसी की बुराई नहीं की गई है, अपितु मिथ्या अभिप्रायवाला कैसा मानता है, उसका ज्ञान कराया गया है।

आत्मा रोटी नहीं खा सकता और उसे छोड़ भी नहीं सकता, किन्तु मानता है कि सब कुछ मेरे आधीन है। सचमुच खाने की व्याख्या तो यह है कि वे पदार्थ उनके गुण-पर्याय को प्राप्त होते हुए इस आकाश के क्षेत्र में स्वयं उनके कारण से आये हैं; उनकी अमुक (इस) प्रकार की अवस्था को खाना अथवा भोजन करना कहते हैं। आत्मा तो नहीं खाता, किन्तु

शरीर भी नहीं खाता। जीव इच्छा द्वारा भी नहीं खाता है; मात्र अज्ञानी इच्छा द्वारा राग-द्वेष और हर्ष-शोकरूप आकुलता को खाता है। संयोग और वर्तमान अंश को ही देखनेवाला पृथक्-पृथक् वस्तुस्वरूप को नहीं देख सकता; इसीलिये उसकी संयोग में एकताबुद्धि होने से वह ज्ञेयों को पृथक्-पृथक् नहीं मानता, अपितु उससे विपरीतरूप देखता है ह्न मानता है, इसीलिये उसे पर्यायमूढ़ परसमय कहा है। जो त्रिकाली अविकारी स्वरूप को मानता है, वह पर्यायमूढ़ नहीं होता।

इसतरह अनेक जीव बाह्यदृष्टि होने से वे एक समय मात्र की वर्तमान अवस्था का आश्रय करते हैं। त्रिकाली द्रव्य स्वभाव को नहीं मानते, किन्तु वर्तमान ज्ञान और वीर्य का विकास तथा शुभाशुभ राग के अंश को ही सम्पूर्ण आत्मा मानते हैं अथवा शुभरागरूप व्यवहार को धर्म मानते हैं। ऐसी मान्यतावाले जीव भले ही द्रव्यलिंग धारण कर नव ग्रैवेयक में जाने योग्य शुभभाव करते हों, फिर भी वे सभी धर्म से विरुद्ध हैं ह्न पर्यायमूढ़ हैं।

जैसी दृष्टि होती है, वैसा स्वीकार होता है। अज्ञानी की अंश व संयोग के ऊपर दृष्टि होने से वह यह माने बिना नहीं रहता कि मेरा वर्तमान, पर के अधीन है और परवस्तु की अवस्था मेरे अधीन है; मैं वाणी को रोक सकता हूँ, मैं फूल न तोड़ूँ, मैं आहार को छोड़ूँ, मैं शरीर को रोककर रख सकता हूँ इत्यादि मान्यतावाला मैं पर की अवस्था को कर सकता हूँ ह्न ऐसी कर्तापने की श्रद्धा को पकड़कर बैठा है।

पदार्थों को यथार्थरूप से जाने और स्वद्रव्य में एकता की वृद्धि करे तो सम्यग्दृष्टि अर्थात् पवित्र दृष्टि हो और मिथ्या मान्यता छूट जाये। समकिती राज्य वैभव में दिखाई देता है, उससे क्या? संयोग तो उससे पृथक् ही पड़े हैं और उनकी दृष्टि में सर्वप्रकार से विभाव का त्याग है और अज्ञानी संयोग से दूर होने पर भी सर्व प्रकार से राग की पकड़वाला है, क्योंकि वह पर से पर का भला-बुरा होना मानता है और वर्तमान अंश जितना ही पदार्थ मानता है। ●

प्रवचनसार गाथा १४

अब, [1]आनुषंगिक ऐसी यह ही स्वसमय-परसमय की व्यवस्था (अर्थात् स्वसमय और परसमय का भेद) निश्चित करके (उसका) उपसंहार करते हैंह्न

जो पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्हि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा॥१४॥

(हरिगीत)

पर्याय में ही लीन जिय परसमय आत्मस्वभाव में।
थित जीव ही हैं स्वसमय ह्न यह कहा जिनवरदेव ने॥१४॥

अन्वयार्थ :ह्न [ये जीवाः] जो जीव [पर्यायेषु निरताः] पर्यायों में लीन हैं [परसमयिकाः इति निर्दिष्टाः] उन्हें परसमय कहा गया है [आत्मस्वभावे स्थिताः] जो जीव आत्मस्वभाव में स्थित हैं [ते] वे [स्वकसमयाः ज्ञातव्याः] स्वसमय जानना चाहिए।

टीका :ह्न जो जीवपुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का ह्न जो कि सकल अविद्याओं का एक मूल है, उसका ह्न आश्रय करते हुए [2]यथोक्त आत्मस्वभाव की [3]संभावना करने में नपुंसक होने से उसी में बल धारण करते हैं (अर्थात् उन असमानजातीय द्रव्य-पर्यायों के प्रति ही बलवान हैं), वे ह्न जिनकी [4]निरर्गल एकान्तदृष्टि उछलती है, ऐसे ह्न 'यह मैं मनुष्य ही हूँ, मेरा ही यह मनुष्य शरीर है, इसप्रकार अहंकार-ममकार से ठगाये जाते हुए, अविचलितचेतनाविलासमात्र [5]आत्मव्यवहार से च्युत होकर, जिसमें समस्त क्रियाकलाप को छाती से लगाया जाता है ह्न ऐसे [6]मनुष्यव्यवहार का आश्रय करके रागी-द्वेषी होते हुए पर द्रव्यरूप कर्म के

१. आनुषंगिक = पूर्व गाथा के कथन के साथ सम्बन्धवाली।
२. यथोक्त = पूर्व गाथा में कहा जैसा।
३. संभावना = संचेतन; अनुभव; मान्यता; आदर।
४. निरर्गल = अंकुश बिना की; बेहद (जो मनुष्यादि पर्याय में लीन हैं, वे बेहद एकांतदृष्टिरूप हैं।)
५. आत्मव्यवहार = आत्मारूप वर्तन, आत्मारूप कार्य, आत्मारूप व्यापार।
६. मनुष्यव्यवहार = मनुष्यरूप वर्तन (मैं मनुष्य ही हूँ। ऐसी मान्यतापूर्वक वर्तन।)

साथ संगतता के कारण (परद्रव्यरूप कर्म के साथ युक्त हो जाने से) वास्तव में [१]परसमय होते हैं अर्थात् परसमयरूप परिणमित होते हैं।

और जो [२]असंकीर्ण द्रव्य गुण-पर्यायों से सुस्थित भगवान आत्मा के स्वभाव का ह्न जो कि सकल विद्याओं का एक मूल है, उसका आश्रय करके यथोक्त आत्मस्वभाव की संभावना में समर्थ होने से पर्यायमात्र प्रति के बल को दूर करके आत्मा के स्वभाव में ही स्थिति करते हैं (लीन होते हैं), वे ह्न जिन्होंने सहज-विकसित अनेकान्तदृष्टि में समस्त एकान्तदृष्टि के [३]परिग्रह के आग्रह प्रक्षीण कर दिये हैं, ऐसे ह्न मनुष्यादि गतियों में और उन गतियों के शरीरों में अहंकार-ममकार न करके अनेक कक्षों (कमरों) में [४]संचारित रत्नदीपक की भाँति एकरूप ही आत्मा को उपलब्ध (अनुभव) करते हुए, अविचलित चेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार को अंगीकार करके, जिसमें समस्त क्रियाकलाप से भेंट की जाती है ह्न ऐसे मनुष्य व्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए, राग-द्वेष का उन्मेष (प्राकट्य) रुक जाने से परम उदासीनता का आलंबन लेते हुए, समस्त परद्रव्यों की संगति दूर कर देने से मात्र स्वद्रव्य के साथ ही संगतता होने से वास्तव में [५]स्वसमय होते हैं अर्थात् स्वसमयरूप परिणमित होते हैं। इसलिये स्वसमय ही आत्मा का तत्त्व है।

भावार्थ ह्न मैं मनुष्य हूँ, शरीरादि की समस्त क्रियाओं को मैं करता हूँ, स्त्री-पुत्र-धनादि के ग्रहण-त्याग का मैं स्वामी हूँ ह्न इत्यादि मानना, सो मनुष्यव्यवहार (मनुष्यरूप प्रवृत्ति) है; मात्र अचलित चेतना, वह ही

१. जो जीव पर के साथ एकत्व की मान्यतापूर्वक युक्त होता है, उसे परसमय कहते हैं।
२. असंकीर्ण = एकमेक नहीं ऐसे; स्पष्टतया भिन्न (भगवान आत्मस्वभाव स्पष्ट भिन्न-पर के साथ एकमेक नहीं ऐसे ह्न द्रव्यगुणपर्यायों से सुस्थित है।)
३. परिग्रह = स्वीकार; अंगीकार।
४. संचारित = ले जाये गये। (जैसे, भिन्न-भिन्न कमरों में ले जाया गया रत्नदीपक एकरूप ही है, वह किंचित्मात्र भी कमरे के रूप में नहीं होता और न कमरे की क्रिया करता है, उसीप्रकार भिन्न-भिन्न शरीरों में प्रविष्ट होनेवाला आत्मा एकरूप ही है, वह किंचित्मात्र भी शरीररूप नहीं होता और न शरीर की क्रिया करता है ह्न इसप्रकार ज्ञानी जानता है।)
५. जो जीव स्व के साथ एकत्व की मान्यतापूर्वक (स्व के साथ) युक्त होता है, उसे स्व-समय कहा जाता है।

मैं हूँ ह्न ऐसा मानना-परिणमित होना, सो आत्मव्यवहार (आत्मारूप प्रवृत्ति) है।

जो मनुष्यादिपर्याय में लीन हैं, वे एकान्तदृष्टिवाले लोग मनुष्यव्यवहार का आश्रय करते हैं, इसलिये रागी-द्वेषी होते हैं और इसप्रकार परद्रव्यरूप कर्म के साथ सम्बन्ध करते होने से वे परसमय हैं; और जो भगवान आत्मस्वभाव में ही स्थित हैं, वे अनेकान्तदृष्टिवाले लोग मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करके आत्मव्यवहार का आश्रय करते हैं, इसलिये रागी-द्वेषी नहीं होते अर्थात् परम उदासीन रहते हैं और इसप्रकार परद्रव्य रूप कर्म के साथ सम्बन्ध न करके मात्र स्वद्रव्य के साथ ही सम्बन्ध करते हैं, इसलिये वे स्वसमय हैं।

गाथा १४ पर प्रवचन

शरीर-मन-वाणी शुभाशुभराग वर्तमान अंश है ह्न पर्याय है, उसमें जो जीव लीन है, उसे परसमय कहा है और जो जीव स्व-पर ज्ञेयों को ज्ञेयरूप से जानता है, अंश अंशी से है ह्न ऐसा जानकर आत्मस्वभाव में स्थित है, उसे स्वसमय कहा है।

जो जीव-पुद्‌गल स्वरूप असमानजातीय द्रव्यपर्याय का ह्न जो कि सर्व अज्ञान का मूल है, आश्रय करते हैं; ज्ञेयों को ज्ञेयरूप नहीं जानते, उनकी अंश में एकता और पूर्णता की बुद्धि द्वारा वे उसे मिथ्या प्रतिभास का विषय बनाते हैं ह्न मिथ्यात्व का मूल कारण बनाते हैं; वे सभी पूर्व कथित यथार्थ आत्मस्वभाव का स्वीकार अर्थात् अनुभव करने के लिए नालायक (लायक नहीं) अर्थात् नपुंसक होने से देहादि में ही बल धारण करते हैं।

नित्य अनंतगुण सामर्थ्य सम्पन्न, सबल स्वभाव को जो चूका, वह क्षणिक विभाव और शरीर संयोग में सर्वस्व मानता है। पराश्रयरूप शुभाशुभ व्यवहार-जड़भावरूप अंश है; उसमें जिसकी रुचि है, वह जीव विकारी पर्याय का अवलम्बन करने में पुरुषार्थ मानता है। स्व-पर का यथार्थ निश्चय करनेवाले ज्ञान को अवस्थित स्वभाव तरफ झुकाने के

पुरुषार्थ रहित अर्थात् पुरुषार्थहीन होने से वह अज्ञानी नपुंसक है। वह कहता है कि अभी यहाँ सूक्ष्म निश्चय धर्म की बात न करो; बाह्य समाज को सुखी करो...इत्यादि मान्यताओं द्वारा चाहे जिसप्रकार शरीर को ही आत्मा मानता है। पुण्य-पाप और संयोग रहित आत्मस्वभाव त्रिकाल ज्ञान-स्वरूप है। उसका वह अनादर करता है और शरीर की क्रिया व शरीर की वर्तमान अवस्था में उत्साह-बल धारण करता है। शरीर अच्छा हो, सुखी हो तो सब ठीक हो, इसप्रकार शरीर पर जोर देनेवाले तथा पुण्य-पापरूप अचेतन अवस्था के ऊपर जोर देनेवाले सभी असमानजातीय द्रव्यपर्याय पर जोर देनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं।

जैसा पदार्थों का स्वरूप है, वैसा जाने तो ज्ञान की निर्मलता होती है और निर्मलता होने पर दृष्टि यथार्थ होती है। प्रत्येक पदार्थ विस्तार विशेष और आयत विशेष सहित है। उसमें विस्तार-विशेष की बात कही जा चुकी है और अब आयत विशेष की अर्थात् पर्याय की बात चलती है। पर्यायें द्रव्यात्मक भी हैं और गुणात्मक भी हैं। द्रव्यपर्याय दो प्रकार की है :-

(१) समानजातीय द्रव्यपर्याय :ह्न जैसे लकड़ी एक समानजातीय द्रव्यपर्याय है। उसमें एक-एक परमाणु की अवस्था उनके द्रव्य के आधार से हुई है और स्वयं के कारण स्कंधरूप हुई है, फिर भी अज्ञानी जीव मानता है कि इस लकड़ी की अवस्था मेरे से और वसूले आदि से हुई है। अज्ञानी संयोग को देखता है, किन्तु उस पर्याय का आधार तो पुद्‌गल द्रव्य है, जीव द्रव्य नहीं ह्न ऐसा वह नहीं मानता, यह उसकी पर्यायदृष्टि है तथा उस लकड़ी की अवस्था वसूले से भी नहीं हुई है; क्योंकि वसूला पृथक् द्रव्य है; इसीलिये वह लकड़ी की अवस्था को नहीं कर सकता; फिर भी वसूले से और जीव के राग से लकड़ी की अवस्था हुई है ह्न ऐसा मानना भ्रांति है।

(२) असमानजातीय द्रव्यपर्याय :ह्न शरीर और आत्मा एक क्षेत्र में रहे हुए हैं, वे असमानजातीय द्रव्यपर्याय हैं। शरीर की क्रिया आत्मा कर

सकता है ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है; यह जीव पर्याय तो संयोग को देखता है। शरीर की पर्याय का आधार जीव नहीं; अपितु पुद्‌गल द्रव्य है, उसे वह नहीं देखता; वह पर्यायमूढ़ है, इसीलिये उसे धर्म नहीं होता। गुणपर्याय दो प्रकार की हैं ह्न (१) स्वभाव पर्याय, (२) विभाव पर्याय।

(१) स्वभाव पर्याय :ह्न सभी द्रव्यों में अपने-अपने अगुरुलघुगुण के कारण समय-समय षट्स्थान पतितहानिवृद्धिरूप अनेकपना होता है, वह स्वभावपर्याय है। अनन्तगुणी वृद्धि, असंख्यातगुणी वृद्धि, संख्यातगुणी वृद्धि, अनंतभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि ह्न इस तरह ६ प्रकार से वृद्धि और अनंतगुणी हानि, असंख्यातगुणी हानि, संख्यातगुणी हानि, अनंतभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, संख्यातभाग हानि ह्न इसप्रकार ६ प्रकार से हानि ह्न ऐसे कुल बारह प्रकार हैं।

अगुरुलघुगुण के कारण षट्‌गुणी-हानिवृद्धिरूप सूक्ष्म परिणमन संसारी और सिद्ध सभी जीवों को होता है और सभी द्रव्यों को होता है। यह बहुत ही सूक्ष्म बात है और आगमगम्य है।

(२) विभाव पर्याय :ह्न आत्मा में अपने कारण ज्ञान, दर्शन, वीर्य इत्यादि गुणों की अवस्था में हीनाधिकपना होता है, उसमें पर पदार्थ निमित्त होता है। क्षण में ज्ञान बढ़ता है और क्षण में ज्ञान घटता है, क्षणिक में विकार कम होता है और बढ़ता है; इसप्रकार घटा-बढ़ी हुआ करती है। क्षणभर में पर्याय में निर्मलता थोड़ी होती है और क्षणभर में निर्मलता बढ़ जाती है। इसतरह पूर्व की अवस्था और पश्चात् की अवस्था में तारतम्यता होती है, उसके कारण स्वभाव-विशेषरूप अनेकपना होता है, वह विभावपर्याय है।

यही जो स्वभाव विशेष कहा है, उसका अर्थ यह है कि ह्न स्वयं करता है और स्वयं में होता है। इसीलिये उसे स्वभाव कहा है। यह विभाव पर्याय संसारी जीवों में होती है। गुणों की विकारी तथा अविकारी अवस्था में हीनाधिकता दिखाई देती है, वह विभाव पर्याय है। जो जीव

ऐसे अनेकपने को पर के आधार से अथवा कर्म के आधार से मानता है तथा पर्यायरूप अंश की जितना ही अपना स्वरूप मानता है वह जीव पर्यायमूढ़ है; क्योंकि जो अनेकपना होता है, वह अपने त्रिकाली गुण के आधार से है और उसमें अटककर अपनी योग्यता के कारण से हीनदशा होती है ह्न ऐसा जो नहीं मानता, किन्तु पर के कारण होता है ऐसा मानता है, उस जीव को धर्म नहीं होता।

इसीतरह पुद्‌गल द्रव्य की काली-लाल, खट्टी-मीठी, रूखी-चिकनी इत्यादि पर्याय में अनेकपना होता है, वह उसकी विभाव पर्याय है। अज्ञानी जीव पर्याय का अनेकपना बाहर के संयोग के आधार से अथवा जीव के कारण से हुआ है ह्न ऐसा मानता है। जैसे आम की पीली अवस्था घास के कारण हुई है अथवा जीव ने उसे पाल में पकाया है तो हुई है ह्न ऐसा मानता है; किन्तु इस अनेकता का आधार उसके स्पर्श, रस गंध और वर्ण है और उस गुण के आधार से पर्याय होती है ह्न ऐसा जो नहीं मानता, वह जीव पर्यायमूढ़ है, उसे धर्म नहीं होता।

इसतरह जो जीव अपनी पर्याय का तथा सामनेवाले पदार्थ की भी पर्याय मात्र का ही ज्ञान करता है और वह पर के कारण होती है ह्न ऐसा मानता है, उसका आधार गुण है ह्न ऐसा नहीं मानता, उसे गुणात्मक पर्याय का सच्चा ज्ञान नहीं है, उसे धर्म नहीं होता। अब इस कथन को दृष्टांत से दृढ़ करते हैं।

(१) वस्त्र के स्पर्श, रस, रंग आदि कायम रहनेवाले गुण विशेष हैं और पुरानी-नई, काली-सफेद इत्यादि प्रवाहरूप होनेवाली अवस्था विशेष है; उसे गौण करें तो उसमें जो सामान्यपना है, उसके द्वारा उस वस्त्र की रचना हुई है। इसीप्रकार आत्मा के कायम रहनेवाले ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण विशेष हैं और उसकी प्रवाहरूप से होने वाली एक के बाद एक विकारी अथवा अविकारी अवस्था विशेष हैं, उसे लक्ष्य में न लें तो जो सामान्यपना है, उसके द्वारा आत्मद्रव्य की रचना हुई है।

(२) जैसे ह्न वस्त्र उसके गुणों और पर्यायों से रचित है। वह उसके स्पर्शादि गुणों से पृथक् नहीं है, इसीलिये वस्त्र गुणात्मक है अर्थात् वस्त्र

के गुण वस्त्र में हैं; इसीप्रकार आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों से पृथक् नहीं है, इसलिये आत्मा गुणस्वरूप ही है।

(३) जैसे ह्न वस्त्र का तागा एक ही जाति का हो और उसे साँध कर वस्त्र बनाया हो तो वह समानजातीय द्रव्यपर्याय है, वैसे ही पुद्‌गल के दो से अधिक परमाणुओं से बने हुए स्कंध समानजातीय द्रव्यपर्याय हैं; उसीप्रकार अन्य पुद्‌गल के स्कन्धों को समझना।

(४) जिसतरह रेशमी और सूती वस्त्र के बने हुए तागे भिन्न जाति के होने से असमानजातीय द्रव्यपर्याय है; उसी तरह अनेक जीव-पुद्‌गलात्मक देव और मनुष्य असमानजातीय द्रव्यपर्याय हैं; क्योंकि मनुष्य का जीव के चैतन्य द्रव्य है और शरीर पुद्‌गल द्रव्य है।

समानजातीय द्रव्यपर्यायों में अथवा असमानजातीय द्रव्यपर्यायों में एक-एक पर्याय उनके द्रव्य के आधार से हुई है, फिर भी अज्ञानी जीव मानता है कि मैं था तो पुद्‌गल की पर्याय हुई, मैं था तो शरीर चला; किन्तु पर्याय का आधार द्रव्य है, इसका उसे भान नहीं है; इसीलिये वह पर्यायमूढ़ है, उसे धर्म नहीं होता।

(५) जैसे ह्न किसी वस्त्र में अपने स्थूल अगुरुलघुगुण के कारण जो अनेक प्रकार की अवस्था होती है, वह गुणात्मक स्वभावपर्याय है; वैसे ही समस्त पदार्थों में स्वयं अपने सूक्ष्म अगुरुलघुगुण द्वारा प्रत्येक समय प्रगट होने वाली ६ स्थान हानि और ६ स्थान वृद्धिरूप अनेकपना गुणात्मक स्वभाव पर्याय है, जो सूक्ष्म बात है।

(६) जैसे वस्त्र अपनी वर्तमान योग्यता और निमित्त (बाहर के पदार्थ) के कारण से नीले-पीले रंगरूप होते हैं, सुगंध-दुर्गंध वाले होते हैं और मैले इत्यादि भी होते हैं, उसमें हाथ या अन्य निमित्त होता है ह्न ऐसी तारतम्यता दिखती है; इसीतरह आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि की हीनाधिकता और पुद्‌गलों में स्पर्श, रस, गंध आदि में फेरफार होती हुई अवस्था के कारण तारतम्यता दिखाई देती है। यह अनेकपना गुणात्मक विभाव पर्याय है।

यहाँ स्वभाव विशेषोंरूप प्रवर्तती ऐसा कहा है। उसका कारण ऐसा नहीं है कि हीनाधिकता कर्म और परपदार्थ के कारण हुई है, किन्तु अपनी पर्याय की योग्यता से हुई है, तब अन्य चीज निमित्त होती है ह्र ऐसा यहाँ स्व-पर का ज्ञान कराया है। विभाव में पर अर्थात् निमित्त की उपस्थिति होती है।

प्रत्येक पदार्थ की व्यंजनपर्यायें अथवा अर्थपर्यायें स्वयं के कारण हीनाधिकतारूप परिणमित होती हैं, किन्तु कोई अन्य द्रव्य उन्हें बदल सके ह्र ऐसा नहीं होता। पर्याय उनके द्रव्य और त्रिकाली शक्तियों के आधार से है ह्र ऐसा माने तो द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप बराबर माना है ह्र ऐसा कहा जायेगा।

द्रव्यात्मक पर्याय में सम्पूर्ण द्रव्य की प्रदेशत्व तथा अन्य सभी गुणों की अभेद पर्याय समा जाती है और गुणात्मकपर्याय में एक-एक गुणभेद करके प्रत्येक गुण की अवस्था कही है। वस्तुतः द्रव्यपर्याय में कोई गुणपर्याय बाकी नहीं रह जाती और गुणपर्याय कहने पर व्यंजन पर्याय तथा अर्थ पर्यायों का पिण्ड अभेद, वही द्रव्यपर्याय है। द्रव्यपर्याय में अभेद से समझाया है और गुणपर्याय में भेद से समझाया है।

वास्तव में इसतरह सर्व पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वभाव की व्यवस्था सर्वज्ञ भगवान ने कही है, वह परिपूर्ण है और उत्तम है। प्रत्येक पर्याय स्वयं अपने द्रव्य और गुण के आधार से होती है, किन्तु अन्य के आधार से नहीं होती। इसके अतिरिक्त अन्य कोई व्यवस्था नहीं है। अज्ञानी जीव अन्य किसी तरह से कहता हो तो वह सर्वज्ञ की बात नहीं, अपितु मिथ्यादृष्टि की बात समझना। बहुत से जीव अवस्था मात्र को देखते हैं; उन जीवों की पदार्थों के यथार्थ स्वरूप से विपरीत मान्यता के कारण दर्शनमोह की उत्पत्ति होती है, इसीलिये वे जीव परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं।

अज्ञानी अपने त्रिकाली स्वरूप को तथा शक्तियों को नहीं मानता। पर्याय में जो राग हुआ और मतिज्ञान अथवा श्रुतज्ञानरूप जो अंश प्रगट

हुआ और जैसा मनुष्यादि का आकार हुआ, वैसा और उतने ही आकारवाला, अंशवाला अथवा विकारवाला अपने को मानते हैं; इस जीव की दृष्टि स्व के ऊपर नहीं, किन्तु पर के ऊपर ही है। वह मानता है कि जो राग हुआ है, वह कर्म से हुआ है; आकार हुआ है, वह शरीर से हुआ है अथवा नामकर्म से हुआ है; उसकी दृष्टि पर के ऊपर ही है। चाहे कोई पर्याय हो ह्र व्यंजन अथवा अर्थ पर्याय, विकारी अथवा अविकारी ह्र ये सभी पर्याय स्वयं में अपने कारण से होती हैं, किन्तु किसी पर के कारण से होती ही नहीं।

अज्ञानी जीव का लक्ष्य हीनाधिक अवस्था के ऊपर जाता है और वह हीनाधिकता में परद्रव्य का कारण मानता है, इसीलिये परद्रव्य के ऊपर ही इसका लक्ष्य जाता है, किन्तु हीनाधिकपना द्रव्य-गुण के साथ सम्बन्ध रखता है, उसका ज्ञान वह नहीं करता।

प्रत्येक परमाणु की पर्याय उसके अपने कारण से होती है – ऐसा होने पर भी अज्ञानी मानता है कि संयोग थे तो सामनेवाले परमाणु की अवस्था हुई, किन्तु इस परमाणु की अवस्था किसकी है ह्र इसका वह विचार नहीं करता, अकेले अंश को ही स्वीकार करनेवाला अंश का आधार ऐसे अंशी को स्वीकार नहीं करता; इसीलिये ऐसा मानता है कि यह अंश पर के कारण होता है। अकेले वर्तमान और भेद के ऊपर ही उसका लक्ष्य है। वह देह को ही देखता है, किन्तु स्व को नहीं देखता।

एकमात्र अपनी पर्याय को ही देखनेवाला अपने द्रव्य-गुण को नहीं देखता, एकमात्र पर की पर्याय को ही देखनेवाला पर के द्रव्य-गुण को नहीं देखता। मैं हूँ तो पर की पर्याय है और परपदार्थ है तो अपनी पर्याय है ह्र ऐसा माननेवाला जीव पर्यायमूढ़ है, अज्ञानी है। तीनों ही काल अज्ञानी जीव तो बहुत होते हैं और ज्ञानी कम होते हैं।

प्रश्न ह्र पर्याय तो अपनी है और आप पर्याय को स्वीकार करनेवाले को मूढ़ कहते हैं तो आप पर्याय को नहीं मानते ह्र ऐसा हमें लगता है। आपकी मान्यता के अनुसार तो द्रव्य अकेला कूटस्थ हो, इसीलिये

आपकी बात सच्ची नहीं लगती। अपनी पर्याय माननेवाले को आप परसमय क्यों कहते हो?

उत्तर ह्न भाई! पर्याय है ह्न ऐसा तो मानना चाहिए और द्रव्य सर्वथा कूटस्थ है ह्न ऐसा तो हम नहीं कहते, किन्तु पर्याय अपने द्रव्य-गुण में से आती है ह्न ऐसा हम कहना चाहते हैं। जो जीव ऐसा मानता है कि पर्याय पर के आधार से होती है अथवा जो पर्याय जितना ही सम्पूर्ण द्रव्य मानता है, जिसमें से पर्याय आती है, ऐसे द्रव्य-गुण को जो नहीं देखता, किन्तु अकेले अंश को ही देखता है, वह जीव परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि वह ऐसा मानता है कि इस पर्याय का होना पर के कारण से ही है। इस जीव की दृष्टि परसन्मुख है, स्वसन्मुख नहीं। तालाब के समीप खड़ा हुआ मनुष्य तालाब के किनारे जो लहरें आती हैं, उन लहरों को देखता है, किन्तु लहरें जिसमें से आती हैं और जहाँ समाती हैं ह्न ऐसे तालाब को नहीं मानता, वह सम्पूर्ण तालाब का सच्चा ज्ञान नहीं करता, वैसे ही आत्मा में पर्यायें आती हैं और जाती हैं, किन्तु पर्यायें जिसके आश्रय से आती हैं और जिसमें समाती हैं, उस द्रव्य-गुण को माने बिना एकमात्र पर्याय को ही माननेवाला, मिथ्यादृष्टि है; वह स्वद्रव्य को नहीं देखता तथा वह परद्रव्य को भी नहीं देखता।

अज्ञानी सामनेवाले जीव की अवगुण की पर्याय को देखकर द्वेष करता है और केवली भगवान की केवलज्ञान पर्याय को देखकर राग करता है; इस जीव की भगवान की तरफ भक्ति होने पर भी उसकी एकमात्र पर्याय के ऊपर है, इसीलिये वह मिथ्यादृष्टि है। यह अज्ञानी जीव मानता है कि कर्म हटे तो केवलज्ञान की पर्याय हुई अथवा शुभराग था तो हुई अथवा श्रुतज्ञानरूप अंश में से वह हुई है ह्न यह उसकी अंशदृष्टि है। जबकि केवलज्ञान का आधार कर्म का अभाव, शुभराग अथवा पूर्व पर्याय नहीं है, अपितु अंशी ऐसा आत्मा जो ज्ञान का भंडार, शक्तिस्वरूप त्रिकाली द्रव्य है, उसमें से केवलज्ञान की पर्याय समय-समय बहती है ह्न ऐसा अज्ञानी नहीं मानता।

भगवान है, इसीलिये मुझे राग हुआ; दूसरे ने गाली दी, इसलिये मुझे द्वेष हुआ और शुभराग हुआ, इसीलिये मुझे ज्ञान हुआ ह्न ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। ज्ञान की पर्याय, राग की पर्याय अथवा द्वेष की पर्याय का आधार मेरा द्रव्य और गुण है, किन्तु परपदार्थ नहीं। चारित्रगुण में अटककर मेरी कमजोरी के कारण राग-द्वेष होते हैं ह्न ऐसा जो मानता है, उसकी दृष्टि अपने द्रव्य पर गई तो फिर उसे पर की पर्याय अथवा परद्रव्य के सामने देखना नहीं रहा। पर की पर्याय भी अपने द्रव्य के आधार से होती है ह्न ऐसा वे मानते हैं; इसका नाम द्रव्यदृष्टि है। इसप्रकार अपना द्रव्य जो शान्ति और ज्ञान का भंडार है और देखने पर अपनी पर्याय में जो अल्प राग-द्वेष रहता है ह्न कमजोर हो जाता है और वह विशेष पुरुषार्थ द्वारा अपने द्रव्य में ही विशेष स्थिरता करते हुए वह वीतरागता तथा केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

प्रत्येक पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप है ह्न ऐसा जिनेन्द्र भगवान की वाणी में दर्शाया हुआ सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप ही यथार्थ है। तीनों काल में ज्ञानियों ने ऐसा ही कहा है।

जो जीव द्रव्य-गुण को नहीं जानता और मात्र पर्याय को ही देखता है, वह जीव अज्ञानी है। अज्ञानी मानता है कि देव-गुरु-शास्त्र से सम्यक्त्व होता है, प्रतिमा से शुभभाव होता है। नामकर्म के कारण आत्मा का आकार हुआ है और मैं हूँ तो पर की पर्याय होती है; किन्तु पर्याय, द्रव्य-गुण के आधार से पर्याय होती है। स्वयं पर में अटकता है तो राग होता है ह्न ऐसा निर्णय करने पर राग का ज्ञाता हो जाता है और द्रव्यदृष्टि हो जाती है।

अज्ञानी जीव पर से अथवा शुभराग से ज्ञान हुआ ह्न ऐसा मानता है। निमित्त की पर्याय तो उनके द्रव्य-गुण से है, वह पर में काम नहीं कर सकती। ज्ञान गुण की पर्याय में ज्ञान होता है, किन्तु निमित्त से वह पर्याय नहीं होती, शुभराग चारित्रगुण की विकारी पर्याय है और ज्ञान का होना, वह ज्ञान की पर्याय है। एक गुण के कारण दूसरे गुण की पर्याय नहीं हो

सकती तथा अज्ञानी मानता है कि केवली भगवान के कारण क्षायिक सम्यक्त्व होता है। पूजा के समय जो हाथ की क्रिया हुई, वह मेरे कारण होती है; प्रतिमा के कारण शुभराग हुआ और शुभराग हुआ, इसीलिये ज्ञान हुआ। व्यापार का राग किया तो पैसा मिला है, सामनेवाले जीव ने हाथ में तलवार ली है, इसीलिये उसमें द्वेष हुआ है। इत्यादि सभी कथन अज्ञानियों के हैं, प्रत्येक पर्याय अपने द्रव्य-गुण के आश्रय से है ह्र ऐसा वे नहीं मानते।

अपने ज्ञान और धर्म के लिए यदि राग की जरूरत पड़े तो पराधीनता चालू रहेगी। अपनी धर्म पर्याय के लिए राग के सामने देखना पड़ेगा और राग के लिए निमित्त के सामने देखना पड़ेगा ह्र ऐसा होने पर जीव कभी भी पर से अलग नहीं हो सकेगा और स्व तरफ झुक नहीं सकेगा।

वस्तु एक है और गुण अनेक हैं; वे एक नहीं हो सकते। अवस्थाएँ एक के बाद एक प्रत्येक समय होती हैं। इसलिये द्रव्य-गुण जो शक्तिरूप है, जो पर्याय के कारण है, उस ओर जीव को लक्ष्य देना चाहिए।

प्रश्न :ह्र द्रव्य-गुण तो अभव्य में भी है न? तो फिर उसे धर्म क्यों नहीं होता?

उत्तर :ह्र अपने पारिणमिक स्वभाव के ज्ञान बिना द्रव्य-गुण होने पर भी कार्यकारी नहीं होते। जैसे सुमेरु पर्वत के नीचे स्वर्ण का ढेर है, वह किस काम का? वैसे ही अज्ञानी जीव राग और निमित्त की पर्याय पर लक्ष्य करता है, किन्तु अप्रगट त्रिकाली द्रव्य जो शक्ति का भंडार है तथा सुख-शान्ति से भरपूर है, उसका लक्ष्य नहीं करता तो वह किस काम का? वैसे ही बाह्य ज्ञान का उघाड़ बहुत होने पर भी अभ्यंतर जो ज्ञान का पिण्ड पड़ा है, उसे जो जीव नहीं मानता, उस जीव को ध्रुव स्वभाव होने पर भी उसके लिए वह कार्यकारी नहीं होता; वह पर्यायमूढ़ जीव है, उसे धर्म नहीं होता। वह अकेली पर्याय को माननेवाला, बाह्य में जैन होने पर भी अभिप्राय में बौद्धमती है।

भेदज्ञानी जीव यथार्थ जानता है कि अपने को जो राग होता है, वह

पर से नहीं होता, किन्तु अपनी कमजोरी से होता है तथा एक गुण की पर्याय से दूसरे गुण की पर्याय नहीं होती। इसप्रकार अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तथा पर-निमित्त इत्यादि का वह यथार्थ भेदज्ञान करता है; इसीतरह समानेवाले जीवों में, केवली भगवान में, साधकजीवों में, अज्ञानी जीवों में जो जो अवस्था होती है; उसी तरह परमाणु में भी रूखी-चिकनी, भारी-हल्की इत्यादि अवस्थाएँ होती हैं, वे उन द्रव्यों और गुणों के आधीन हैं। पर की व्यंजन पर्याय अर्थात् आकार और अन्य अवस्थाएँ उनके द्रव्य-गुण से होती हैं, किन्तु किसी दूसरे के द्रव्य-गुण से नहीं होती। इसप्रकार सम्यग्ज्ञानी द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थ ज्ञान करता है और मिथ्यादृष्टि अपना, पर जीवों का अथवा पुद्‌गलों के द्रव्य-गुण-पर्याय में से एक का भी सही ज्ञान नहीं करता; उसका सारा ही ज्ञान मिथ्या है।

संसारदशा में राग की विचित्रता तथा पाप की विचित्रता कर्म के कारण हुई है ह्र ऐसा मानना भ्रम है; किन्तु ज्ञानी मानते हैं कि मैं तो द्रव्य-गुण का पिण्ड हूँ; पर में अटकने से मेरी कमजोरी से विकार हुआ है ह्र इसीलिये स्वभाव के आश्रय से उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है और पूर्ण होकर केवलज्ञान होता है। यह एक ही धर्म है और मोक्ष का रास्ता है।

क्या साधक को कर्म के कारण राग होता है? नहीं।

क्या मिथ्यादृष्टि कर्म के कारण रखड़ता है? नहीं।

क्या कर्म के कारण जीव अनादि से निगोद में है? नहीं।

क्या अघातिकर्मों के कारण केवली भगवान की योग आदि गुणों की पर्याय अपूर्ण है? नहीं।

स्वयं की योग्यता से प्रत्येक जीव की पर्यायें अपूर्ण अथवा विपरीत परिणमित हो रही हैं। किसी जीव को नरक की आयु बँधी है, इसलिये उसे मरण के समय खराब भाव हुए तो वह नरक में गया ह्र ये सभी बातें अज्ञानियों की हैं।

कोई भी पर्याय, निमित्त से नहीं होती। पूर्व पर्याय में संस्कार थे, इसीलिये यह हुई है ह्न ऐसा नहीं है तथा एक गुण की पर्याय प्रगट हुई, इसीलिये दूसरे गुण की पर्याय प्रगट हुई है ह्न ऐसा नहीं है। भविष्य में नरक में जाने का कर्म बाँधा है, इसीलिये अशुभराग हुआ है ह्न ऐसा भी नहीं है।

श्रेणिकराजा ने तीर्थंकर प्रकृति बाँधी है, इसलिये वे भविष्य में तीर्थंकर होंगे ह्न ऐसा नहीं है और तीर्थंकर प्रकृति के कारण वे मुक्त दशा को पाएँगे, ऐसा भी नहीं है। इसप्रकार यथार्थ ज्ञान करे तो कर्म, परपदार्थ, निमित्त, पूर्व पर्याय व भविष्य में होनेवाली पर्यायें ह्न इन सभी के ऊपर से लक्ष्य उठ जाता है।

ज्ञानी पुरुष अनादि के अज्ञानी को बहुत प्रकार से अलग-अलग विधि से सरलता से उसकी आत्मा का स्वरूप को बताते हैं, किन्तु वह निमित्त और पर्याय दृष्टि को छोड़ता, नहीं छोड़ता। जैसे माता-पिता, पुत्र को कहते हैं कि ह्न भाई ! तुझे जो भी चाहिए था, वह सब लाकर दे दिया है, अतः अब तो शांत रह ! वैसे ही केवलज्ञानी पिता अज्ञानी को कहते हैं कि हे भाई ! तुझे वस्तुस्वरूप का ज्ञान सभी पहलुओं से यथार्थ बताया है; अतः अब तो आज के मांगलिक दिन पराधीन दृष्टि छोड़कर शांत रह और तेरे स्वरूप में रमण कर और सुखी हो।

अब पूर्व गाथा के कथन के साथ सम्बन्धवाली इस स्वसमय-परसमय की व्यवस्था का निर्णय करके उपसंहार करते हैं। जो जीव पर्याय में लीन है, उनको परसमय कहा है और जो जीव आत्मस्वरूप में स्थित हैं, उनको स्वसमय जानना।

प्रश्न :ह्न पर्याय तो अपनी है तो फिर पर्याय के माननेवाले को परसमय (मिथ्यादृष्टि) क्यों कहा?

उत्तर :ह्न अज्ञानी जीव मानता है कि क्षयोपशम भाव से क्षायिकभाव होता है; वह जीव पर्याय में से पर्याय का होना मानता है और एक गुण की पर्याय से दूसरे गुण की पर्याय होती है ह्न ऐसा मानता है। जबकि ज्ञान की

अथवा चारित्र की अथवा चाहे कोई भी पर्याय हो, वह अपने द्रव्य-गुण के आधार से होती है ह्न ऐसा जो नहीं मानता, वह पर्याय को माननेवाला मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न ह्न प्रवचनसार, गाथा १२ के श्लोक ६ में केवलज्ञान की सिद्धि के अर्थ प्रशम के लक्ष्य से .... ऐसा कहा है ना?

उत्तर ह्न भाई! केवलज्ञान की पर्याय अपने द्रव्य और ज्ञानगुण के आधार से है, किन्तु प्रशम के आधार से नहीं प्रशम होता है, वह बात बराबर है। प्रशम अर्थात् वीतरागता होने के पश्चात् केवलज्ञान होता है, किन्तु केवलज्ञान का आधार चारित्र गुण की पर्याय नहीं है। वहाँ तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताया है, किन्तु एक पर्याय दूसरी पर्याय के आधीन है ह्न ऐसा नहीं बताया। वीतरागता अपने चरित्रगुण के आधार से है और केवलज्ञान अपने ज्ञानगुण के आधार से प्रगट हुआ है। चारित्रगुण और ज्ञानगुण अपने आत्मा के आधार से है अर्थात् अभेद अपेक्षा से अपने द्रव्य के आधार से प्रत्येक पर्याय प्रगट होती है।

इसतरह जो जीव सही समझ करे तो वह स्वसमय होता है और धर्म को प्राप्त होता है। कोई जीव इस गाथा में आये हुए शब्दों का दूसरी तरह से अर्थ करता है कि ह्न परसमय अर्थात् अन्यमती और स्वसमय अर्थात् (अपना माना हुआ) जैनमत। यह उसकी भूल है। भाई! जैन कोई बाड़ा नहीं है। जो जीव अकेली पर्याय में मूढ़ है और पर्याय की उत्पत्ति पर से अथवा पूर्व पर्याय से हुई है ह्न ऐसा मानता है, किन्तु द्रव्य-गुण जो कि पर्याय का आधार है, उसे स्वीकार नहीं करता; वह जीव जैन सम्प्रदाय में होने पर भी परसमय ही है और अपनी पर्याय अपने द्रव्य-गुण के आधार से है, किन्तु पर से नहीं ह्न ऐसा जो जीव यथार्थ मानता है, वह स्वसमय है।

ज्ञेय अधिकार में पहली और दूसरी गाथा में मजबूत आधार रखा है और उसके बाद दीवाल और छत ऐसी बनाई है कि मकान मजबूत ही होगा अर्थात् जो जीव पहली और दूसरी गाथा का रहस्य समझकर अन्तर में सम्यग्दर्शन ज्ञानरूपी पाया (आधार) रखेगा तो केवलज्ञानरूपी महल अवश्य तैयार होगा।

गाथा १४ की टीका पर प्रवचन

''जो जीव-पुद्‌गलात्मक असमानजातीयद्रव्यपर्याय का आश्रय करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। जो जीव अकेली पर्याय को मानता है, वह शरीर को अपना मानता है। शरीर असमानजातीयद्रव्यपर्याय है; फिर भी उनकी क्रिया जीव से हुई है ह्र ऐसा अज्ञानी मानता है। अकेली पर्याय को स्वीकार करनेवाला जीव स्कंधों को देखकर राग करता है। लड्डू को देखकर राग हुआ अथवा स्त्री का शरीर देखा, इसीलिये राग हुआ ह्र ऐसा अज्ञानी मानता है।

समानजातीय स्कन्धों में भी प्रत्येक परमाणु की पर्याय उनके द्रव्य गुण के आधार से है और अपनी राग पर्याय अपने आधार से है ह्र ऐसा वह नहीं देखता; अपितु संयोगों को ही देखता है, किन्तु स्वभाव को नहीं देखता।

तथा असमानजातीयद्रव्यपर्याय में आत्मा और शरीर दोनों द्रव्यों की पर्यायें पृथक्-पृथक् हैं और वे उनके द्रव्य के आधीन है ह्र ऐसा होने पर भी अज्ञानी मानता है कि शरीर था तो धर्म हुआ और आत्मा थी तो शरीर चला।

यदि जीव यथार्थ दृष्टि करे और प्रत्येक पर्याय अपने द्रव्य-गुण के आधार से है ह्र ऐसा माने, परपदार्थ को तो राग का कारण न माने, स्वतरफ देखना रहे और स्वतरफ दृष्टि करने पर राग का मात्र ज्ञाता रहे तो सम्यग्ज्ञान और धर्म हो और फिर वीतराग होकर केवलज्ञान प्रगट करे।

यह ज्ञेय अधिकार है। इसे दर्शनविशुद्धि अधिकार भी कहा जाता है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् विशेष निर्मलता के लिए अर्थात् केवलज्ञान की सिद्धि के लिए यह अधिकार है। केवलज्ञान वृहत् सुप्रभात है। ज्ञान का आधार आत्मा है, किन्तु परपदार्थ अथवा राग नहीं ह्र ऐसा निर्णय होने पर राग का अभाव होता जाता है और केवलज्ञानरूप परिपूर्ण दशा प्रगट होती है। शुद्ध स्वभाव के लक्ष्य से जो सुप्रभात उगता है, वह सादि-अनंत काल टिकता है; इसे नया वर्ष कहा जाता है।

समयसार की दूसरी गाथा में स्वसमय की व्याख्या पहली पंक्ति में है और परसमय की व्याख्या दूसरी पंक्ति में है। यहाँ प्रवचनसार में इस ज्ञेय अधिकार की दूसरी गाथा में परसमय का ज्ञान प्रथम पंक्ति में कराया है; और स्वसमय का ज्ञान दूसरी पंक्ति में कराया है, क्योंकि यहाँ सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् विशेष निर्मलता होने पर केवलज्ञान सिद्ध करना है। अनादि के अज्ञानी का स्वरूप बताकर अर्थात् परसमय बताकर फिर स्वसमय लिया है। आत्मा और शरीर तो जड़कर्म असमानजातीय है, उन सबको एक मानकर अनादि का अज्ञानी आत्मसन्मुख क्यों नहीं होता, उसका पहली पंक्ति में ज्ञान कराते हैं और इसके पश्चात् दूसरी पंक्ति में स्वसमय का ज्ञान कराया है।

आत्मवस्तु स्वभाव से परिपूर्ण है ह्र ऐसे ज्ञान, श्रद्धा और लीनता द्रव्य में से होती है। जिसे ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि नहीं, उसे शरीर और पुण्य की रुचि है। शरीर जो कि असमानजातीय है, उसे वह अपना मानता है। यह सब मूढ़ता का मूल है। पहली गाथा में कहा है कि वह जीव पर्यायमूढ़ है।

आत्मा द्रव्य है, त्रिकाली शक्ति का पिण्ड है। विस्तार विशेष ज्ञान-दर्शन और आयत विशेष अर्थात् पर्याय का पिण्ड है। दर्शन-ज्ञान आदि की अवस्था द्रव्य-गुण में से आती है। जो जीव ऐसे स्वभाव का आश्रय नहीं करता और असमानजातीय द्रव्यपर्याय का आश्रय करता है, वह अज्ञानी है। सकल अविद्या का मूल है।

वस्तु त्रिकाल है, शक्ति अनंत है और पर्याय समय-समय द्रव्य में से आती है ह्र ऐसे स्वभाव की श्रद्धा करना, वह केवलज्ञान का कारण है। द्रव्य के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र का सम्यक्‌रूप परिणमित होना, वह आत्मव्यवहार है। पुण्य-पाप शरीर की क्रिया आत्मव्यवहार नहीं है। इस आत्मव्यवहार (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) से केवलज्ञान प्रगट होता है ह्र ऐसा कहना भी व्यवहार है, क्योंकि पर्याय तो द्रव्य-गुण में से आती है, किन्तु पर्याय में से पर्याय नहीं आती।

अज्ञानी जीव ऐसे आत्मस्वभाव का आदर नहीं करता; वह शरीर, निमित्त व असमानजातीयद्रव्यपर्याय का आश्रय लेता है; किन्तु द्रव्य-गुण का आश्रय नहीं लेता। अपने को पुण्य-पाप जितना (मात्र) ही मानता है; अत: वह आत्मा का अनुभव करने के लिए नपुंसक है। जड़ का आश्रय करना मनुष्यव्यवहार है और उसका फल निगोद है।

जो जीव अपनी पर्याय द्रव्य-गुण के आश्रय से मानता है और पुण्य-पाप का अथवा पर्याय के अंश का अथवा पर-निमित्तों का आश्रय स्वीकार नहीं करता, उसे आत्मव्यवहार होता है। यह आत्मव्यवहार केवलज्ञान का व्यवहार से कारण है; क्योंकि निश्चय कारण तो द्रव्य स्वयं ही है।

साधक जीव को विकल्प होने पर भी उन पर उसका लक्ष्य नहीं है, अपितु द्रव्य-गुण पर ही लक्ष्य है। वे त्रिकाल सामान्य की श्रद्धा करते हैं। मोक्षदशा और केवलज्ञान रूप सुप्रभात कहाँ से प्रवाहित होता है? वे द्रव्य-गुण के आश्रय में केवलदर्शन और केवलज्ञान का अनुभव कर रहे हैं। वे पर्याय में से पर्याय का अनुभव नहीं करते; वहाँ भी उनके द्रव्य-गुण में से सिद्ध पर्याय आती है।

द्रव्य स्वतंत्र, गुण स्वतंत्र, पर्याय स्वतंत्र ह्न ऐसी श्रद्धा-ज्ञान और उसमें लीनता आत्मव्यवहार है और यही निश्चय मोक्षमार्ग है। जो जीव यह बात सुनते-विचारते नहीं, वे जीव शरीर-मन-वाणी को अपना मानकर उसमें वीर्य को लगा रहे हैं।

शास्त्र में भी निमित्त से कथन आता है कि शुभभाव बिना धर्म नहीं होता। अज्ञानी संयोगी दृष्टिवाला जीव इसका यथार्थ अर्थ न समझकर अपने बल को निमित्ताधीन विपरीत भाव में लगाए तो वह निगोद जाने की तैयारीवाला है।

अज्ञानी जीव निमित्त को खोजता है और ज्ञानी द्रव्य-गुण को खोजता है। जिसे केवलज्ञानरूपी सुप्रभातदशा प्रगट करना हो, उसे त्रिकाली द्रव्य की श्रद्धा करना चाहिए। राग-द्वेष अपनी पर्याय में होते हैं, किन्तु जब

जीव पर में अटकता है, तब होते हैं; इसलिये यहाँ राग को व्यवहार नहीं कहा, अपितु सामान्य के आश्रय से जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, उसे व्यवहार कहा है। जो जीव सच्चा श्रद्धान-ज्ञान करके अपने द्रव्य में बलपूर्वक सिद्धदशा प्रगट करता है, वह बड़ा पुरुषार्थी और पुरुषोत्तम है और जो जीव पर में बल का प्रयोग करता है, वह नपुंसक है ह्न निगोद में जानेवाला है; क्योंकि वह जीव आत्मा का अनादर करते हुए अनंत ज्ञानियों का अनादर करता है और विपरीत मान्यता में अपने वीर्य का प्रयोग करता है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि आचार्य भगवान ने ऐसे कड़क शब्दों का प्रयोग क्यों किया?

यहाँ दो ही बात कही हैं। जो पर्याय में मूढ है, वह परसमय है और जो द्रव्य-गुण में लीन है, वह स्वसमय है।यहाँ दो ही बात कही हैं। जो पर्याय में मूढ़ है, वह परसमय है और जो द्रव्य-गुण में लीन है, वह स्वसमय है। केवलज्ञान की सिद्धि के लिये आचार्यदेव ने यह ज्ञेय-अधिकार प्रगट किया है।

आचार्य भगवान कहते हैं कि ह्न हे भाई ! तू 'जाग' शब्द के रहस्य को समझ ले; जबकि शब्दों को भान नहीं है कि मेरे में ये भाव भरे हैं। शब्दों के लक्ष्य से होनेवाले शुभराग को भी ज्ञान नहीं है कि ह्न मैं राग हूँ और इसे धर्म प्राप्त करा दूँ; पर्याय की ताकत नहीं है कि वह दूसरी पर्याय को प्रगट कर दे; इसीलिये वाणी, शुभराग और पूर्व पर्याय के ऊपर से लक्ष्य उठाकर यथार्थ भाव समझकर, अपने त्रिकाली स्वभाव की श्रद्धा और एकाग्रता करना चाहिए।

आत्मा में ज्ञान, दर्शन आदि की जो अधूरी पर्याय ऊपर-ऊपर दिखाई देती है, उतना ही आत्मा नहीं है ह्न उघाड़ जितना नहीं है। आत्मा की पूर्व पर्याय में से वर्तमान पर्याय नहीं आती; किन्तु अंदर जो ज्ञान, दर्शन का मानसरोवर कुण्ड भरपूर भरा हुआ है; उसमें से पर्याय आती है। आठ वर्ष के लड़का-लड़की भी ऐसा कर सकते हैं और धर्म को प्राप्त कर सकते हैं।

आठ वर्ष का बालक भी केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है।

अज्ञानी की नजर पर पदार्थ, निमित्त और अंश के ऊपर है; उसकी दृष्टि बहिर्मुख है, वह अपना सारा ही बल उसमें रोकता है, किन्तु त्रिकाल द्रव्य-गुण में से पर्याय आती है। इसकी श्रद्धा नहीं करता, अतः वह नपुंसक है।

लेंडीपीपर की चौंसठपुटी तिखास स्वयं के स्वभाव में से आती है; किन्तु एक पुटी, अधूरी त्रेसठपुटी तिखास पत्थर में से वह नहीं आती, किन्तु अज्ञानी की श्रद्धा में इसका स्वीकार नहीं होता। यथोक्त आत्मस्वभाव सकल विद्या का मूल है और यथोक्त आत्मस्वभाव का अज्ञान सकल अविद्या का मूल है।

श्रद्धा, ज्ञान, वीर्य इत्यादि की अवस्थाएँ जो प्रतिदिन आती हैं, वे कहाँ से आती हैं? उसका अज्ञानी जीव को भान नहीं है; वह तो संयोग और निमित्त को देखता है। जैसे जो पानी की लहर चली गई, उसमें से नई लहर नहीं आती; वैसे ही पूर्व पर्याय में से वर्तमान पर्याय नहीं होती। ज्ञानी ज्ञानजल को देखते हैं।

मंगल का अर्थ :ह्न मंग + ल = मंगल। मंग = पवित्रता, ल = लाति अर्थात् लाये, प्राप्त करावे, वह मंगल है। अथवा दूसरा अर्थ यह है कि मं+ गल = मंगल। मं = शरीर, पुण्य, क्षयोपशम के अहंकार को जो + गालयति = दूर करता है, वही वास्तव में मंगल है।

सिद्ध भगवान अशरीरी हैं; उन्हें पुण्य के संयोग नहीं हैं, देव-गुरु-शास्त्र वहाँ नहीं हैं, शरीर भी नहीं हैं। तथा पूर्व पर्याय तो व्यय हो गई है; फिर भी उन्हें ज्ञान, दर्शन-वीर्य आदि की परिपूर्ण दशा प्रगट होती ही रहती है, उनके द्रव्य में से पर्याय आती है। संसार से सिद्ध तक पर्याय का आधार द्रव्य है, किन्तु पर में अपनी शक्ति लगानेवाले अज्ञानी जीव को जगत के पदार्थों से फुर्सत नहीं मिलती। जिसका वीर्य पर की व्यवस्था करने में रुका हुआ है, उसे नपुंसक कहा है।

जैसे लोक में मूर्ख को गधा कहें तो उसे अच्छा नहीं लगता तो उसे

गधे जैसे भाव को निकाल देना चाहिए। यहाँ आचार्य भगवान नपुंसक कहते हैं, उन्हें द्वेष नहीं है; अपितु उनके कहने का आशय यह है कि तू विपरीत वीर्य के भाव को निकाल दे। जो जीव पर में और अंश में अटकता है, उसे नपुंसक कहो अथवा न कहो तो भी वह तो नपुंसक बनकर निगोद में जानेवाला है और जो जीव, द्रव्य की श्रद्धा करता है, उसे जगत के अज्ञानी जीव पागल कहकर मश्करी (मजाक) करें तो भी वह धर्म को प्राप्त करके सिद्धदशा को प्राप्त करेगा।

अज्ञानी जीव को बेहद एकान्तदृष्टि उछलती है। इसमें बेहद का अर्थ यह है कि ह्न त्रिकाली स्वभाव जो सुख-आनन्द से भरा हुआ बेहद है, उसकी उसे खबर नहीं अर्थात् उसका विपरीत वीर्य पर में और अंश में बेहद रुका हुआ है। एक निमित्त से दूसरे निमित्त के ऊपर, एक शुभभाव से दूसरे शुभभाव के ऊपर वह एकताबुद्धि करता है; इसप्रकार अनेक निमित्तों के ऊपर उसकी निरंकुश पर्यायदृष्टि है।

अपने द्रव्य के आश्रय से ही धर्म होगा; किन्तु निमित्त, पुण्य अथवा पूर्व पर्याय से धर्म नहीं होगा ह्न ऐसा मानना अनेकान्त है; किन्तु निमित्त हो तो लाभ होगा, पुण्य हो तो धर्म होगा, पूर्व के संस्कार हों तो लाभ होगा ह्न ऐसी मान्यता तो एकान्तदृष्टि है। अनेकान्त में से मिथ्यादृष्टि उछलती है। ज्ञाता अर्थात् धर्मी की श्रद्धा करके जो पर्याय धर्मरूप होती है, वह सहज कहलाती है, किन्तु पर और संयोग की श्रद्धा करके जो मिथ्यात्व भाव होता है, वह उछलता है ह्न ऐसा कहलाता है; क्योंकि मिथ्यात्व स्वभाव में से नहीं आता, वह स्वभाव भाव नहीं है, मात्र एक समय का पर के लक्ष्य से हुआ भाव है। वस्तु में उछलना नहीं होता। वस्तु तो सहज है; इसीलिये एकान्तदृष्टि उछलती है ह्न ऐसा कहा है।

कुन्दकुन्द आचार्य भगवान ने सीमंधर भगवान की मांगलिक दिव्यध्वनि सुनकर इस प्रवचनसार को लिखा है। जो जीव इस नववर्ष की मांगलिक सुप्रभात में इसमें लिखे भाव को समझकर अपने बेहद ज्ञान, सुख स्वभाव की श्रद्धा करेगा, वह सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा, विशेष

स्थिरता करके वीतरागता को प्रगट करेगा और केवलज्ञान को प्राप्त करेगा।

गाथा १३ में कहा था कि पदार्थ द्रव्य स्वरूप है और द्रव्य, गुण-पर्याय का पिण्ड है। उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुण विस्तार स्वरूप हैं ह्न एक साथ वर्तते हैं और आयत विशेष अर्थात् पर्यायें लम्बाईरूप हैं अर्थात् वे एक के बाद एक होती हैं। द्रव्य-गुण में से द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय होती है, किन्तु निमित्त अथवा पर संयोगी चीज है तो पर्याय होती है ह्न यह बात असत्य है। धर्म अथवा मिथ्यात्व की पर्याय द्रव्य-गुण में से होती है, किन्तु पर में से नहीं होती।

जिस जीव को यह बात समझ में नहीं आती, उसकी दृष्टि परपदार्थ के ऊपर जाती है और पर की रुचि में स्व की रुचि नहीं होती।

अपने द्रव्य-गुण में से पर्याय आती है ह्न ऐसा जो जीव नहीं मानता, वह समानजातीय स्कंधों और असमानजातीय द्रव्यपर्याय में ममत्व करके मिथ्यात्व उत्पन्न करता है। इस जीव की अपेक्षा से दूसरी आत्माएँ भी असमानजातीय द्रव्य है।

कर्ण इन्द्रिय हो तो शास्त्र सुनने को मिलता है और उससे ज्ञान होता है ह्न इसतरह अज्ञानी भ्रान्ति करता है, जो कि यह सकल अविद्या का मूल है। केवलज्ञान की पर्याय मति-श्रुत-अवधि अथवा मनःपर्यय ज्ञान किसी में से भी नहीं आती; पुण्य परिणाम, निमित्त अथवा संहनन आदि में से भी वह नहीं आती, किन्तु अज्ञानी जीव की नजर संयोग के ऊपर है। सोने का कड़ा, अँगूठी आदि जेवर हाथ से, हथोड़े से अथवा पूर्व के आकार से नहीं होते, किन्तु सोने से होते हैं ह्न ऐसा अज्ञानी नहीं मानता; यह अविद्या का मूल है।

निमित्ताधीन दृष्टिवाला अन्तर की ओर झुकाव नहीं करता। स्त्री को देखकर राग होता है, इन्द्रिय हो तो सुख होता है, देव-गुरु हों तो ज्ञान होता है। गुरु से श्रद्धा होती है, शास्त्र हो तो क्षयोपशम होता है, दुश्मन के कारण द्वेष होता है, तलवार हो तो मारने का भाव होता है, कोई जीव दुःखी हो तो अपने को दया का भाव होता है, प्रतिमा हो तो शुभभाव

होता है। इस तरह विपरीत ज्ञान करके अज्ञानी संयोग की मुख्यता करता है।

यथोक्त द्रव्य सामान्यशक्ति की रुचि करे तो उसमें से पर्याय आती है और उसका आश्रय न करे तो भी उसमें से आती है। अज्ञानी मानता है कि पर में से पर्याय आती है, किन्तु अज्ञानी की भी पर्याय पर में से नहीं आती, अपितु द्रव्य में से आती है।

जिस जीव को बेहद स्वभाव की श्रद्धा नहीं है और निमित्त से कार्य हुआ ह्न ऐसा मानता है, उसकी तीनों काल और तीनों लोक के निमित्तों के ऊपर पराधीन दृष्टि है, इसीलिये उसकी बेहद दृष्टि उछलती है ह्न ऐसा कहा है। वह पर में बल धारण करता है, तर्क भी विपरीत करता है। द्रव्य-गुण का अनादर करने से नई-नई मिथ्यात्व की पर्याय उछलती है। संयोग हो तो राग होता है। संयोग हो तो स्वभाव प्रगट हो, दूसरा मेरी मजाक उड़ाता है, इसीलिये मुझे हँसी आती है, दूसरा निन्दा करता है तो द्वेष होता है, प्रशंसा करता है तो राग होता है, भगवान को देखा तो राग हुआ, वाणी के कारण ज्ञान हुआ ह्न इसप्रकार अज्ञानी अज्ञानभाव करके पर के अस्तित्व में अपने वीर्य का प्रयोग कर रहा है।

गाथा १३ के तीसरे पद के 'तेहिं पुणो पज्जाया' में बड़ा सिद्धांत है। सभी पर्यायों का आधार स्वयं अपना द्रव्य और गुण है ह्न ऐसी मान्यता करने से बेहद शांति का अनुभव होता है; इसके बदले अज्ञानी जीव पर से पर्याय होती है ह्न ऐसा मानकर अनन्तानुबंधी के राग-द्वेष सहित बेहद वीर्य का विपरीत प्रयोग करता है, इसीलिये उसे सुख नहीं होता।

ये ज्ञेय हैं तो मैं हूँ, इन्द्रियाँ आदि हैं तो पर्याय होती है ह्न ऐसा माननेवाला यह मैं मनुष्य ही हूँ। ह्न ऐसा मानता है और मैं हूँ तो वाणी आनी ही चाहिए, मेरी ज्ञान की योग्यता हो, तब ज्ञानी निमित्त को आना ही पड़ेगा ह्न शब्द सुने तो ज्ञान खिला, पैसा हो तो सत्समागम के लिए निवृत्ति मिले, दुकान है तो राग होता है ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है।

प्रश्न :- निमित्त और उपादान में एक समय में कार्य होता है, इसीलिये

समय भ्रमित करता है। जिस समय वाणी सुनी, उसी समय ज्ञान हुआ ह्न दोनों एक समय में हैं न ! इसीलिये अज्ञानी भूल करता है?

उत्तर :- नहीं, एक समय में वे परिणमते हैं; इसीलिये भूल करता है ह्न यह बात सही नहीं है। एक समय में छहों द्रव्य परिणमित हो रहे हैं। प्रत्येक पदार्थ का स्वकाल वह उस पदार्थ में है। उपादान का स्वकाल कभी निमित्त का स्वकाल नहीं होता।

अज्ञानी की दृष्टि संयोग पर है, इसीलिये वह भूल करता है। ये पदार्थ है तो मैं हूँ ह्न ऐसी मान्यता छोड़कर मैं सम्पूर्ण स्व-पर प्रकाशक ज्ञान स्वभावी हूँ और ये समस्त ज्ञेय हैं ह्न ऐसी सही रुचि करे तो समाधान हो और भूल दूर हो। स्व का यथार्थ ज्ञान होने पर स्वयं की पर-प्रकाशक शक्ति खिलती है और उसमें राग तथा पर निमित्त कैसे होते हैं, उसका ज्ञान हो जाता है।

यह प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार है; इसमें द्रव्य-गुण तथा विकारी अथवा अविकारी पर्यायों का यथार्थ ज्ञान कराते हैं।

पर पदार्थ से विकार नहीं होता, अपितु स्वयं के अपराध के कारण विकार होता है ह्न ऐसा ज्ञान करने के पश्चात् समयसार में दृष्टि के विषय में ऐसा कहा जाता है कि ह्न राग तेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं, अपितु चारित्रमोह कर्म का कार्य है; किन्तु यह कब ? कि जब प्रवचनसार में बताए अनुसार यथार्थ ज्ञान करे कि ज्ञान की पर्याय पर-निमित्त से, शुभराग से या पूर्व पर्याय से नहीं, अपितु द्रव्यगुण से होती है ह्न ऐसा स्वीकार करे, तब! द्रव्य-गुण-पर्याय का पिण्ड आत्मा है ह्न इसप्रकार विकल्प से सम्पूर्ण प्रमाणज्ञान करने के पश्चात् समयसार में दृष्टि के विषय का विकल्प का अभाव करने के लिए ऐसा कहने में आता है कि राग तेरे स्वरूप में नहीं और जो द्रव्य की ओर एकाकार हुआ ह्न वह तू है, किन्तु विकल्प की अनेकता तू नहीं है। तू एक ज्ञान स्वभाव में विकल्प की अनेकता नहीं है। और विकल्पों के कारण तेरा ज्ञान स्वभाव है, ऐसा नहीं है। इस तरह दोनों शास्त्रों के कथनों को मिलाकर जैसा है, वैसा समझना चाहिए।

मुझे राग हुआ, इसीलिये परपदार्थ को आना पड़ा, द्वेष हुआ तो दुश्मन को आना पड़ा, ज्ञान होने की मेरी योग्यता हो तो समयसार शास्त्र को आना पड़ा, ट्रेन के कारण पटरी को आना पड़ा, जब रोटी होने की योग्यता हो, तब तवा तथा बाई को आना पड़ा; भाषा है तो राग होता है, मेरी रुचि बढ़ी, इसीलिये देव-गुरु को आना पड़ा, लोकालोक है तो मेरा ज्ञान है, मेरी ज्ञान की पर्याय होती है तो लोकालोक है, पुत्र हुआ तो उसकी व्यवस्था का राग करना पड़ा ह्न इस तरह अज्ञानी पर में अपनापन और मेरापन करके सारी शक्ति संयोग में ही लगाता है, ज्ञान का उपयोग संयोग में करता है ह्न इसप्रकार उसकी निरर्गल एकान्तदृष्टि उछलती है, जिससे वह स्वयं ठगाता है।

ज्ञानी पूछते हैं कि ह्न तू जीवंत जीव है अथवा नहीं? तू है तो राग और ज्ञान होता है; किन्तु दूसरा है, इसीलिये राग और ज्ञान नहीं है। स्वयं के द्रव्य-गुण के आधार से पर्याय प्रगट होती है ह्न ऐसा माने तो राग पंगु हो जाता है, स्वयं राग का ज्ञाता रहता है और निर्मल पर्याय प्रगट हो जाती है। चेतना विलास अविचलित है अर्थात् किसी दिन चलायमान हो जाये ह्न ऐसा वह नहीं है। अपने द्रव्य के आधार से प्रगट होनेवाली निर्मल पर्याय अपना आत्मव्यवहार है।

शरीर, मन, वाणी का व्यवहार अथवा धंधा-व्यापार तो आत्मव्यवहार है ही नहीं, किन्तु स्वयं पर में अटककर जो दया-दान का विकल्प और व्यवहार रत्नत्रय होता है, वह भी आत्मव्यवहार नहीं है, अपितु निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय ही आत्मव्यवहार है और यह भी व्यवहार है; क्योंकि निश्चय तो ज्ञान स्वभाव सामान्य है। जिसने वीर्य को पर से खींचकर अपनी तरफ झुकाया और जिसे आत्मा की रुचि हो; उसे आत्मा के श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र प्रगट हुए बिना रहेंगे नहीं।

जो ऐसे स्वभाव की श्रद्धा तो नहीं करता और संयोगी दृष्टि करता है, वह आत्मव्यवहार से च्युत होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ह्न अज्ञानी को पहले तो आत्मव्यवहार प्रगट हुआ था और फिर बाद में वह

च्युत होता है, अपितु आत्मव्यवहार से च्युत हुआ का आशय यह है कि स्वभाव के आश्रय से आत्मव्यवहार प्रगट होना चाहिए; किन्तु अज्ञानी स्वभाव का आश्रय नहीं करता, इसीलिये वह प्रगट नहीं होता। यह जीव मनुष्यपने का व्यवहार करता है।

जो जीव अपने को पराधीन मानकर अपने द्रव्य स्वरूप का अनादर करता है; वह अनंत सिद्ध, अरहंत और सभी ज्ञानियों का अनादर करता है।

अपने स्वभाव के आश्रय से चैतन्य विलासमात्र प्रगट होना चाहिए। यहाँ व्यवहार रत्नत्रय के विकल्प चेतना विलासमात्र में नहीं आते, यह बताने के लिए विलासमात्र कहा है।

अपने स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र खिले, उसमें सम्यग्ज्ञान की पर्याय स्व-पर प्रकाशक स्वभाव के कारण पर ऐसे राग अर्थात् व्यवहार रत्नत्रय को जान लेती है। व्यवहार रत्नत्रय वह आत्मव्यवहार नहीं है, किन्तु वह ज्ञान की पर्याय का ज्ञेयमात्र ऐसे ज्ञान स्वभाव को स्वीकार करे तो आत्मव्यवहार प्रगट होकर मोक्ष होगा और यदि इसे स्वीकार नहीं करेगा तो निरर्गल एकान्तदृष्टि तो अनादि से उछलती ही है, इसमें कोई नई बात नहीं। अज्ञानी जीव पर में अहंकार करके संयोगी दृष्टि करे, समस्त क्रियाकलाप को अर्थात् निमित्तों और संयोगों के समूह को छाती से लगाता है।

संसार में किसी ६० वर्ष के निःसंतान बुड्ढ़े के पास बीस लाख की पूँजी हो, उसे पुण्य योग से सुंदर पुत्र का जन्म हो जाये तो वह पुत्र को कितने स्नेह से पालता है और मधुर शब्द बोलता है कि मेरे कारण मेरा वंश रहा। ऐसा बोलकर पुत्र को छाती से लगाता है अथवा परदेश से पुत्र लाख रुपये कमाकर आवे तो उसका पिता उससे मिलकर कहता है कि भाई ! तूने कुल को रोशन किया। इसतरह जिसप्रकार वह पुत्र से मिलकर प्रेम करता है (यह तो मात्र दृष्टांत है, क्योंकि रुपये और पुत्र में कुछ भी आत्मा का सुख नहीं है।) उसी प्रकार अज्ञानी जीव जड़ की क्रिया, पुण्य

की क्रिया करना चाहिए ह्न ऐसा कहकर सभी संयोगों और निमित्तों को छाती से लगाता है। यह ठीक हुआ कि देव-गुरु का योग मिला। यह पुण्य कर्म थे तो सब ठीक हुआ, मनुष्य भव मिला तो धर्म हुआ, पुण्य हो तो धर्म हो ह्न इसप्रकार वह निमित्त और संयोगों का आश्रय लेता है।

यहाँ जो समस्त शब्द का उपयोग किया गया है, उसका अर्थ यह है कि लोकालोक है तो मैं हूँ और मैं हूँ तो लोकालोक है ह्न इसप्रकार अनंत ज्ञेयों से स्वयं पृथक् होने पर भी निमित्त हो तो मुझे ठीक हो, मैं हूँ तो पर में कार्य हो ह्न ऐसा मानकर पर को तथा अपने को मान्यता में स्व करके उन्हें छाती से लगाता है, यह इसका अज्ञान भाव है। जिसे ऐसा मिथ्यात्व भाव है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञान-दर्शन आत्मा का शुद्ध स्वभाव है ह्न ऐसे अभिप्राय को छोड़कर अज्ञानी मानता है कि शरीर और पुण्य मेरे हैं और मेरा कर्त्तव्य है। शरीर और कर्मादि तो परज्ञेय हैं और आत्मा स्वज्ञेय है। स्व, स्वरूप से और पर, पररूप से जानने योग्य है। द्रव्य-गुण और विकारी अथवा निर्विकारी पर्याय तीनों का पिण्ड तो स्वज्ञेय है। स्वज्ञेय में स्वयं के कारण विकार है ह्न ऐसी दृष्टि होने पर स्वयं राग का ज्ञाता होता है। अपने में चेतन का विकास है, वह आत्मा तू है, इसे जानते ही आत्मव्यवहार प्रगट होता है; किन्तु अज्ञानी जीव शरीर, मन, वाणी की क्रियारूप परज्ञेय को अपने स्वज्ञेयरूप से जानता है, इसीलिये उसे आत्मव्यवहार प्रगट नहीं होता।

अज्ञानी समस्त ज्ञेयों के अस्तित्व को स्वज्ञेय के साथ एकरूप करके मनुष्य व्यवहार करता है, वह चौरासी के अवतार में रखड़ने का व्यवहार है। मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय स्वज्ञेय हैं और अपने द्रव्य-गुण में से समय-समय परिणति प्रवाहित होती है, इसे भूलकर परज्ञेयों की क्रिया में एकत्व मानकर अज्ञानी क्रिया-कलाप को अपनाता है। परपदार्थ अनुकूल हो तो राग करता है और प्रतिकूल हो तो द्वेष करता है। स्वयं की पर्याय अपने में से आती है ह्न ऐसा नहीं मानकर वह पर के कारण आती है ऐसा मानकर अनंत ज्ञेयों के साथ एकत्व करता है, किन्तु स्वयं स्वतत्त्वरूप नहीं रहता।

जो जीव प्रतिमा से सम्यक्त्व होना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि सम्यक्त्व स्वद्रव्य के आधार से होता है और यथार्थ ज्ञान होने पर स्व-पर प्रकाशक शक्ति के कारण स्व को जानते ही पर ऐसी प्रतिमा जानने में आ जाती है। सम्यक्त्व होने से पहले किसप्रकार का शुभराग था और उस समय कौन निमित्त हो ह्न इसका ज्ञान कराया है, किन्तु निमित्त थे तो सम्यक्त्व हुआ ह्न ऐसा नहीं है।

स्वज्ञेय के सम्मुख परिणति होती है, तब स्व का ज्ञान करते ही परपदार्थों का ज्ञान करने की शक्ति खिलती है। कर्मादि का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय जैसा होता है, वैसा उसे जानता है; किन्तु कर्म मन्द हुए, इसीलिये सम्यक्त्व हुआ ह्न ऐसा नहीं है। जिस समय सबसे पहले स्वज्ञेय का ज्ञान होता है, उस समय ज्ञानी पुरुष ही निमित्तरूप से होते हैं, किन्तु अकेली वाणी अथवा शास्त्र निमित्त नहीं हो सकते ह्न यह भी ख्याल में आ जाता है।

अब, समय किसे कहना ह्न वह बात कहते हैं।

भगवान आत्मा पर पदार्थों के साथ नहीं मिले हुए ऐसे अपने द्रव्य-गुण तथा विकारी अथवा अविकारी पर्यायों द्वारा सुस्थित है। यहाँ श्रद्धा की विपरीत पर्याय मिथ्यादर्शन; ज्ञान की विपरीत पर्याय अज्ञान, आनंद की विपरीत पर्याय दुःख, विभाव की विपरीत पर्याय विकारीपना ह्न ये सभी विकारी अथवा अविकारी पर्यायों द्वारा सुस्थित है, उसे स्वभाव कहा है। 'स्वस्य भवनं स्वभावः' कहा है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से अभिन्न और पर पदार्थों ह्न अनंत सिद्ध, निगोद के जीव, कर्मादि सभी से भिन्न ह्न ऐसे अपने स्वभाव को जानना, वह समस्त ही विद्या का मूल है।

द्रव्य, गुण-पर्यायों का पिण्ड है और पर्यायें द्रव्य-गुण में से बहती हैं ह्न ऐसे आत्मस्वभाव का आदर करने के लिए, जो समर्थ है अर्थात् जो जीव स्वभाव में ही वीर्य को लगाते हैं, उन्होंने पर्याय तरफ का बल दूर किया है। जो पर से ज्ञान और राग का होना मानता था, उसका यह पर तरफ का झुकाव था। वह झुकाव दूर होने पर और राग अपने से होता है ह्न

ऐसा निर्णय करने पर अपने त्रिकाली स्वभाव और गुणों की तरफ दृष्टि जाती है और वह राग का ज्ञाता होता है; उसे सम्यग्दर्शन पर्याय खिले (प्रगट हुए) बिना नहीं रहती। इस तरह स्वभाव की रुचिवाला जीव अपने स्वभाव में स्थिति करता है, उसे अनेकांत दृष्टि सहज ही खिल गई है और उसने समस्त एकान्त दृष्टि की पकड़ को क्षीण किया है।

अज्ञान दशा में एकान्त दृष्टि उछलती थी ह्न ऐसा कहा था और यहाँ कहा है कि अनेकान्त दृष्टि सहज खिल गई है; क्योंकि अपने स्वभाव का परिणमन सहज है, इसीलिये सहज कहा है।

आत्मा, आत्मारूप से है, किन्तु दूसरे जीव और जड़ पदार्थरूप नहीं है। राग अथवा ज्ञान स्वयं से होता है, किन्तु पर पदार्थों से राग अथवा ज्ञान नहीं होता; इत्यादि दृष्टान्तों से पर के साथ का अनेकान्त समझना चाहिए।

अब अपने द्रव्य में निम्न प्रकार से अनेकान्त समझना :ह्न

द्रव्य अनन्त गुणों का पिण्ड है, किन्तु द्रव्य एक ही गुणरूप नहीं है।

द्रव्य अनन्त पर्यायों का पिण्ड है, किन्तु द्रव्य एक ही पर्यायरूप नहीं है।

एक गुण अपने गुणस्वरूप है, किन्तु एक गुण सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है।

एक गुण अपने गुणस्वरूप है, किन्तु दूसरे गुणरूप नहीं। ज्ञान ज्ञानरूप से है, किन्तु दर्शन गुणरूप से नहीं है ह्न इसी तरह प्रत्येक गुण में समझना चाहिए।

एक गुण, गुणरूप से है; किन्तु वह वर्तमान पर्याय जितना ही नहीं है।

एक पर्याय पर्यायरूप से है, किन्तु वह संपूर्ण द्रव्य नहीं है।

एक पर्याय पर्यायरूप से है, किन्तु वह संपूर्ण गुणरूप नहीं है।

एक गुण की वर्तमान पर्याय अपनेरूप से है, किन्तु वह उसी गुण की पूर्व पर्यायरूप नहीं है।

एक गुण की वर्तमान पर्याय अपनेरूप से है, किन्तु वह उसी गुण की भविष्य की पर्यायरूप नहीं है।

द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रदेश से एकपना है, किन्तु लक्षण भेद से भेद है।

इस तरह द्रव्य-गुण-पर्याय में बराबर सूक्ष्म अनेकान्त दृष्टि खिली है। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप सम्पूर्ण पदार्थ स्व-ज्ञेय एकपने है और अन्दर पृथक्-पृथक् स्वभाव से अनेक हैं।

द्रव्य और गुण त्रिकाल हैं और पर्याय एक समय मात्र की है। द्रव्य का लक्षण अनंत गुणों को धारण करना है, प्रत्येक गुण का लक्षण पृथक्-पृथक् है। जैसे कि ज्ञान का लक्षण जानना, सुख का लक्षण अनाकुलता इत्यादि है और पर्याय का लक्षण उत्पाद-व्यय है। सामान्य स्वभाव संपूर्ण अंश में नहीं और अंश वह संपूर्ण स्वभाव नहीं है ह्न ऐसी सच्ची अनेकांत दृष्टि होने पर एकांत दृष्टि दूर हो जाती है। अज्ञानदशा में ऐसा मानता था। पर के कारण राग होता है और पर के कारण ज्ञान होता है, किन्तु वह पर में मिथ्या एकांत था और अकेली पर्याय, क्षयोपशम अथवा राग जितना ही अपने को मानता था, वह स्व-द्रव्य में एकान्त था। वह स्व की यथार्थ दृष्टि होने पर एकान्त दृष्टि का आग्रह छूट जाता है।

देव-गुरु-शास्त्र हैं तो मेरी ज्ञान की पर्याय खिलती है, मैं हूँ तो पर की अवस्था होती है, सम्यक्त्व प्रगट हो तो चारित्र प्रगट होना चाहिए, शुभभाव करें तो सम्यक्त्व हो ह्न इसप्रकार के सभी आग्रह अनेकान्त दृष्टि होने पर छूट गये; क्योंकि दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों के पृथक्-पृथक् स्वभाव हैं। एक गुण जितना प्रगट हुआ है, उतना दूसरा गुण भी प्रगट होना ही चाहिए ह्न यह एकांत का आग्रह है; अब यह आग्रह दूर हो गया है, क्योंकि चारित्र की पर्याय चारित्र में से आती है, दर्शन-ज्ञान में से नहीं आती।

नौ पूर्व का उघाड़ हुआ तो भी सम्यक्त्व क्यों नहीं होता? एक जीव को क्षायिक सम्यक्त्व हुआ तो उसे चारित्र क्यों नहीं प्रगट हुआ? दूसरे जीव को क्षयोपशम सम्यक्त्व था, फिर भी उसे चारित्र कैसे खिल गया ह्न ऐसे एकान्त के आग्रह छूट गये हैं।

वैराग्य और कषाय की मंदता है, इसीलिये उसकी सच्ची श्रद्धा होनी चाहिए और एक सम्यग्दृष्टि जीव को कदाचित् लड़ाई के परिणाम हुए हैं,

इसीलिये उनका सम्यक्त्व चला जाये और क्षायिक सम्यग्दृष्टि को ऐसा ही चारित्र होता है; ऐसे सभी आग्रह ज्ञानी के छूट गये हैं।

इसतरह जो परपदार्थों के साथ एकांत दृष्टि करता था और अपने स्व-ज्ञेय को अंश जितना मानकर एकांत दृष्टि करता था; वह सभी एकांत दृष्टि नाश को प्राप्त हो गई है और परपदार्थों के साथ और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में भी अनेकांत दृष्टि खिल गई है।

मनुष्य और देव आदि गति में और उनके शरीर में मैं हूँ और वे मेरे हैं और मेरे कारण हैं ह्न ऐसा अहंकार, ममकार ज्ञानी को दूर हो गया है।

जैसे अलग-अलग कमरों में ले जाया जानेवाला दीपक एकरूप ही है, वह इस कमरेरूप बिलकुल नहीं होता और परपदार्थों की क्रिया नहीं करता, उसी तरह अलग-अलग शरीरों में प्रवेश करता हुआ आत्मा एकरूप ही है; वह शरीररूप बिलकुल नहीं होता और शरीर की क्रिया नहीं करता ह्न ऐसा ज्ञानी जानते हैं। अन्य कोई दीपक हो तो वह हवा से बुझ जाये, उसे तेल आदि की भी जरूरत पड़ती है, हाथ से गिर जावे तो बुझ जाये, किन्तु रत्नदीप को अन्य पदार्थ की जरूरत नहीं होती और वह हवा आदि से बुझता नहीं; इसीतरह आत्मरत्न को अपने ज्ञानप्रकाश के लिए शरीर, इन्द्रिय तथा अन्य ज्ञेयों की जरूरत नहीं पड़ती; स्वज्ञेय को जानने पर परज्ञेय जानने में आ जाते हैं।

यहाँ जो कहा कि गति आदि का आग्रह छूट गया है। उसका स्पष्टीकरण करते हैं ह्न अपनी पर्याय में मनुष्यादिरूप होने की योग्यता, वह गति है। शरीर की गति का आत्मा में अभाव है। गति आत्मा की पर्याय है, उसमें गति नामकर्म तो निमित्त मात्र है। शरीर की गति तो परज्ञेय है अर्थात् ज्ञानी को शरीर की गति का आग्रह व गति नामकर्म का आग्रह तो छूट गया है, किन्तु अपनी पर्याय में होने की योग्यतारूप निश्चय गतिरूप अंश जितना भी मैं नहीं हूँ। गति के परिणाम का आग्रह भी ज्ञानी को छूट गया है; क्योंकि परिणाम तो पर्याय है और पर्याय सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है। शरीर की गति के साथ होने पर भी और गतिरूप

अपने परिणाम होने पर भी मैं उतना नहीं हूँ, अपितु मैं तो अखण्ड ज्ञानस्वरूप हूँ ह्न ऐसी जो दृष्टि हुई, वह अनेकान्त दृष्टि है।

वज्रवृषभनाराच संहनन होगा तो केवलज्ञान होगा, तीर्थंकर नामकर्म बाँधा हो तो तीर्थंकर होगा, वर्तमान में शुभभाव होगा तो भविष्य में देव-गुरु-शास्त्र का लाभ मिलेगा, क्षायिक सम्यक्त्व होगा तो केवलज्ञान होगा, अन्य ज्ञेय होंगे तो ज्ञान होगा ह्न इसप्रकार परपदार्थ, प्रकृति, कर्म, शरीर, शुभराग, वर्तमान पर्याय सभी का आग्रह छूट गया है। शुभभाव से मंदिर की पर्याय हुई, मंदिर की पर्याय से शुभभाव होंगे और शुभ से आगे बढ़ेंगे ह्न ऐसी एकान्तदृष्टि ज्ञानी को नहीं होती, वह अपने वर्तमान द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वज्ञेय रूप मान रहा है। इसप्रकार उसने द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र स्वीकार करते हुए तीनों में अनेकांत स्वीकार किया है; अतः उसकी सच्ची दृष्टि हुई है।

स्वज्ञेय के अस्तित्व को छोड़कर परज्ञेय में स्व को मानना और स्व में पर को मानना एकान्त दृष्टि है; ज्ञानी जीवों को यह एकान्त दृष्टि दूर हो गई है; ज्ञानी जीव ने अपनी आत्मा का अनुभव करने पर अविचलित चेतना विलासमात्र आत्मव्यवहार अंगीकार किया है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो चलित है, जबकि चेतना विलास तो अविचलित है। जो विलास और आनंद प्रगट हुआ, वह हुआ। वह किसी भी दिन चलायमान नहीं होता। ज्ञानी ने आत्मा का ऐसा व्यापार प्रगट किया है। यह स्व समय ही आत्मा का तत्त्व है।

जो जीव अपने स्वज्ञेय का आश्रय करता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आत्मव्यवहार प्रगट होता है। यहाँ प्रवचनसार में ज्ञान की प्रधानता से सम्यक्त्व की बात की है और चारित्र की पर्याय जो स्वज्ञेय है, उसका ज्ञान कराया है। यहाँ द्रव्य-गुण और विकारी अथवा अविकारी सभी पर्याय के पिण्ड सम्पूर्ण पदार्थ को स्वज्ञेय कहा है। जबकि समयसार में दृष्टि की प्रधानता से कथन करके कहा कि स्वभाव का लक्ष्य करके जो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, वह जीव है और शेष सभी विकल्प आदि

परिणाम अजीव हैं। इन दोनों कथन पद्धति का आशय एक है, मात्र कथन पद्धति में अंतर है।

जो जीव स्वज्ञेय का आश्रय करता है, वह समस्त मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करता। रागादि पर से होते हैं, उसकी ऐसी विपरीत मान्यता दूर हो गई है। श्रद्धा प्रगट हुई, इसीलिये राग-द्वेष दूर होंगे और राग-द्वेष दूर होंगे तो केवलज्ञान प्रगट होगा ह्न ऐसा वह नहीं मानता; प्रवचनसार में इस पद्धति से बात है; जबकि समयसार में कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को बंध नहीं है व उनके भोग निर्जरा के कारण हैं, सम्यग्दृष्टि आठों कर्मों का नाश करता है ह्न इसप्रकार दृष्टिप्रधान कथन में आता है, किन्तु यहाँ ज्ञान प्रधान कथन में ऐसा नहीं है।

समयसार में कहते हैं कि स्वभाव वस्तु है और विकार अवस्तु है। प्रवचनसार में द्रव्य, गुण, विकारी और अविकारी पर्याय ह्न यह सभी स्वज्ञेय हैं और अन्य आत्माएँ तथा परपदार्थ परज्ञेय हैं, वे मेरे में नहीं हैं ह्न ऐसा कहा है।

सम्यक्श्रद्धा हुई, इसीलिये चारित्र प्रगट हुआ अथवा मन्द राग हुआ, इसीलिये चारित्र प्रगटा अथवा सम्यग्दर्शन हुआ या राग घटा, इसीलिये उदासीन दशा हुई अथवा शुभभाव करे तो सम्यक्त्व होगा ह्न ऐसा नहीं है। इसप्रकार यहाँ प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र बताई है; निमित्त अथवा पूर्व पर्याय से वर्तमान पर्याय नहीं होती। 'तेहिं पुणो पज्जाया' अर्थात् उस समय की विकारी अथवा अविकारी पर्याय अपने द्रव्यगुण के आधार से है, किन्तु वह निमित्त अथवा पूर्व पर्याय से नहीं होती।

जो जीव असंकीर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय द्वारा सुस्थित ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय करता है, उसे सम्यक्त्व प्रगट होता है; वह जीव पर अथवा अंश के साथ एकत्व बुद्धि नहीं करता; इसकारण उसके राग-द्वेष रुक गये हैं और वे परम उदासीनता का अवलम्बन नहीं लेते, किन्तु इसका अर्थ यह है कि वे अपने स्वभाव का आश्रय करते हैं, तो राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते, अतः उदासीनता प्रगट हुई है; अतः वे परम उदासीनता

का अवलम्बन लेते हैं ह्न ऐसा कहा जाता है।

प्रत्येक गुण की पर्याय गुणी आत्मा के आधार से है। मुझे मेरे स्वज्ञेय का आश्रय थोड़ा है, इसीलिये राग है। यदि पूर्ण आश्रय करूँ तो वीतराग हो जाऊँगा ह्न ऐसा ज्ञानी जानते हैं और स्व के आश्रय से पुरुषार्थ प्रगट कर वीतराग होते हैं अर्थात् ज्ञानी जीव पर्याय का आश्रय नहीं करते। सम्यग्दर्शन हुआ, इसीलिये चारित्र प्रगट हो जाना चाहिए अथवा सम्यक्त्व हुआ, इसीलिये सिद्ध दशा प्रगट हो जाना चाहिए अथवा चारित्र हुआ, इसीलिये केवलज्ञान हो जाना चाहिए ह्न ऐसा न मानकर पर्याय का आश्रय नहीं करता हुआ वह द्रव्य-गुण-पर्याय के पिण्डरूप अपने स्वभाव का आश्रय करता है। अभी मुझे स्वज्ञेय का पूर्ण आश्रय नहीं है, इसीलिये वीतरागता और केवलज्ञान नहीं है ह्न ऐसा ज्ञानी जानते हैं।

पूर्व पर्याय का ज्ञान कराने के लिए शास्त्र में कथन आता है कि वीतरागता केवलज्ञान का कारण है। जबकि वीतरागता बारहवें गुणस्थान में होनेवाली चारित्रगुण की निर्मल पर्याय है, इसीलिये उसमें से केवलज्ञान प्रगट हो ह्न ऐसा नहीं बनता। केवलज्ञान की पर्याय ज्ञानगुण में से प्रगट होती है और ज्ञानगुण का आधार आत्मा है, किन्तु पूर्व पर्याय अथवा अन्य गुण की पर्याय में से वह प्रगट नहीं होती। रागी जीवों को कभी भी केवलज्ञान नहीं होता, किन्तु वीतरागी को ही प्रगट होता है; इसप्रकार रागी जीवों से भेद बताने के लिए कहा गया है कि वीतरागता केवलज्ञान का कारण है।

ज्ञानी को अपनी पर्याय में कमी इसीलिये है कि उसे अपने द्रव्य का आश्रय कम है। अपने द्रव्य का आश्रय बढ़ने पर उन्हें निर्मलता विशेष होती है।

शास्त्र में कथन आता है कि सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के हेतु हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि कोई जीव पर पदार्थ को नहीं भोग सकता, ज्ञानी की नजर भोग के ऊपर नहीं है। राग से निर्जरा होगी ह्न ऐसा भी वे नहीं मानते। सम्यक्त्व हुआ है ह्न इस कारण धीरे-धीरे वीतरागता होगी ह्न

ऐसा भी वे नहीं मानते, किन्तु वे असंकीर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय द्वारा सुस्थित भगवान आत्मा का आश्रय करते हैं और अपने ज्ञान के स्वपर प्रकाशक स्वभाव के कारण स्व और पर अर्थात् राग, निमित्त आदि को जैसे हैं, वैसे जानते हैं। वे राग के ज्ञाता रहते हैं। उन्हें अपने स्वभाव का थोड़ा आश्रय है, इस कारण राग है ह्न ऐसा वे यथार्थ जानते हैं और स्वभाव का विशेष आश्रय करने से उन्होंने समस्त परद्रव्यों की संगति दूर की है। कोई भी जीव परद्रव्य को दूर नहीं कर सकता, यदि परद्रव्य को दूर करने जाये तो मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। ज्ञानी को कमजोरी के कारण विकल्प आते हैं, किन्तु वे अपने स्वभाव का आश्रय करते हैं, अतः ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने समस्त परद्रव्य अर्थात् बाह्य पदार्थ और विकल्पों की संगति दूर की।

इसतरह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के पिण्ड स्वद्रव्य का आश्रय होने से वह जीव वास्तव में स्व समय होता है अर्थात् अपने में वीतरागी परिणाम होता है। इसीलिये वीतरागी परिणमन ही आत्मा का तत्त्व है।

इस ज्ञेय तत्त्व अधिकार में एक-एक पर्याय की स्वतंत्रता बताई है। ज्ञानी को एक समय की कचास है, क्योंकि उसे अपने स्वज्ञेय का आश्रय थोड़ा है। इसके सिवाय अन्य कोई कारण नहीं है। कर्म का उदय है, इस कारण जीव संसार में रुका हुआ हो ह्न ऐसा नहीं है। सम्यक्त्व हुआ, इसीलिये धीरे-धीरे केवलज्ञान होगा और केवलज्ञान होगा तो क्रमशः सिद्ध होगा, इसतरह पर्याय के आधार से शुद्धि है ही नहीं। प्रत्येक व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय स्वयं के द्रव्य के आधार से है। पर्याय की कचास (कमजोरी) और वृद्धि अपने द्रव्य के आधार से है।

इसप्रकार एक-एक पर्याय का परिणमन स्वतंत्र है; अन्यमत में तो ऐसी बात ही नहीं है। वे इन्द्रिय दमन करें, नग्नदशा हो, वैराग्य भी हो, किन्तु ऐसी बात समझे बिना धर्म नहीं होता। अन्यमत वाले को तो गृहीत मिथ्यात्व है। ऐसी सूक्ष्म बात जैन के सिवाय अन्य कहीं नहीं मिलती। अन्यमत जो कहते हैं कि सम्यक्त्व हुआ, इस कारण केवलज्ञान हो गया

ह्न यह बात असत्य है।

अनंत द्रव्य हैं, एक द्रव्य में अनंत गुण हैं, उनकी विकारी अथवा अविकारी पर्यायें हैं, वे सभी ज्ञेय हैं। ऐसा नहीं है कि ह्न एक गुण प्रगट हुआ तो दूसरा गुण भी प्रगट होना चाहिए। आत्मा का आकार स्वयं के कारण है, किन्तु शरीर के आकार के कारण नहीं। इसप्रकार प्रत्येक पर्याय का स्वतंत्र निर्णय करने पर और अपने द्रव्य-गुण का आश्रय करने पर मिथ्यात्व उत्पन्न नहीं होता और राग-द्वेष नहीं होते तथा सम्पूर्ण आश्रय करने पर सिद्धदशा प्रगट होती है।

अज्ञानी जीव तो वीतरागी के नाम से तथा शास्त्र के नाम से, विपरीत कहते हैं, किन्तु इससे वस्तु स्वरूप नहीं बदलता तथा जैसा वे कहते हैं, वैसा वीतरागी ने भी नहीं कहा है।

जो मनुष्यव्यवहार का आश्रय करता है, उसका संसार दूर नहीं होता और स्वज्ञेय का आश्रय करनेवाले ज्ञानी को संसार उत्पन्न नहीं होता।

-करणानुयोग के शास्त्रों में ऐसा कथन आता है कि कर्म के उदय के कारण जीव को विकार होता है।

-समयसार में ऐसा कथन आता है कि ज्ञानी राग के कर्त्ता नहीं हैं, राग तो पुद्‌गल का परिणाम है।

-प्रवचनसार में ऐसा कथन आता है कि ह्न अपनी कमजोरी के कारण राग होता है।

तो क्या ह्न ऐसे तीन प्रकार होते हैं? जबकि तीनों के कहने का भाव एक ही है। कहा भी है कि ह्न

एक होय त्रण काल मां, परमारथ नो पंथ।

भाई! करणानुयोग में यह सिद्ध करना है कि कर्म भी एक वस्तु है; समयसार में राग अपना त्रिकाली स्वरूप नहीं है, इसलिये दृष्टि अपेक्षा राग को अजीव कहा है; और प्रवचनसार में राग पर से नहीं होता, किन्तु स्वयं पर में अटकता है तो राग होता है ह्न इसप्रकार राग की पर्याय का ज्ञेय के रूप में वर्णन करके ज्ञान कराया है।

जैसे व्यापारी सभी के खातों को खाते-बही में अलग-अलग लिखते हैं, वैसे ही सभी शास्त्रों की अलग-अलग अपेक्षाओं को समझकर मिलान करना चाहिए। अज्ञानी जीव इन दो गाथाओं को पढ़कर कहता है कि पर्याय अपनी है, फिर भी पयार्यमूढ़ कहते हो तो तुम वेदान्ती हो जाओगे। इसतरह वह शास्त्र से विरुद्ध अर्थ निकालता है, किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि जो ऐसा मानता है कि पर्याय पर से होती है और मैं पर्याय जितना ह्न अंश जितना ही हूँ, उसे पर्यायमूढ़ कहा है।

गाथा १४ के भावार्थ पर प्रवचन

मैं मनुष्य हूँ, शरीर हूँ और मनुष्य पर्यायरूप अंश जितना हूँ, शरीर की क्रिया मेरे से होती है, मैं पुत्र को बड़ा करता हूँ, मैं हूँ तो समाज की रक्षा होती है, स्त्री-पुत्र, धनादि के ग्रहण-त्याग का मैं स्वामी हूँ, सिद्ध हैं तो (उनके प्रति भक्ति का) राग होता है, भगवान हैं तो दिव्यध्वनि छूटना ही चाहिए ह्न इत्यादि प्रकार की मान्यताएँ मनुष्य व्यवहार हैं। यह जीव परज्ञेयों को अपना मानता है जो कि मिथ्यात्व का वर्तन (परिणमन) है। मात्र अविचलित चेतना विलास अर्थात् निर्मल पर्याय ही मैं हूँ ह्न ऐसा मानना आत्मरूप वर्तन है।

जो जीव मनुष्यादि अवस्था में लीन है अर्थात् अंश को स्वीकार करनेवाला है, वह पर्याय की उत्पत्ति पर के कारण मानता है, जबकि अपनी पर्याय द्रव्य में से प्रवाहित होती है ह्न ऐसा स्वीकार नहीं करनेवाला निगोद से लेकर सिद्ध तक सभी जीवों को तथा सभी परमाणुओं को अपना मानता है।

समस्त ज्ञेयों को एक ही प्रकार से जानने का अपना स्वभाव है, इसे छोड़कर (भूलकर) अमुक ज्ञेयों में अनुकूलता मानकर उनकी रक्षा करता है और अमुक ज्ञेयों में प्रतिकूलता मानकर उनसे द्वेष करता है। इसप्रकार वह ज्ञेयों में दो भाग करके मिथ्यात्व सहित राग-द्वेष करता है, अकेले अंश को मानता है, अकेले परप्रकाशक स्वभाव को मानता है। अपने अंश को ही स्वीकार करनेवाला सामनेवाला पदार्थ के भी अंश को ही स्वीकार करता है, जिससे वह सामनेवाले पदार्थ की वर्तमान पर्याय को

ही देखता है। जो एक अंश में मूढ़ है, वह स्व और पर दोनों में मूढ़ हैं।

जो जीव अपने को सम्पूर्ण अंशी मानता है, वह स्व और पर दोनों का ज्ञानी है। साक्षात् केवली भगवान से भी जो अपने को पृथक् मानता है, वह भगवान होता है ह्न ऐसे भगवान आत्मस्वभाव का जो आश्रय करता है, वह अनेकान्त दृष्टिवाला होने से मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करता।

मैं हूँ और परपदार्थ भी हैं, किन्तु परपदार्थ हैं; इसलिये मैं हूँ ह्न ऐसा नहीं है। मेरे ज्ञान से मैं स्व-पर को जानता हूँ, किन्तु पर है; इसीलिये उनका ज्ञान होता है ह्न ऐसा नहीं है। यह अनेकान्त है।

ज्ञान निमित्त से प्रगट होता है, जब अपने को ज्ञान होना हो, तब निमित्त को उपस्थित रहना पड़ेगा, एक गुण (पर्याय) प्रगट हो तो दूसरे को भी प्रगट होना चाहिए ह्न ऐसे मनुष्यव्यवहार का ज्ञानी आश्रय नहीं करते, अपितु आत्मव्यवहार का आश्रय करते हैं अर्थात् वे अपने द्रव्य का आश्रय करते हैं; अपने अंशी स्वभाव का आश्रय करते हैं, इसीलिये रागी-द्वेषी नहीं होते। परद्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं करने से, केवल स्वद्रव्य के साथ ही सम्बन्ध करने से वे जीव धर्म को प्राप्त करते हैं।

भेदज्ञान पूर्वक स्वज्ञेय को ग्रहण करने पर चारित्र दशा प्रगट होती है; इसकारण ज्ञानी को राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते अर्थात् वे परम उदासीन रहते हैं। अज्ञान दशा में जो पर की पर्यायों अर्थात् शरीर, प्रतिमा आदि अन्य पदार्थों के वर्तमान अंश तरफ दृष्टि होती थी, वह सम्बन्ध दूर हो गया तथा वे अपने स्वद्रव्य के साथ ही सम्बन्ध रखते हैं, इसकारण वे स्व समय हैं।

ज्ञेय अधिकार की इन दो गाथाओं में महल का स्तम्भ रोपा है, उस पर प्रशम के लक्ष्य से केवलज्ञानरूपी महल बनेगा अथवा जो मुमुक्षु इन दो गाथाओं के यथार्थ को समझेंगे, वे निश्चित रूप से अपने में सम्यग्दर्शन प्रगट करेंगे। ●

प्रवचनसार गाथा ९५

अब, द्रव्य का लक्षण बतलाते हैंह्न

अपरिच्चत्तसहावे णुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति॥९५॥

(हरिगीत)

निजभाव को छोड़े बिना उत्पादव्ययध्रुवयुक्त गुण।
पर्ययसहित जो वस्तु है वह द्रव्य है जिनवर कहें॥९५॥

अन्वयार्थ :ह्न [अपरित्यक्तस्वभावेन] स्वभाव को छोड़े बिना [यत्] जो [उत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम्] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसंयुक्त है [च] तथा [गुणवत् सपर्यायं] गुणयुक्त और पर्यायसहित है, [तत्] उसे [द्रव्यम् इति] 'द्रव्य' [ब्रुवन्ति] कहते हैं।

टीका :ह्न यहाँ (इस विश्व में) जो, स्वभावभेद किये बिना, [1]उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय से और [2]गुण पर्यायद्वय से [3]लक्षित होता है, वह द्रव्य है। इनमें से (स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय में से) द्रव्य का स्वभाव वह [4]अस्तित्वसामान्यरूप अन्वय है; अस्तित्व दो प्रकार का कहेंगे :ह्न १. स्वरूप-अस्तित्व। २. सादृश्य-अस्तित्व। उत्पाद वह प्रादुर्भाव (प्रगट होना ह्न उत्पन्न होना) है; व्यय वह प्रच्युति (अर्थात् भ्रष्ट, नष्ट होना) है; ध्रौव्य वह अवस्थिति (ठिकाना) है; गुण वह विस्तारविशेष हैं। वे सामान्यविशेषात्मक होने से दो प्रकार के हैं। इनमें, अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, सप्रदेशत्व, अप्रदेशत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व,

१. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ह्न यह त्रिपुटी (तीनों का समूह)
२. गुणपर्यायद्वय = गुण और पर्याय ह्न यह युगल (दोनों का समूह)
३. लक्षित होता है ह्न लक्ष्यरूप होता है, पहिचाना जाता है। (१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तथा (२) गुण पर्याय वे लक्षण हैं और द्रव्य वह लक्ष्य है।)
४. अस्तित्वसामान्यरूप अन्वय= है, है, है ह्न ऐसा एकरूप भाव द्रव्य का स्वभाव है।

अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि सामान्यगुण हैं; अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण हैं। पर्याय आयतविशेष है। वे पूर्व ही (१३वीं गाथा की टीका में) कथित चार प्रकार की हैं।

द्रव्य का उन उत्पादादिक के साथ अथवा गुण-पर्यायों के साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी स्वरूप भेद नहीं है। स्वरूप से ही द्रव्य वैसा (उत्पादादि अथवा गुण-पर्यायवाला) है ह्न वस्त्र के समान।

जैसे मलिन अवस्था को प्राप्त वस्त्र, धोने पर निर्मल अवस्था से (निर्मल अवस्थारूप, निर्मल अवस्था की अपेक्षा से) उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद से लक्षित होता है; किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है (अर्थात् स्वयं उत्पादरूप से ही परिणत है); उसीप्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है, ऐसा द्रव्य भी ह्न जो कि उचित बहिरंग साधनों के सान्निध्य (निकटता; हाजरी) के सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत-सी अवस्थायें करता है, वह ह्न [१]अन्तरंगसाधनभूत स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्यरूप स्वभाव से अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ वह उत्पाद से लक्षित होता है; किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है; उसीप्रकार वही द्रव्य भी उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और पूर्व अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है; परन्तु

१. द्रव्य में निज में ही स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरण होने की सामर्थ्य है। यह सामर्थ्यस्वरूप स्वभाव ही अपने परिणमन में (अवस्थांतर करने में) अन्तरंग साधन है।

उसका उस व्यय के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र एक ही समय में निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ और टिकनेवाली ऐसी वस्त्रत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है; परन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है; इसीप्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, पूर्व अवस्था से व्यय होता हुआ और टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है; किन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र विस्तारविशेषस्वरूप (शुक्लत्वादि) गुणों से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वह वैसा है; इसीप्रकार वही द्रव्य भी विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र आयतविशेषस्वरूप पर्यायवर्ती (पर्यायस्थानीय) तंतुओं से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन तंतुओं के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। उसीप्रकार वही द्रव्य भी आयतविशेषस्वरूप पर्यायों से लक्षित होता है, परन्तु उसका उन पर्यायों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

गाथा १५ पर प्रवचन

आचार्यदेव यहाँ यह बता रहे हैं कि आत्मा, पुद्गल और अन्य द्रव्यों को किस तरह पहचाना जाता है; क्योंकि इसे जाने बिना स्वज्ञेय और परज्ञेय का विवेक नहीं होता। प्रत्येक आत्मा, रजकण (पुद्गल) और अन्य चार द्रव्य उनके लक्षण द्वारा पहिचाने जाते हैं।

इस जगत में छह द्रव्य हैं, वे अपने अस्तित्वरूप स्वभाव को छोड़े

बिना उत्पाद-व्यय-ध्रुव त्रिपुटी से और गुण-पर्यायरूप युगल से लक्षित होते हैं।

यहाँ 'अपरित्यक्तस्वभावेन' इस वाक्य में बहुत रहस्य है। जो अस्तित्व होता है, वह पर में नहीं मिलता और जो होता है, वह पर से नहीं आता। जो स्वभाव है; उसे छोड़े बिना, पर में मिले बिना, पर में से लिये बिना, अपने में से अंश छोड़े बिना, स्वयं अपने से छूटे बिना, स्वभाव के टुकड़े किये बिना .... इतने अर्थ 'अपरित्यक्तस्वभावेन' में से निकलते हैं।

एक-एक समय का उत्पाद, एक-एक समय का ध्रुव, एक-एक समय का व्यय अपनी सत्ता ह्न गुण के साथ सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं रखते।

१३ और १४ गाथा में जो स्वभाव लिया है, वह इस गाथा का स्वभाव नहीं है। गाथा १४ में उपसंहार करके वह बात वहाँ पूर्ण कर दी है। अब गाथा १५ में दूसरी तरह से बात की है। ''गाथा १४ में जिस द्रव्य-गुण-पर्याय के पिण्ड को आत्मस्वभाव कहा था। उस स्वभाव की यहाँ बात नहीं है। यहाँ पर सत्ता गुण को आत्म- स्वभाव कहा है। उत्पाद, व्यय, ध्रुव, अस्तित्व से पृथक् नहीं है। गुण और पर्यायें भी अस्तित्व से पृथक् नहीं हैं ह्न ऐसा इस गाथा में कहना है।

शरीर की चलनेरूप अवस्था का उत्पाद हुआ, इसकारण शरीर है - ऐसा ज्ञात होता है, किन्तु वह आत्मा के साथ है ह्न ऐसा ज्ञात नहीं होता; इसीप्रकार अपने ध्रुव और व्यय से वह द्रव्य लक्षित होता है। विद्यार्थी को ज्ञान हुआ हो, तब अपने अस्तित्वरूप स्वभाव को छोड़े बिना ज्ञानगुण से उसका आत्मा लक्षित होता है, किन्तु मास्टर का आत्मा लक्षित नहीं होता; इसीप्रकार अपनी पर्याय से वह द्रव्य लक्षित होता है।

यहाँ द्रव्य को पहचानने के दो लक्षण कहे हैं ह्न

१. उत्पाद-व्यय और ध्रुव तथा २. गुण और पर्याय।

गुण, ध्रुव में आ जाते हैं और पर्यायें उत्पाद-व्यय में आ जाती हैं; फिर भी विशेष विस्तार और स्पष्टीकरण के लिए दोनों लक्षणों को पृथक्-पृथक् कहा है। स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय ह्न इसप्रकार छह शब्द कहे हैं। इसमें प्रत्येक के अर्थ को समझाते हैं।

(१) द्रव्य का स्वभाव :ह्न अस्तित्व सामान्यरूप अन्वय अर्थात् है... है... है... ऐसा एकरूप द्रव्य का स्वभाव है। (अन्वय अर्थात् सदृशभाव; एकरूपपना)।

(अ) स्वरूप अस्तित्व ह्न अर्थात् प्रत्येक पदार्थ के अपने स्वरूप का अस्तित्व, वह स्वरूप अस्तित्व है। प्रत्येक आत्मा का अपने चैतन्य स्वरूप से अस्तित्व है, अन्य आत्माओं का उनके चैतन्य स्वरूप से अस्तित्व है, अनेक परमाणु अपने रूपादिगुण के अस्तित्व से हैं ह्न ऐसा प्रत्येक आत्मा और परमाणु आदि अपने-अपने स्वरूप अस्तित्व से पृथक्-पृथक् हैं।

(ब) सादृश्य अस्तित्व ह्न समस्त ही पदार्थ अस्तित्व की अपेक्षा से सादृश अस्तित्ववाले हैं। है... है... है... अर्थात् अस्तित्व की अपेक्षा से जीव पुद्गल तथा अन्य चारों द्रव्य समान हैं।

(२) उत्पाद :ह्न उत्पाद का अर्थ प्रगट होना ह्न उत्पन्न होना, अपने अस्तित्व सामान्यरूप स्वभावत्व को छोड़े बिना अवस्था का उत्पन्न होना, वह उत्पाद है, इससे वह द्रव्य लक्षित होता है।

एक जीव का शरीर चलता है और मृत्यु होने पर शरीर नहीं चलता तो उस स्थिर होने की अवस्था का प्रादुर्भाव शरीर के द्रव्य को लक्षित करता है, किन्तु वह आत्मा को लक्षित नहीं करता। यहाँ आत्मा था तो शरीर चलता था और आत्मा नहीं है तो वह नहीं चलता ह्न यह प्रश्न ही नहीं रहता।

एक समय आम हरा है और दूसरे समय पीला हुआ तो पीलेपन की अवस्था का उत्पन्न होना, यह द्रव्य को - आम को लक्षित करता है, किन्तु वह अन्य संयोग अर्थात् घास अथवा जीव को लक्षित नहीं करता।

भगवान की प्रतिमा देखकर शुभभाव हुआ, उसमें अपने अस्तित्व सामान्यस्वरूपभाव को छोड़े बिना शुभभाव का उत्पाद हुआ, वह जीव द्रव्य को लक्षित करता है, किन्तु प्रतिमा को लक्षित नहीं करता।

(३) व्यय :ह्न व्यय का अर्थ भ्रष्ट होना, नाश होना। अपने अस्तित्व अर्थात् सामान्यरूपस्वभाव को छोड़े बिना अवस्था का नाश होना; इस व्यय लक्षण से द्रव्य लक्षित होता है।

आम की हरी पर्याय का नाश हुआ उसका कारण कौन? पर द्रव्य उसका कारण नहीं है, क्योंकि उसके अस्तित्व स्वभाव के साथ सम्बन्ध रखकर व्यय होता है अर्थात् द्रव्य का सर्वथा नाश नहीं हो जाता। उस हरी पर्याय का व्यय, आम के द्रव्य को लक्षित करता है; किन्तु निमित्त अथवा संयोग को लक्षित नहीं करता।

एक समय में एक परमाणु दो गुण अधिक स्निग्ध (चिकना) हो और दूसरे समय उसका व्यय होकर वह अनन्त गुणा स्निग्ध होता है। जीव में एक समय में शुभभाव का व्यय हो अथवा अशुभभाव का व्यय हो तो यह व्यय उस जीव को लक्षित करता है, किन्तु निमित्त-देव-गुरु को अथवा कुटुम्ब को लक्षित नहीं करता। ये समझने पर एक पुद्गल एक समय स्निग्ध और दूसरे समय रूक्ष ह्न ऐसा कैसे? अथवा एक जीव बहुत शुभभाव करे और दूसरे समय अशुभभाव करे ह्न ऐसी विचित्रता क्यों? यह प्रश्न ही नहीं रहता; क्योंकि व्यय द्रव्य का लक्षण है।

(४) ध्रौव्य :ह्न टिकना; अपने अस्तित्व सामान्यरूप स्वभाव को छोड़े बिना ध्रुवरूप टिके रहना; इस ध्रुव लक्षण से वह द्रव्य लक्षित होता है। अन्य के अस्तित्व से इस पदार्थ का ध्रुवत्व नहीं है। परमाणु के ध्रुवत्व से परमाणु लक्षित होता है, किन्तु आत्मा लक्षित नहीं होता; वैसे ही आत्मा के ध्रुवरूप टिके रहने से आत्मा लक्षित होता है, किन्तु शरीर लक्षित नहीं होता।

इसी बात को विस्तार से कहते हैं ह्न विशेष गुण एक साथ हैं। जैसे जीव में ज्ञान, दर्शनादि, शक्कर में मिठास आदि गुण अक्रम से अर्थात्

एक ही साथ हैं। एक ही समय में सभी गुण हैं, आगे-पीछे नहीं। वैसे ही पर्यायें क्रम-क्रम से होने पर भी संधि (क्रम) टूटे बिना साँकल के समान वे एक के बाद एक नियमित, क्रमबद्ध हैं। इन गुण-पर्याय से उन-उन द्रव्य को लक्षित करता है; इसमें ही ज्ञाता-दृष्टापना सिद्ध हुआ। नियमित (क्रमबद्ध) कहो अथवा सम्यक् नियत कहो अथवा धर्म कहो ह्न यह एक ही बात है।

(५) गुण :ह्न गुण दो प्रकार के हैं :ह्न सामान्य और विशेष। इसमें सामान्य गुण का वर्णन निम्नानुसार है :ह्न

(१) अस्तित्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना अस्तित्व गुण से द्रव्य लक्षित होता है। यह गुण छहों द्रव्य में है।

अन्य शास्त्रों में कथन आता है कि चेतना से आत्मा लक्षित होता है और रूपित्व से पुद्गल लक्षित होता है, जबकि यहाँ बताया है कि ह्न प्रत्येक गुण और प्रत्येक पर्याय से द्रव्य लक्षित होता है, इसीलिये अपेक्षाओं को बराबर समझना चाहिए।

(२) नास्तित्व :ह्न अपने स्वभाव को छोड़े बिना नास्तित्व गुण से प्रत्येक द्रव्य लक्षित होता है। यह गुण छहों द्रव्यों में है। पर के अभावस्वरूप प्रत्येक द्रव्य है। सामनेवाला द्रव्य भी उनके अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना उनके नास्तित्व गुण से जानने में आता है। पर के नास्तित्व गुण से पर-पदार्थ जानने में आता है और अपने नास्तित्व गुण से स्वयं जानने में आता है।

(३) एकत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना एकत्व गुण से प्रत्येक द्रव्य लक्षित होता है। यह गुण छहों द्रव्यों में है। समयसार में ४७ शक्तियों में यह शक्ति आती है। प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से एकत्व स्वरूप है।

यहाँ जो सभी गुण कहे हैं, वे परिणमन स्वरूप हैं ह्न अकेले धर्म नहीं। गुण, धर्म तो हो सकते हैं; किन्तु धर्म, गुण नहीं हो सकते। यहाँ सभी गुण जो परिणमनशील हैं, उनकी बात है।

(४) अन्यत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना अन्यत्व गुण से प्रत्येक द्रव्य लक्षित होता है। यह गुण भी छहों द्रव्यों में है। यह आत्मा अन्य आत्माओं और अन्य द्रव्यों से त्रिकाल अन्य (भिन्न) है। अन्यत्व से वे पदार्थ पहिचाने जाते हैं।

गुणों में अस्तित्व के साथ नास्तित्व, एकत्व के साथ अन्यत्व ह्न इस तरह सभी में लिया है ह्न यह समझ लेना।

(५) द्रव्यत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना द्रव्यत्व गुण से प्रत्येक पदार्थ लक्षित होता है। यह गुण छहों द्रव्यों में है। द्रव्यत्व गुण के कारण से प्रत्येक पदार्थ द्रवित हो रहा है।

(६) पर्यायत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना पर्यायत्व गुण से प्रत्येक द्रव्य लक्षित होता है, यह गुण छहों द्रव्यों में है। पर्यायत्व गुण के कारण से प्रत्येक द्रव्य परिणमित होता है। द्रव्यत्व में द्रवित होना ह्न ऐसा भाव है और पर्यायत्व में विशेष से - पर्याय की मुख्यता से द्रवित होना - ऐसा अर्थ होता है।

(७) सर्वगतत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना सर्वगतत्व गुण से प्रत्येक जीव द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य लक्षित होता है। क्षेत्र से बहुत व्यापकत्व होना ह्न ऐसा सर्वगतत्व का अर्थ है। उक्त चार द्रव्यों का बड़ा क्षेत्र है। यहाँ जो सामान्य गुण कहे हैं, उसका अर्थ यह नहीं है कि वे छहों द्रव्यों में होना चाहिए, अपितु बहुत द्रव्यों में हो अर्थात् सामान्य ऐसा इसका अर्थ समझना चाहिए।

(८) असर्वगतत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना असर्वगतत्व गुण से प्रत्येक परमाणु और कालाणु लक्षित होता है। छोटे से छोटे क्षेत्र में व्यापक होना यह असर्वगतत्व का अर्थ है। छोटे क्षेत्र में व्यापकत्व से काल और परमाणु लक्षित होता है और बड़े क्षेत्र में व्यापक होने से जीव, धर्म, अधर्म, आकाश लक्षित होते हैं।

(९) सप्रदेशत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना अप्रदेशत्व गुण से जीव, धर्म, अधर्म, आकाश लक्षित होते हैं। जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य असंख्य प्रदेशी हैं और आकाश अनंतप्रदेशी है।

(१०) अप्रदेशत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना अप्रदेशत्व गुण से काल और परमाणु लक्षित होते हैं, क्योंकि काल और परमाणु एक-एक प्रदेशी हैं।

इस तरह काल नाम का द्रव्य सिद्ध होता है। कितने ही जीव काल द्रव्य को नहीं मानते, उनकी बात असत्य है; क्योंकि अप्रदेशत्व और असर्वगतत्व से कालाणु लक्षित होते हैं।

(११) मूर्तत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना मूर्तत्व गुण से अनन्त पुद्गल द्रव्य लक्षित होते हैं। मूर्तत्व अर्थात् रूपित्व=स्पर्श, रस, गंध, वर्ण सहित। पुद्गल द्रव्य जाति अपेक्षा एक है, किन्तु संख्या अपेक्षा अनंत हैं और इन सभी में मूर्तत्वगुण है इस अपेक्षा से मूर्तत्व को सामान्य गुण कहा है।

(१२) अमूर्तत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना अमूर्तत्व गुण से जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य लक्षित होते हैं। अमूर्तत्व अर्थात् अरूपित्व। एक पुद्गल के सिवाय जीवादि पाँचों द्रव्यों में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं होता।

आत्मा देह से पृथक् है। आत्मा और जड़ अपने-अपने लक्षण द्वारा पहिचाने जाते हैं। आत्मा और जड़ की पहिचान करके स्व की श्रद्धा करे तो अंतर अनुभव हो। जो वस्तु होती है, उसका नाश नहीं होता। अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना उत्पाद-व्यय और ध्रुव ह्न इन तीन से और गुण-पर्याय से द्रव्य लक्षित होता है। अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना ऐसा प्रत्येक गुण में समझ लेना।

(१३) सक्रियत्व :ह्न इस गुण से जीव और पुद्गल द्रव्य लक्षित होता है। सक्रियत्व अर्थात् क्षेत्रान्तर होना ह्न एक जगह से दूसरी जगह जाना। आत्मा अपने सक्रियत्व गुण द्वारा और शरीर अपने सक्रियत्व गुण द्वारा लक्षित होते हैं। आत्मा के कारण शरीर नहीं चलता और शरीर के कारण आत्मा नहीं चलता है। पुस्तक चलती है तो वह उसके सक्रियत्व गुण से

चलती हुई दिखाई देती है, किन्तु वह हाथ से चलती हुई दिखाई नहीं देती तथा हाथ अपने सक्रियत्व गुण से जाना जाता है।

प्रश्न :ह्न एक ने दूसरे को धक्का मारा ह्न ऐसा तो दिखाई देता है न?

उत्तर :ह्न प्रत्येक वस्तु अपने-अपने कारण से क्षेत्रांतर करती है। निगोद के एक शरीर में अनंत जीव हैं, वे सभी एक साथ गति करते हैं। प्रत्येक आत्मा अपने सक्रियत्व गुण के कारण से गति करता है, किन्तु अन्य गति करते हैं, इसीलिये नहीं। प्रत्येक के सक्रियत्व गुण के द्वारा प्रत्येक जीव पृथक्-पृथक् पहिचाना जाता है।

(१४) अक्रियत्व :ह्न इस गुण से धर्म, अधर्म, आकाश और काल लक्षित होते हैं। अक्रियत्व अर्थात् स्थिर रहना। ये चारों ही द्रव्य अनादि-अनंत जहाँ हैं, वहाँ ही पड़े हुए हैं। प्रत्येक के अक्रियत्व गुण द्वारा प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् लक्षित होते हैं।

(१५) चेतनत्व :ह्न इस गुण से प्रत्येक आत्मा लक्षित होता है। सभी जीवों में रहा है, इस अपेक्षा से इसे जहाँ सामान्य कहा है। चेतनत्व अर्थात् ज्ञान-दर्शनपना जीव में ही है, किन्तु जड़ पदार्थों में यह नहीं है तथा प्रत्येक जीव का चेतनत्व पृथक्-पृथक् है। वह अपने-अपने चेतनत्व गुण से पहिचाना जाता है, किन्तु एक जीव के चेतनत्व गुण से दूसरा जीव नहीं पहिचाना जाता। शिष्य के चेतन गुण से शिष्य लक्षित होता है, किन्तु गुरु लक्षित नहीं होता और गुरु के चेतनत्व गुण से गुरु लक्षित होता है।

(१६) अचेतनत्व :ह्न इस गुण से जड़ द्रव्य लक्षित होते हैं। यह गुण पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में है। अचेतनत्व अर्थात् ज्ञान का नहीं होना ह्न जड़पना। शास्त्र, मूर्ति, शरीर, इन्द्रिय सभी अचेतन हैं, इनमें ज्ञान नहीं है।

(१७) कर्तृत्व :ह्न इस गुण से छहों द्रव्य लक्षित होते हैं। एक पदार्थ का कर्त्ता अन्य कोई पदार्थ नहीं है; प्रत्येक पदार्थ स्वयं सिद्ध है। यदि पदार्थ न हो तो सब शून्य हो जाये, किन्तु वस्तु स्वरूप ऐसा नहीं है और

पदार्थ है, ऐसा कहने पर उसका कर्त्ता अन्य कोई नहीं हो सकता। जीव और पुद्गल अथवा पुद्गल और पुद्गल साथ मिलकर कार्य करते ही नहीं। प्रत्येक द्रव्य अपने कर्तृत्व गुण से अपने में कार्य कर रहे हैं।

(१८) अकर्तृत्व :ह्न इस गुण से छहों द्रव्य लक्षित होते हैं। परद्रव्य का नहीं करने के गुण से प्रत्येक द्रव्य पहिचाना जाता है? शरीर का नहीं करना, इस गुण से आत्मा पहिचाना जाता है। दूसरा जीव मरने से बचा; इससे दया करनेवाला नहीं जाना जाता, किन्तु सामने वाले जीव के नहीं करने के गुण से वह पहिचाना जाता है। शरीर का कुछ न कर सके ह्न ऐसे अकर्तृत्व से आत्मा पहिचाना जाता है। पर के अकर्त्ता द्वारा तो जीव पहिचाना जाता है, किन्तु पर के कर्त्ता द्वारा वह नहीं पहिचाना जाता। स्व के कर्त्ता द्वारा जीव पहिचाना जाता है, किन्तु स्व के अकर्त्ता द्वारा नहीं पहिचाना जाता ह्न ऐसा अनेकांत है।

(१९) भोक्तृत्व :ह्न इस गुण से छहों द्रव्य लक्षित होते हैं। प्रत्येक द्रव्य में अपनी पर्याय को भोगने का गुण है। ऐसा कहा जाता है कि जीव ने रोटी खाई और वैभव को भोगा, किन्तु यह असत्य है; क्योंकि रोटी के भोक्तृत्व गुण से रोटी तथा जड़ पदार्थ पहिचाने जाते हैं। उससे जीव नहीं पहिचाना जाता और विकारी भाव जो अज्ञानी भोगता है, उस भाव से वह जीव नहीं पहिचाना जाता है।

इस गाथा में अभेद द्रव्य में भेद करके लक्षण से समझाया है। उत्पाद, व्यय पर्याय है और उनसे द्रव्य लक्षित होता है। ध्रुव वह गुण है और उससे द्रव्य लक्षित होता है।

इसप्रकार छह लक्षण-अस्तिस्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय से प्रत्येक द्रव्य लक्षित होता है।

अन्य शास्त्रों में चेतना लक्षण से अथवा उपयोग के बारह भेदों से आत्मा को बताते हैं। यहाँ इस गाथा में उपर्युक्त छह लक्षणों द्वारा आत्मा को बताया है। 'अपरित्यक्तस्वभावेन' अर्थात् अपने अस्तित्व स्वभाव का भेद किये बिना (तोड़े बिना, टुकड़े किये बिना) ऊपर के सभी लक्षणों

से प्रत्येक द्रव्य सिद्ध होता है।

सभी ज्ञेयों को जानने वाला ज्ञान है। इन पर्याय और इन गुणों से यह द्रव्य है और दूसरे के गुण और दूसरे की पर्याय से दूसरा द्रव्य है। एक-दूसरे में एक-दूसरे की मिलावट किये बिना अनंत ज्ञेयों को ज्ञान जानता है; सभी को पृथक्-पृथक् जानता है।

प्रश्न :ह्न इतना सब जानने जाये तो विकल्पों का ढेर हो जायेगा?

समाधान :ह्न भाई! तूने ज्ञान के स्वभाव को नहीं समझा। इसीलिये यह शंका हुई है। अनंत पदार्थों को अनंत गुणों तथा पर्यायों सहित एक समय में जान लेने की ताकत, ज्ञान की एक समय की पर्याय में है।

ज्ञान अधिकार के उपसंहार में कहा था कि प्रशम के लक्ष्य से केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए ज्ञेय अधिकार कहेंगे। राग के अभाव के लक्ष्य से इतना विस्तार जाने तो राग नहीं बढ़ेगा, अपितु घटता जायेगा, वीतरागता हो जायेगी और ज्ञान बढ़ता जायेगा।

(२०) अभोक्तृत्व :- इस गुण से छहों द्रव्य लक्षित होते हैं। एक भी द्रव्य दूसरे द्रव्य को नहीं भोग सकता। लड्डू आदि खाद्य पदार्थों को नहीं भोगने के गुण से जीव पहिचाना जाता है।

(२१) अगुरुलघुत्व :ह्न अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना अगुरुलघुत्व गुण से छहों द्रव्य लक्षित होते हैं। प्रत्येक द्रव्य अन्यरूप नहीं परिणमित होने के गुण से पहिचाने जाते हैं। शरीररूप से नहीं परिणमित होने के गुण से आत्मा पहिचाना जाता है।

इसप्रकार यह सामान्य गुणों का वर्णन हुआ। अब विशेष गुणों का वर्णन करते हैं :ह्न

अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना यह विशेषण प्रत्येक गुण में समझ लेना।

१. अवगाहनहेतुत्व :ह्न इस गुण से आकाश द्रव्य लक्षित होता है। असाधारण अवगाहनगुण अर्थात् सभी को एक ही साथ अवगाहन दे ह्न ऐसा गुण मात्र आकाश में है, अन्य में नहीं।

२. गति निमित्तता :ह्न इस गुण से धर्म द्रव्य लक्षित होता है। गतिमान पदार्थों ह्न जीवों और पुद्‌गलों को गति में निमित्त धर्म द्रव्य है।

३. स्थितिकारणत्व :ह्न इस गुण से अधर्म द्रव्य लक्षित होता है। गतिमान पदार्थों ह्न जीवों और पुद्‌गलों को अपने कारण से स्थिर होने में अधर्म द्रव्य निमित्त है।

४. वर्तनायतनत्व :ह्न इस गुण से कालाणु लक्षित होता है। वह अन्य पदार्थों के वर्तन में आयतन - स्थान है; इससे कालद्रव्य निश्चित होता है। कितने ही जीव काल को औपचारिक द्रव्य मानते हैं ह्न यह बात असत्य है।

५. रूपादिमत्व :ह्न स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से पुद्‌गल द्रव्य लक्षित होता है ह्न जैसे कि लकड़ी, पत्थर आदि। वर्णादि से जीव निश्चित नहीं होता।

६. चेतनत्व :ह्न इस गुण से जीव द्रव्य लक्षित होता है और प्रत्येक के चेतनत्व से प्रत्येक चेतन द्रव्य पृथक्-पृथक् लक्षित होता है।

इस प्रकार सामान्य और विशेष गुणों द्वारा द्रव्य लक्षित होता है।

७ पर्याय :ह्न आयत विशेष अर्थात् लम्बाई, एक के पश्चात् एक होनेवाली अवस्थाएँ। १३ गाथा की टीका में कहे अनुसार ये चार प्रकार की हैं :ह्न

१. समानजातीय द्रव्यपर्याय।

२. असमानजातीय द्रव्यपर्याय।

३. स्वभाव गुणपर्याय ।

४. विभाव गुणपर्याय।

इन प्रत्येक पर्याय से वे-वे द्रव्य लक्षित होते हैं।

१. समानजातीय द्रव्यपर्याय :ह्न दो अथवा दो से अधिक परमाणु समान हैं ह्न ऐसा कहते ही वे एकमेक सिद्ध नहीं होते। परमाणुओं को समान जाति अपेक्षा जाना है, किन्तु उन्हें एकरूप नहीं जाना है; इसीलिये इस पर्याय से परमाणु से परमाणु पृथक्-पृथक् द्रव्य है ह्न ऐसा लक्षित होता है।

२. असमानजातीय द्रव्यपर्याय :ह्न कहने पर आत्मा और शरीर असमान हैं अर्थात् दोनों पृथक हैं ह्न ऐसा लक्षित होता है।

३. स्वभावगुणपर्याय :ह्न अपने-अपने अगुरुलघुत्व गुण की पर्याय से प्रत्येक द्रव्य जानने में आता है।

४. विभावगुणपर्याय :ह्न मतिज्ञानादि की पर्याय से आत्मा लक्षित होता है और काली, सफेद आदि विभाव पर्याय से पुद्‌गल लक्षित होता है। राग से जीव पहिचाना जाता है। राग लक्षण और जीव लक्ष्य ह्न ऐसा यहाँ कहना है। जीव की व्यंजनपर्याय से जीव पहिचाना जाता है और पुद्‌गल की व्यंजनपर्याय से पुद्‌गल पहिचाना जा सकता है।

प्रत्येक द्रव्य लक्ष्य है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव लक्षण है।

प्रत्येक द्रव्य लक्ष्य है और गुण-पर्याय लक्षण है। सभी द्रव्य अपने अस्तित्व स्वभाव के साथ सम्बन्ध रखते हैं।

जड़ की क्रिया से जड़ पहिचाना जाता है और भक्ति के भाव से आत्मा पहिचाना जाता है ह्न ऐसा भेद करने पर राग का ज्ञान होता है। हिंसा के भाव हुए तो स्वयं विचार करे कि हिंसा के भाव किसके हैं? हिंसारूप अपनी विभाव पर्याय अपने द्रव्य-गुण के आश्रय (आधार) से होती है, किन्तु पर मेरे ऊपर द्वेष अथवा गुस्सा करता है, इसीलिये नहीं; इसप्रकार जानने पर हिंसा की मंदता होती है ह्न द्रव्य-गुण को जानता है, स्वज्ञेय को परज्ञेय से पृथक् करता है, अपना द्रव्य-गुण तो शुद्ध है ह्न ऐसा ज्ञान करने पर राग का स्वामी नहीं होता, अपितु राग का ज्ञाता रहता है, इससे धर्म होता है।

राग होने पर राग किसका? जीव का।

जीव कैसा? त्रिकाली शुद्ध।

गुण कैसे? त्रिकाली शुद्ध।

इसप्रकार स्वज्ञेय का ज्ञान करने पर ज्ञान बढ़ता है और राग की पर्याय का नाश होता है।

जिस तरह मलिन-अवस्था वाला वस्त्र धोने पर निर्मल अवस्थारूप से उत्पन्न होने पर उस उत्पाद से लक्षित होता है। उज्ज्वलपने के उत्पाद से

वस्त्र का निर्णय होता है, किन्तु उजलेपन द्वारा साबुन, पत्थर, लकड़ी अथवा हाथ का निर्णय नहीं होता। वस्त्र अपने अस्तित्व स्वभाव को छोड़े बिना उज्ज्वल हुआ है।

प्रश्न :ह्न धोए बिना कोई वस्त्र पड़े-पड़े तो उज्ज्वल (साफ) नहीं हो जाता?

उत्तर :ह्न प्रत्येक वस्त्र स्वयं अपने से ही उज्ज्वल होता है; क्योंकि उज्ज्वलत्व के उत्पाद के साथ वस्त्र का स्वरूपभेद नहीं है। वस्त्र स्वयं ही उस रूप ह्न उज्ज्वलरूप से परिणमा है।

इस दृष्टांत के समान ही जिसने पूर्व अवस्था को प्राप्त किया है ह्न ऐसा द्रव्य भी उचित बहिरंग साधनों की उपस्थिति में अनेक प्रकार की ह्न अनेकों अवस्थाएँ करता है। प्रत्येक द्रव्य की नई-नई अवस्थाएँ स्वयं के कारण होती हैं और द्रव्य उसरूप परिणमित होता है, तब उस उस प्रकार के उचित निमित्त की उपस्थिति मात्र होती है।

जब अनेक प्रकार की अवस्था होती है, तब उचित निमित्त की उपस्थिति होती है। स्वयं अध्यात्म शास्त्र के स्वाध्याय का शुभभाव करे, तब समयसारादि अध्यात्म शास्त्र उचित निमित्त होते हैं, किन्तु कथानुयोग के पद्‌मपुराणादि उस समय निमित्त नहीं होते।

यहाँ तो जो जो उत्पाद होता है, उस उत्पाद से वह द्रव्य लक्षित होता है ह्न ऐसा कहना है। एक समय के उत्पाद से, एक समय के व्यय से, एक समय के ध्रुव से द्रव्य सिद्ध करना है। यहाँ अनादि के विकार से अथवा व्यय से अथवा त्रिकाली ध्रुव से द्रव्य को सिद्ध नहीं करना है, अपितु एक-एक वर्तमान पर्याय स्वतंत्र सिद्ध करना है और उससे द्रव्य लक्षित करना है।

तत्त्वार्थसूत्र में ह्न उपयोगरूप पर्याय से जीव को लक्षित किया है। द्रव्यानुयोग में त्रिकाली एकरूप रहनेवाले उपयोग से जीव को लक्षित किया है। प्रवचनसार में अस्तित्व स्वभाव से और उत्पाद-व्यय-ध्रुव; गुण-पर्याय ये तथा छह पृथक्-पृथक् लक्षणों को कहकर एक-एक लक्षण में जीव को लक्षित करते हैं। इसलिए जहाँ जैसा है, वैसा

समझना चाहिए।

जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है ह्न ऐसा द्रव्य भी कि जो उचित बहिरंग साधनों की निकटता के सद्‌भाव में अनेक प्रकार की बहुत-सी अवस्थाएँ करता है, वह अंतरंग साधनभूत स्वरूप कर्त्ता के और स्वरूप करण के सामर्थ्यरूप स्वभाव द्वारा होता है।

पूर्व अवस्था को प्राप्त किया था, उसका व्यय करके प्रत्येक द्रव्य उत्तर (नई) अवस्था को समय-समय प्राप्त किया करता है। किसप्रकार?

वर्तमान समय में अंतरंग साधनभूत स्वरूप कर्त्ता के और स्वरूपकरण के सामर्थ्यरूप (योग्यतारूप) स्वभाव द्वारा नई-नई अवस्था प्राप्त किया करता है। प्रत्येक आत्मा का ऐसा अभेद स्वभाव और पर से पृथक्त्व का स्वभाव होने से उसे कोई राग, निमित्तादि की राह देखकर अटकना नहीं पड़ता ह्न ऐसा त्रिकाल नियम है; उचित निमित्त भले हो, वह भी उसके कारण उसकी योग्यतारूप स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरण की सामर्थ्य द्वारा उसकी पूर्व अवस्था को पलटाकर नई अवस्था को प्राप्त करता है और वह अवस्था अपने द्रव्य से अभेद होने से (पृथक् नहीं होने से) उस द्रव्य का ज्ञान कराती है, किन्तु उसने दूसरे द्रव्य में कुछ किया है ह्न ऐसा सम्बन्ध वह नहीं बताती। ऐसा अनेकांत स्वभाव प्रत्येक वस्तु का है।

परमाणु लाल अवस्था को बदलकर हरी अवस्थारूप हुआ अथवा उसमें क्षेत्रांतर आदि दूसरी अवस्था हुई, वह उसके स्वतंत्र स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरण की सामर्थ्यरूप स्वभाव से हुई है। यहाँ त्रिकाली की बात नहीं, अपितु वर्तमान एक समय की स्वतंत्र पर्याय की बात है। जो पर्याय उत्पादरूप है; वह उसके द्रव्य को बताती है, किन्तु किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं बताती।

सम्पूर्ण द्रव्य में अनंत गुण तथा उनकी तीनों काल की ह्न विकारी अथवा अविकारी सभी पर्यायें आ जाती हैं।

प्रत्येक द्रव्य में तथा उनके अनंत गुणों में उनकी स्वयं की योग्यता द्वारा पूर्व अवस्था का पलटना और नई अवस्था का होना होता है; उसमें

स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरणरूप स्वभाव, उसके साथ सम्बन्ध रखकर अभेद है और अन्य से त्रिकाल पृथक्त्व है ह्न ऐसा प्रत्येक द्रव्य का स्वरूप है, इसीलिये उसके कार्य में किसी दूसरे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सामर्थ्य नहीं है। दूसरे को प्राप्त होना, दूसरे के उत्पाद-व्यय को प्राप्त करना व कराने की सामर्थ्य कोई द्रव्य धारण नहीं करता, अपितु प्रत्येक उत्पादरूप अंश स्वयं अपने आधारभूत अंशी को बताता है अर्थात् स्वद्रव्य को स्व से अभिन्न और पर से भिन्नरूप बताता है ह्न ऐसा अनेकांत है और यह वस्तु की स्वतंत्रता को जीवित रखता है।

पर्यायमात्र को देखनेवाले ह्न पर्यायमूढ़ की बात पहले कही थी। अब यहाँ आत्मा आदि सर्व पदार्थ का द्रव्य-गुण-पर्याय से अभेद स्वरूप तथा कर्त्ता-करणरूप स्वतंत्रपना बताते हैं। राग का अंश भी चेतन द्रव्य की स्वतंत्र सत्ता बताता है; क्योंकि वर्तमान अंश द्वारा त्रिकाली अंशी द्रव्य लक्षित होता है।

रागादि अथवा ज्ञानादि अवस्था द्वारा आत्मा जानने में आता है; किन्तु इससे किसी में कुछ फेरफार होता है ह्न ऐसा जानने में नहीं आता। वर्तमान पर्याय का सम्बन्ध त्रिकाली द्रव्य-गुण के साथ है और वह पर से भेद अर्थात् पृथक्ता को बताता है। ऐसी अनेकांत दृष्टि होने पर पर्यायबुद्धि की मूढ़ता दूर होकर स्वतंत्र स्वभाव में एकताबुद्धि होती है और इसके बल पर राग रहित निर्मलता उत्पन्न होती है।

राग को देखने पर संयोग लक्ष्य में आते हैं ह्न ऐसा यहाँ नहीं कहना है, अपितु यहाँ यह बताना है कि ह्न जो राग का अंश है, वह जीव ने पूर्व अवस्था को पलटकर उत्तर (नई) अवस्था धारण की है। स्वतंत्र द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने पर किसी भी परपदार्थ के साथ कर्त्ता-करण का सम्बन्ध भाषित नहीं होता।

अस्तित्व अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव, गुण-पर्याय ह्न इन सभी द्वारा वे द्रव्य जानने में आते हैं, किन्तु पर के साथ सम्बन्ध जानने में नहीं आता। राग को जानते ही (विचार आता है कि-) यह राग कहाँ से

आया? तो कहा कि वीतरागता का विरोध करके राग हुआ है। जो नया-नया होता है, वह अंश तो पलटनेवाला है; किन्तु उसके द्वारा नहीं पलटनेवाला ऐसा नित्य अंशी आत्मपदार्थ है। ऐसा जाना जा सकता है।

नजर आत्मा की है। नजर करनेवाले ज्ञान का आधार जो आत्मा है, उसे ही मुख्य रखकर प्रशम के लक्ष्य से ज्ञेयों को जानने पर प्रत्येक द्रव्य उनके गुण-पर्याय द्वारा लक्षित होता है ह्न ऐसा जानने में आता है।

वस्तु के वर्तमान उत्पाद के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वस्तु स्वरूप ही ऐसा है।

द्रव्य की वर्तमान योग्यता से जो कोई उत्पादरूप अवस्था होती है, वह निमित्त अथवा पूर्व पर्याय के होने से नहीं होती; अपितु स्वतंत्र अहेतुक स्वभाव सामर्थ्य से होती है।

अनेकान्त जिनशासन है और केवलज्ञान का बीज है।

१. जो वर्तमान पर्याय होती है, वह पूर्व पर्याय के अभाव से ही होती है; किन्तु उसके सद्भाव से नहीं, यह अस्ति-नास्तिरूप अनेकांत है।

२. पर्याय किसी निमित्त से नहीं हुई है, अपितु स्व से हुई है ह्न ऐसा अस्ति-नास्तिरूप अनेकांत है।

३. द्रव्य का उत्पाद-व्यय उसके स्वरूप से अभेद है, पृथक् नहीं ह्न ऐसा अनेकांत है।

४. ये उत्पाद अंश अपने गुण तथा द्रव्य को बताते हैं, किन्तु अन्य को नहीं बताते।

राग, पुण्य, देवादि तथा देहादि निमित्त द्वारा वीतराग नहीं हुआ जाता। ये हैं तो आत्मा है ह्न ऐसा नहीं है। ज्ञान आत्मा के आधार से है ह्न ऐसा जानकर पूर्ण वीतरागता के लक्ष्य से स्व-पर ज्ञेयों को जानने से गुण-पर्याय द्वारा वही द्रव्य जानने में आता है और इसमें राग की उत्पत्ति नहीं होने पर निर्मलता ही उत्पन्न होती है। इसप्रकार यहाँ ज्ञान प्रधान कथन है।

अहो! पर्याय प्रत्येक समय स्वतंत्रता से पलटती है ह्न ऐसा जानने से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पकड़ में नहीं आता, क्योंकि निमित्त तथा पूर्व

पर्याय के अभाव से नई-नई उत्पाद पर्याय उनके स्वरूपकर्त्ता के कारण की सामर्थ्य से उत्पन्न हुई है, जो द्रव्य को बताती है। इसमें किसी की अधीनता का प्रश्न ही नहीं है। इस समय यह पर्याय थी, किन्तु दूसरे समय में ऐसी पर्याय क्यों हुई? ऐसे विकल्प का इसमें अवकाश नहीं होता; क्योंकि स्वरूप से ही ऐसा है, यह किसी दूसरे के आधार से नहीं है ह्न ऐसा मानने का नाम सम्यक्त्व है।

प्रश्न :ह्न जीवित मनुष्य की तो अंगुली चलती है, किन्तु मुर्दे की अंगुली क्यों नहीं चलती?

उत्तर :ह्न प्रत्येक समय का परिणमन स्वतंत्र है, स्वरूप से ही ऐसा है। कोई कहता है कि द्रव्य में सामर्थ्य-योग्यता है, किन्तु जैसा निमित्त आता है; वैसा कार्य होता है, सो उसकी यह बात मिथ्या (असत्य) है; क्योंकि पूर्व अवस्था का व्यय और नई का उत्पाद उसके कर्त्ता-करण की सामर्थ्य के साथ ही सम्बन्ध रखते हैं; ऐसा ही ज्ञेय है और ऐसा जानने का ज्ञान का स्वभाव है।

प्रश्न :ह्न यदि निमित्त न हो तो उसकी राह देखनी पड़ेगी न?

उत्तर :ह्न तत् समय की योग्यता, वह उस समय का कर्त्ता-करण-अंतरंग (साधन) है और दूसरे समय में दूसरा नया अंतरंग साधन है। निमित्त तो उसके अपने कारण से उसके अंतरंग साधन से परिणमन कर रहा है। कार्य हो तो निमित्त कहलाए। सभी अपने-अपने कारण से हैं। इसीलिये किसी को किसी की राह नहीं देखनी पड़ती। निरंतर, समय-समय, क्रमबद्ध, नियमित, वर्तमान, अवस्था, स्वरूप कर्त्ता-करण द्वारा द्रव्य को ही बताते हैं और वस्तु-स्वरूप ही ऐसा है, जो अन्य तरह का नहीं हो सकता, यही त्रिकाली नियम है।

रागादि किसी भी अंश को जानने पर स्वलक्ष्य से सम्पूर्ण द्रव्य जाने तो ज्ञेय जाननेवाला कहलाए और राग बहुत मंद हो जाये, किन्तु पर्यायमूढ़ संयोग को देखता है; इसीलिये संयोग से लाभ नुकसान होता है ह्न ऐसा मानता है, इसलिए उसे तीव्र राग ही होता है।

वर्तमान अंश से अंशी द्रव्य जानने में आता है ह्न ऐसा ज्ञान, वह स्व-पर को जाननेवाला है।

प्रत्येक समय नया-नया अंतरंग साधन है, पूर्व पर्याय साधन नहीं है; क्योंकि इस समय जो केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसका कर्त्ता-करणरूप अंतरंग साधन पूर्व समय के केवलज्ञान द्वारा रहेगा ह्न ऐसा नहीं है, अपितु प्रत्येक समय नया-नया कर्त्ता-करण साधन है। इसीतरह क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट हुआ, वह पूर्व की पर्याय के कारण नहीं, अपितु उस समय के अंतरंग कर्त्ता-करण सामर्थ्य द्वारा है और वह द्रव्य से अभेद सम्बन्ध बताता है, किन्तु वह पराश्रित नहीं है, पूर्व पर्याय के भी आधीन नहीं है, अपितु स्व से अभेद है, पृथक् नहीं; स्वरूप से ही ऐसा है।

क्षायिक भाव हुआ, वह उसके कारण सादि-अनंत काल टिकेगा ह्न यह स्थूल ऋजुसूत्रनय का कथन है और समय-समय उसके अंतरंग कर्त्ता-करण रूप सामर्थ्य से टिकेगा ह्न यह सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का कथन है।

प्रत्येक आत्मा और परमाणु स्वरूप कर्त्ता-करणरूप अंतरंग साधन द्वारा अनुग्रहीत होने पर नई-नई अवस्था के उत्पाद द्वारा लक्षित होते हैं, इसलिये उनसे स्वरूप भेद नहीं है। वर्तमान पर्याय का उत्पाद, द्रव्य को बताता है कि यह पर्याय इस द्रव्य की है।

प्रश्न :ह्न आत्मा में जो सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, उसका कारण कौन अथवा उससे कौन लक्षित हुआ?

उत्तर :ह्न उस पर्याय से अभेदरूप से परिणमित हुआ आत्मा ही पहिचाना गया है और स्वरूप कर्त्ता-करण उस समय की पर्याय का अंतरंग साधन हुआ, किन्तु कोई निमित्त था अर्थात् कर्म मंद हुए थे, गुरु की वाणी थी, शुभराग था, पूर्व पर्याय थी; इसीलिये अंतरंग साधन हुआ हो ह्न ऐसा नहीं है; यह नियम है। इससे अन्य तरह से नहीं ह्न ऐसा अनेकांत है।

सम्यग्दर्शन की पर्याय का आश्रय-सम्बन्ध अकेले आत्मा के साथ है। वर्तमान पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर हुआ, यह पुरुषार्थ है, किन्तु बाह्य

क्रिया करना अथवा शुभराग करना, वह पुरुषार्थ नहीं है।

निर्मल अवस्था उत्पन्न होना आत्मा की सत्ता को बताता है, किन्तु देव-गुरु-शास्त्र थे, इसीलिये निर्मलता हुई ह्न ऐसा पर के साथ सम्बन्ध नहीं बताता। वर्तमान एक-एक समय की अवस्था, वह उस समय की उसकी स्वतंत्र योग्यता से होती है, किन्तु किसी अन्य से नहीं और पूर्व की पर्याय के संस्कार से भी नहीं होती।

क्षायिक सम्यग्दर्शन था अथवा शुक्लध्यान था, इसीलिये केवलज्ञान प्रगट हुआ ह्न ऐसा नहीं है। इस व्ययरूप पर्याय से तो द्रव्य लक्षित होता है, किन्तु वर्तमान पर्याय नहीं। केवलज्ञान पर्याय उस समय की योग्यतारूप सामर्थ्य से वर्तती है, किन्तु पहले अथवा बाद के समय से नहीं और निमित्त से भी नहीं ह्न ऐसा वस्तु का स्वभाव है। जब तक ऐसा स्वभाव लक्ष्य में न लें, तब तक धर्म नहीं होता।

प्रश्न :ह्न वीतराग चारित्र करोड़ वर्षों तक पाला, इसीलिये असंख्य समय में केवलज्ञान होगा?

उत्तर :ह्न नहीं। अपितु अपनी वर्तमान योग्यतारूप अंतरंग स्वरूप कर्त्ता-करण की सामर्थ्य से केवलज्ञान पर्याय होती है और वह जीवद्रव्य को बताती है तथा उसका कारण द्रव्य अथवा गुण को कहोगे तो वे पहले से ही थे, तो वह पर्याय क्यों नहीं प्रगट हुई? इसीलिये स्वतंत्र अंतरंग कर्त्ता-करणरूप सामर्थ्य से वह पर्याय प्रगट हुई है। वह पर्याय अपने द्रव्य-गुण को ही बताती है, यह बात सही है; किन्तु उससे उत्पन्न हुई है ह्न ऐसा नहीं है।

वर्तमान पर्याय की सत्ता स्वतंत्र है, इसमें पूर्व पर्याय भी कारण नहीं है, उपचार से उसे कारण कहा जाता है। जिस पर्याय की योग्यता वर्तमान में वर्तती है, वह पूर्व समय में नहीं थी। इसीलिये क्षणिक उपादान उसके उस समय के वर्तमान स्वतंत्र सामर्थ्य (योग्यता) को बताता है ह्न यह निश्चय है और उसका द्रव्य से सम्बन्ध है ह्न ऐसा कहना व्यवहार है।

सम्यक्त्व की पर्याय के कारण चारित्र की पर्याय नहीं होती। अंगुली

के आधार से लकड़ी नहीं चलती, किन्तु अपनी उस समय की वर्तमान योग्यता के कारण चलती है और वह अपने द्रव्य को बताती है।

पूर्व की अवस्था के व्यय के कारण नई पर्याय का उत्पाद नहीं हुआ है; यह अवस्था द्रव्य को बताती है। तथा व्यय का ज्ञान उत्पाद का कारण नहीं; व्यय को जानने पर वह अंश उससे अभेद ह्न ऐसे द्रव्य का ज्ञान कराता है। उत्पाद-व्यय रूप द्रव्य परिणमित होता है, किन्तु यहाँ तो प्रत्येक समयवर्ती पर्याय स्वतंत्र है ह्न ऐसा बताना है।

केवलज्ञान पर्याय अथवा सिद्ध अवस्था प्रगट हुई, उसके आधार से दूसरे समय का केवलज्ञान अथवा सिद्ध दशा टिकी रहेगी ह्न ऐसा नहीं है; किन्तु वह उस समय के वर्तमान अंतरंग साधनभूत स्वरूप कर्त्ता-करण की सामर्थ्य से ही टिकी रहेगी। ऐसा समझे तो उसका लक्ष्य स्वद्रव्य पर चला जाये और अनंत पुरुषार्थ की श्रद्धा-ज्ञान पूर्वक समता आये।

वर्तमान पुरुषार्थ से द्रव्य का लक्ष्य किया तो उसका सम्बन्ध स्वद्रव्य के साथ है, किन्तु आगे-पीछे की पर्याय के साथ नहीं; किसी निमित्त अथवा किसी काल के साथ भी नहीं। इसप्रकार स्वतंत्र सत् को स्वीकार करे, अंतर से हाँ करे तो शांति हो। 'वर्ते अंतर शोध जो' अंतर में जो पर्याय वर्ती, उसने द्रव्य को बताया है, अन्य को नहीं ह्न ऐसी स्वतंत्रता प्रत्येक जीव-अजीव की है।

अब व्यय की बात चलती है :ह्न जैसे निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता तथा मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता वस्त्र व्यय द्वारा लक्षित होता है; परन्तु व्यय के साथ उसका स्वरूप भेद नहीं है, अपितु वह स्वरूप से ही ऐसा है। इसप्रकार व्यय अंश, अंशीद्रव्य को बताता है; किन्तु अन्य को नहीं।

जैसे ह्न सम्यग्दर्शन अपनी पर्याय से उत्पन्न होता हुआ मिथ्यात्व के व्यय द्वारा जीव द्रव्य को बताता है। मिथ्यात्व, रागादि का अभाव हुआ तो यह परिणाम द्रव्य का हुआ है ह्न यह बताता है। यहाँ प्रवचनसार में ज्ञानप्रधान कथन है; इसीलिये निर्मल अथवा मलिन उत्पाद-व्यय स्वज्ञेय

में बताना है और समयसार में दृष्टिप्रधान कथन होने से रागादि और क्षयोपशम भाव आदि परज्ञेय में जाते हैं। दर्शनमोह कर्म की अवस्था का नाश हुआ, वह उसके पुद्गल द्रव्य को बताता है; किन्तु उसके द्वारा जीव को सम्यक्त्व हुआ ह्न ऐसा वह नहीं बताता।

प्रश्न :ह्न उनमें अविनाभावी सम्बन्ध तो है न?

उत्तर :ह्न सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो दर्शनमोहकर्म के अभाव को उपचार से कारण कहा जाता है, किन्तु यहाँ एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय की स्वतंत्रता में पूर्व पर्याय भी कारण नहीं है तो फिर पर के सम्बन्ध का तो अवकाश ही कहाँ है? वास्तव में वर्तमान पर्याय का द्रव्य के साथ सम्बन्ध है; किन्तु यह भी व्यवहार है। ऐसी सूक्ष्म बात स्पष्टतया समझे बिना सत् की महिमा नहीं आती और असत् का आदर नहीं छूटता।

प्रश्न :ह्न चार घातिकर्म के व्यय द्वारा तो केवलज्ञान हुआ न?

उत्तर :ह्न सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो दर्शनमोहकर्म के अभाव को उपचार से कारण कहा जाता है, किन्तु यहाँ एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय की स्वतंत्रता में पूर्व पर्याय भी कारण नहीं है तो फिर पर के सम्बन्ध का तो अवकाश ही कहाँ है? वास्तव में वर्तमान पर्याय का द्रव्य के साथ सम्बन्ध है; किन्तु यह भी व्यवहार है। ऐसी सूक्ष्म बात स्पष्टतया समझे बिना सत् की महिमा नहीं आती और असत् का आदर नहीं छूटता।

प्रश्न :ह्न चार घातिकर्म के व्यय द्वारा तो केवलज्ञान हुआ न?

उत्तर :ह्न नहीं। क्योंकि चार घातिकर्म का व्यय तो उसके पुद्गल द्रव्य को बताता है, किन्तु जीव को नहीं और जो केवलज्ञान हुआ, वह जीव को बताता है।

प्रश्न :ह्न कर्म का सर्वथा नाश (व्यय) होने के पहले आत्मा में पूर्ण निर्मलता क्यों नहीं प्रगट हुई?

उत्तर :ह्न कर्म की उस समय की पर्याय की वर्तमान सामर्थ्य उसकी पूर्व पर्याय को नहीं बताती। वह तो मात्र उसके द्रव्य को बताती है, किन्तु अन्य के सम्बन्ध को नहीं बताती और उस समय जीव की अवस्था भी उस समय के स्वरूप कर्त्ता-करण की स्वतंत्र सामर्थ्य स्वभाव द्वारा जीवद्रव्य

के साथ सम्बन्ध को ही बताती है, किन्तु अन्य के साथ नहीं। ऐसी समय-समय की स्वतंत्र पर्याय का स्वीकार ही वर्तमान पर्याय जो कि सत्‌रूप है, उसकी स्वतंत्रता को बताती है। व्यय, उत्पाद को नहीं बताता, अपितु द्रव्य को ही बताता है।

आत्मा में राग का नाश हुआ, वह जड़कर्म के नाश को नहीं बताता और जो मिथ्याश्रद्धा का नाश हुआ, वह मिथ्यात्वकर्म के नाश को नहीं बताता; अपितु वह उस समय की योग्यता द्वारा उत्पाद-व्ययरूप पर्याय अपने द्रव्य के साथ सम्बन्ध बताती है।

यहाँ ज्ञानप्रधान कथन में द्रव्य के सभी का परिणमन बताना है; इसीलिये मिथ्यात्व-रागादि का त्याग वह भी स्व पर्याय है, स्वज्ञेय है, द्रव्य इस रूप परिणमा है ह्न ऐसा कहकर अंश-अंशी पृथक् नहीं, अपितु पर से पृथक्त्व है ह्न ऐसा यहाँ बताना है और द्रव्य द्वारा लक्षित होता है, यह कहना है। वहाँ समयसार में तो कहा कि राग का त्याग भी नाममात्र है, रागरूप होने की योग्यता ही जीव में नहीं है ह्न ऐसा दर्शनप्रधान कथन आता है; इसीलिये जहाँ जैसा हो, वहाँ वैसा यथार्थरूप से समझना चाहिए। जो ज्ञान की तीक्ष्णता से वस्तुस्वभाव की सूक्ष्मता समझे, उसकी महिमा है।

उदयभाव, शुभराग अथवा व्यवहार से क्षयोपशम भाव नहीं होता और क्षयोपशम भाव से क्षायिक भाव नहीं होता; क्षायिक की एक समय की पर्याय से भी दूसरे समय की पर्याय नहीं होती, अपितु उस समय की पर्याय की सामर्थ्य से वह पर्याय नई-नई हुआ करती है और यह जीवद्रव्य के साथ सम्बन्ध को बताती है। क्षयोपशम पर्याय का व्यय वह क्षायिकरूप उत्पाद पर्याय को नहीं बताता, अपितु द्रव्य को बताता है।

शुक्ल ध्यान से केवलज्ञान हुआ, यह व्यवहार कथन है; निश्चय से तो उस समय की सामर्थ्य से केवलज्ञान हुआ है ह्न वस्तु ऐसी ही है; ज्ञान में भी ऐसा ही आया है और वाणी/ज्ञानी की वाणी में भी इसी प्रकार का कथन आया है। प्रत्येक समय की पर्याय उसके स्वतंत्र अंतरंग स्वरूप

कर्त्ता-करण की सामर्थ्य द्वारा उत्पाद-व्ययरूप होती है और वह उसके द्रव्य को ही बताती है। जो ऐसा मानता है, वह द्रव्य में एकताबुद्धि करता ही है और उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

सब्जी सुधारी, वह व्यय उसके परमाणु को बताता है, किन्तु चाकू को नहीं बताता और इसप्रकार की जो जीव की इच्छा पलटी, वह जीव द्रव्य को बताती है, किन्तु किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध बतावे ह्न ऐसी सामर्थ्य किसी उत्पाद-व्यय की नहीं है। इसप्रकार द्रव्य-पर्याय की एकता और स्वतंत्रता होने पर भी इसे भूलकर, मैंने इसका किया अथवा कराया, इनसे सुधरा अथवा बिगड़ा, चौड़ा हुआ अथवा मोटा हुआ ह्न आदि सभी मान्यता में भ्रम है। जिस-जिस प्रकार की जिसने इच्छा की, वह उसके द्रव्य से सम्बन्ध (एकता) बताती है, किन्तु बाहर में कुछ किया अथवा कराया हो, ऐसा वह विकल्प नहीं बताता। अभेद सत्ता के बिना कर्त्ता-कर्म नहीं हो सकता। बाह्य में धर्म की प्रभावना, दवा, हॉस्पिटल, बाल-मन्दिर आदि कार्यों को कौन करे? अभी द्रव्यों की पर्यायों का फेर-फार उसके द्रव्य के साथ ही सम्बन्ध बताता है, अन्य के साथ नहीं; क्योंकि उत्पाद-व्यय के साथ द्रव्य का स्वरूप भेद नहीं है, पर से तो पृथक्त्व है। समय-समय की पर्याय में जो स्वतंत्र उत्पाद-व्यय होता है। वह उसके, द्रव्य को बताता है, किन्तु अन्य को नहीं; इसप्रकार द्रव्य के ऊपर दृष्टि देने पर वीतरागी श्रद्धा होती है।

क्षायिक सम्यक्त्व की पर्याय चारित्र की पर्याय को प्रगट करे ह्न यह मिथ्या एकांतवाद है; क्योंकि वह द्रव्य-गुण में से होती है, किन्तु यह पर्याय अन्य गुण में से अथवा पूर्व पर्याय से अथवा निमित्त या राग से नहीं होती, अपितु वह उस समय की स्वतंत्र सामर्थ्य से होती है ह्न ऐसा अनेकांत स्वरूप जाने तो वीतरागी श्रद्धा और ज्ञान हो और पश्चात् वह जीव ही वीतराग चारित्ररूप परिणमित होता हुआ सिद्ध पर्याय को प्राप्त होता है ह्न इसप्रकार उस पर्याय से द्रव्य लक्षित होता है ह्न पहिचाना जाता है।

जब जीव क्षेत्रांतर ह्न गतिरूप परिणमित होता है, तब वह परिणाम जीव द्रव्य को बताता है, किन्तु धर्मास्तिकाय को नहीं बताता। जब स्व को जाननेवाला सम्यग्ज्ञान हुआ, तब वह पर को जानने की सामर्थ्यवाला होता है, किन्तु खगोल-भूगोल को जानने से ज्ञान नहीं होता। ज्ञान और सुखादि आत्मा के आधार से होने से आत्मा उसरूप होता है। निमित्त या राग है अथवा पूर्व पर्याय आई थी; इसीलिये वर्तमान में ज्ञान, सुखादि परिणाम होता है ह्न ऐसा नहीं है। ऐसे स्वतंत्र स्वभाव की घोषणा, ऐसा समय-समय का ज्ञेय स्वतंत्र है ह्न ऐसा जानना सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन का कारण है।

प्रत्येक द्रव्य टिकती ऐसी द्रव्यत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य द्वारा लक्षित होता है। प्रत्येक आत्मा, परमाणु आदि द्रव्यों में अपने-अपने वर्तमान कर्त्ता-करणरूप सामर्थ्य द्वारा नई-नई पर्याय होती है और उनसे उनका द्रव्य एकरूप हुआ है ह्न ऐसा जानने में आता है; किन्तु अन्य द्रव्य के साथ थोड़ा भी सम्बन्ध हुआ हो, यह जानने में नहीं आता ह्न यही त्रिकाली नियम है।

अज्ञानी का लक्ष्य संयोग-वियोग की बाह्यक्रिया के ऊपर जाता है अथवा कर्म के ऊपर जाता है। आहार नहीं आया; इसीलिये राग छूटा, वस्त्र, पैसे आदि छूटे; इसीलिये राग छूटा ह्न इसप्रकार पर घटा तो राग घटा ह्न यह मान्यता मिथ्या है। जिस अवस्था का व्यय हुआ, वह उसके द्रव्य को बताती है; किन्तु अन्य की सत्ता को नहीं बताती।

राग के घटने की पर्याय जीवद्रव्य को बताती है, यदि अरागी आत्मा को लक्ष्य में ले तो ही वास्तव में राग घटा कहलाए, किन्तु राग के होने अथवा नहीं होने का कारण पर को मानना भ्रम है।

पर वस्तु पेट में नहीं आई, इसीलिये जीव को उपवासरूप परिणाम हुए ह्न ऐसा मानना तो परद्रव्य की पर्याय से किसी अन्य पर्यायवान को देखना हुआ। घर छोड़कर जंगल में गया, इसीलिये शांति हुई ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है, किन्तु कोई आत्मा स्वद्रव्य-गुण-पर्याय को छोड़कर

बाहर जाता ही नहीं। संयोग से लाभ-नुकसान की दृष्टिवाला स्वतंत्र स्वद्रव्य को भूलकर पर को ही देखा करता है।

वस्त्र का उज्ज्वल होना और मलिन अवस्था का व्यय होना वस्त्र को बताता है, किन्तु वस्त्र को भूलकर धोबी को देखे ह्न यह अज्ञानी की संयोग दृष्टि है। सामायिक शरीर से नहीं होती। परिणाम को देखने जाये तो नित्य ज्ञाता-दृष्टा ध्रुवसत्तावाले परिणामी का ज्ञान करना चाहिए। उसमें राग का अंशमात्र भी नहीं, राग का घटानेवाला सम्पूर्ण राग रहित है। पूर्ण ज्ञानानन्द में श्रद्धापूर्वक जितनी स्थिरता हुई, उतनी सामायिक है और वहाँ राग की उत्पत्ति ही नहीं होती।

प्रत्येक समय प्रत्येक वस्तु उसके स्वभाव से ही टिकी है, किसी के आधार से नहीं टिकी है। पुस्तक अपने ही आधार से टिकी है, किन्तु लकड़ी की चौकी के आधार से नहीं; क्योंकि पुस्तक का ध्रुवत्व पुस्तक को बताता है, अन्य को नहीं; इसीतरह आत्मा का ध्रुवत्व, शरीर के कारण नहीं है, अपितु वह स्वयं से ही टिक रहा है और रजकण, रजकण के ध्रुवत्व से टिक रहे हैं, किन्तु उनके टिके रहने के लिए किसी संयोग का आधार नहीं है।

जगत संयोग को देखता है, किन्तु संयोग वस्तुस्वभाव नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपरित्यक्त स्वभावी है, इसीलिये वह अपने स्वभाव को छोड़े बिना ध्रुवत्व को धारण करके टिकती है। वस्त्र का वस्त्ररूप टिके रहने का स्वभाव वस्त्र से पृथक् नहीं है। ध्रुवत्व, वस्त्र का सत्त्व है; वैसे ही आत्मा तथा परमाणु आदि द्रव्य एक ही समय में नई-नई अवस्था से उत्पन्न होकर, पूर्ण अवस्था से व्यय को प्राप्त होकर और ध्रुव ऐसी द्रव्यत्व अवस्था से ध्रौव्य रहते हुए उनकी सत्ता द्वारा जानने में आते हैं, किन्तु उससे पृथक् जानने में नहीं आते; स्वरूप से ही ऐसा है। इससे यह निश्चित होता है कि प्रत्येक द्रव्य छोटे से छोटे समय में स्वसामर्थ्य रूप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा ही पहिचाना जाता है। जो पर्याय होती है, वह स्व सत्ता से होती है, किन्तु पर से नहीं होती। अपने से टिके रहनेवाले पदार्थ को

किसी भी समय अन्य के आधार से टिकना पड़े ह्न ऐसी पराधीनता नहीं होती। इच्छा के आधार से परपदार्थ नहीं पलटते; मैं पर का कर दूँ ह्न ऐसे अभिमानवाला अपने ज्ञातामात्र स्वभाव को नहीं देख सकता।

आत्मा का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किसी अन्य के कारण नहीं है; क्योंकि यह स्वभाव निरन्तर जीवद्रव्य की पहिचान कराता है, इसमें अन्य का अधिकार नहीं है। शरीर की क्रिया में बदलाव शरीर के रजकण को बताता है, किन्तु जीव के गुण-दोष और जीव ने क्या किया ह्न यह नहीं बताता।

तथा जैसे वही वस्त्र अपने विस्तार विशेषों (सफेदी आदि) गुणों द्वारा पहिचाना जाता है, क्योंकि वस्त्र का उसके गुणों से पृथक्त्व नहीं है ह्न स्वरूप से ही ऐसा है। शरीर में पक्षाघात आदि रोग हो जाये, बोल-चल सके नहीं, रोग मिटे नहीं; यदि शरीर आत्मा का हो तो इसे आत्मा के आधीन रहना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। इसप्रकार शरीर तो उसके गुण द्वारा पहिचाना जाता है।

लोग तो गुण-दोष को संयोग द्वारा देखना चाहते हैं, जो कि भ्रम है। जैसे दर्पण में पाँच शरीर दिखते हों, उसमें किसी के शरीर को अपना मान ले तो वह भ्रम है; वैसे ही देहादि की क्रिया से आत्मा और आत्मा के कार्य की पहिचान करे तो उसे स्वतंत्र वस्तुस्वभाव की खबर नहीं है। आत्मा और देहादि के संयोग में आत्मा के गुणों द्वारा ही आत्मा को पहिचानना चाहिए।

जड़ परमाणु का स्वामी जड़द्रव्य है, उसमें किसी अन्य का अधिकार नहीं है। प्रत्येक वस्तु उसकी मर्यादा में स्वतंत्र काम करती है। उसे किसी का आधार नहीं है ह्न इस बात का सर्वप्रथम निर्णय करना चाहिए। संयोग छूटे अथवा बाहर से निवृत्ति मिले तो वस्तु का स्वरूप समझ में आवे ह्न यह बात असत्य है। स्थूल संयोग को देखनेवाली दृष्टि बदले और वस्तु नित्य अपने से ही ध्रुव रही है ह्न ऐसा अन्तर अवलोकन से विचार करे तो प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है ह्न ऐसा दिखाई दे। परवस्तु उसके कारण ही परिणमित

होती है ह्न ऐसा ज्ञानी जानते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि मानता है कि मैं परवस्तु को छोड़ूँ तो धर्म हो ह्न इसप्रकार वह पराधीन मानता है और यही दुःख है।

प्रत्येक पदार्थ में से समय-समय अवस्थाएँ हुआ करती हैं। यही द्रव्य है, जो कि विस्तार विशेषोंरूप गुणों द्वारा पहिचाना जाता है।

मैंने दूसरे की व्यवस्था रखने का भाव किया, इसीलिये सब व्यवस्थित रहा, नहीं तो अव्यवस्थित हो जाता अथवा त्याग करके एकांत में जाऊँ तो ठीक होगा ह्न यह सब भ्रम है; क्योंकि जगत के संयोग तो तीनों ही काल रहनेवाले हैं।

प्रश्न :ह्न यदि ऐसा है तो मुनिराज परवस्तु को क्यों छोड़ते हैं?

उत्तर :ह्न आत्मा परवस्तु का ग्रहण-त्याग कर ही नहीं सकता; क्योंकि जो तेरी सत्ता से पृथक् है, वह तो छूटा हुआ ही है।

प्रश्न :ह्न तो फिर राग किस तरह घटेगा?

उत्तर :ह्न राग को मिटाना तो नास्तिपक्ष से बात है। राग को दूर करूँ, ऐसा करने में तो नई इच्छा होती है। अखण्ड ज्ञानानन्द स्वरूप अस्तित्व राग है ही नहीं, इसप्रकार ज्ञातारूप रहकर स्थिर हो तो जितनी राग की उत्पत्ति नहीं हुई, वह त्याग है, जिसका संयोग के साथ सम्बन्ध नहीं है।

यदि सुनने से ज्ञान होता हो तो सभी को एक समान ज्ञान होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता; इसलिये सभी अपनी योग्यता के अनुसार अपने से समझते हैं। जैसा समझे, वैसा निमित्त पर आरोप किया जाता है।

विकार अथवा अविकार रूप स्वयं होता है, किन्तु किसी अनुकूल अथवा प्रतिकूल संयोग के कारण विकार अथवा अविकार की अस्ति नहीं है। इसीलिये जो भाव हुए, उस भाव द्वारा वह वस्तु पहिचानी जाती है, किन्तु किसी अन्य से नहीं पहिचानी जाती।

प्रत्येक आत्मा और रजकण (पुद्गल परमाणु) उनकी वर्तमान अवस्था और त्रिकाली गुणों द्वारा ही पहिचाने जाते हैं। प्रत्येक की निरंतर प्रवाहित होनेवाली अवस्था उस समय उसके आधार से होती है, किन्तु वह किसी अन्य के आधार से हुई है ह्न ऐसा मानना बहुत बड़ा भ्रम है।

जैसे नदी में पानी बहता जाता है, उसे देखने में भार नहीं लगता तथा उससे ममता नहीं होती; किन्तु यदि घड़ा भरकर सिर पर रखे तो भार लगता है; वैसे ही जगत के पदार्थ अपनी-अपनी शक्ति द्वारा परिवर्तन को प्राप्त होकर उनकी द्रव्यसत्ता को बताते हैं, इसे जानने में कोई दुख नहीं है; इसके बदले जो उसमें कर्तापने की स्थापना करता है, वह परपदार्थों को ज्ञेय नहीं मानता; अपितु मैंने इतनों का किया-कराया है ह्न ऐसा मान कर ममता का बोझ ढोता है; किन्तु यदि वस्तुस्वरूप का विचार करे तो यह ममता घट सकती है। स्वयं ध्रुव सत्तावाला है ह्न ऐसा जाने तो किसी का बोझा नहीं लगे; त्रिकाली की रुचि करे तो विकार की अल्पता लगे और विकार की रुचि दूर होकर त्रिकाली स्वरूप में सुख भासित हो।''

प्रत्येक पदार्थ उनके गुण द्वारा पहिचाना जाता है। शरीर में रोग होने पर इसके द्वारा आत्मा नहीं, अपितु जड़ परमाणु पहिचाना जाता है।

जिस तरह वही वस्त्र एक के बाद एक होनेवाले आयत विशेषोंरूप तंतुओं द्वारा पहिचाना जाता है, उनसे उसका स्वरूपभेद नहीं है; वैसे ही आत्मा और परमाणु आदि भी उसमें से उत्पाद-व्ययरूप प्रवाहित होते आयत-विशेषोंरूप पर्यायों द्वारा पहिचाने जाते हैं, किन्तु अन्य किसी संयोग द्वारा नहीं पहिचाने जाते।

न्यायशास्त्र में परोक्ष प्रमाण में निमित्त से अनुमान करने की बात आती है कि धुँआ द्वारा अग्नि पहिचानी जाती है, यह हो तो यह होता है, संगीत से संगीतकार की परीक्षा की जा सकती है; वैसे ही यहाँ पदार्थ की स्वतंत्रता के निरूपणकर्त्ता मूल पुरुष सर्वज्ञ हैं ह्न ऐसा अनुमान कराते हैं, किन्तु पहले स्वानुभव प्रत्यक्ष स्वाश्रित स्वभाव का निश्चय करने के पश्चात् न्याय अर्थात् परीक्षा का व्यवहार तथा पर का ज्ञान सच्चा कहलाता है। स्व-ज्ञाता को जाने बिना सभी का जानना प्रमाणाभास है।

●

प्रवचनसार गाथा १६

अब, अनुक्रम से दो प्रकार का अस्तित्व कहते हैं। स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य अस्तित्व। इनमें से यह स्वरूपास्तित्व का कथन है ह्न

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं॥१६॥

(हरिगीत)

गुण-चित्रमयपर्याय से उत्पादव्ययध्रुवभाव से।
जो द्रव्य का अस्तित्व है वह एकमात्र स्वभाव है॥१६॥

अन्वयार्थ :ह्न [सर्वकालं] सर्वकाल में [गुणैः] गुण तथा [चित्रैः स्वकपर्यायैः] अनेक प्रकार की अपनी पर्यायों से [उत्पादव्ययध्रुवत्वैः] और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से [द्रव्यस्य सद्भावः] द्रव्य का जो अस्तित्व है, [हि] वह वास्तव में [स्वभावः] स्वभाव है।

टीका :ह्न अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है; और वह (अस्तित्व) अन्य साधन से [1]निरपेक्ष होने के कारण अनादि-अनन्त होने से तथा [2]अहेतुक, एकरूप [3]वृत्ति से सदा ही प्रर्वतता होने के कारण विभाव धर्म से विलक्षण होने से, भाव और [4]भाववानता के कारण अनेकत्व होने पर भी प्रदेशभेद न होने से द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ, द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो? (अवश्य होवे।) वह अस्तित्व ह्न जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त हो जाता है; उसीप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि उनकी सिद्धि परस्पर होती है, इसीलिये (अर्थात् द्रव्य-गुण और पर्याय एक-दूसरे से

१. अस्तित्व अन्य साधन की अपेक्षा से रहित ह्न स्वयंसिद्ध है, इसलिये अनादि-अनन्त है।
२. अहेतुक = अकारण, जिसका कोई कारण नहीं है ऐसी।
३. वृत्ति = वर्तन; वर्तना वह; परिणति। (अकारणिक एकरूप परिणति से सदाकाल परिणमता होने से अस्तित्व विभावधर्म से भिन्न लक्षणवाला है।)
४. अस्तित्व तो (द्रव्य का) भाव है और द्रव्य भाववान है।

परस्पर सिद्ध होते हैं; इसलिये ह्र यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते, इसलिये) उनका अस्तित्व एक ही है; – सुवर्ण की भाँति।

जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव से [1]सुवर्ण से जो पृथक् दिखाई नहीं देते; कर्त्ता-करण-अधिकरणरूप से पीतत्वादिगुणों के और कुण्डलादि पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण के अस्तित्व से जिनकी उत्पत्ति होती है ह्र ऐसे पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादि पर्यायों से जो सुवर्ण का अस्तित्व है, वह सुवर्ण का स्वभाव है; उसीप्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्त्ता-करण-[2]अधिकरणरूप से गुणों के और पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान द्रव्य के अस्तित्व से जिनकी उत्पत्ति होती है ह्र ऐसे गुणों और पर्यायों से जो द्रव्य का अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से सुवर्ण से भिन्न न दिखाई देनेवाले पीतत्वादिक और कुण्डलादिक का अस्तित्व वह सुवर्ण का ही अस्तित्व है, क्योंकि पीतत्वादिक के और कुण्डलादिक के स्वरूप को सुवर्ण ही धारण करता है; इसलिये सुवर्ण के अस्तित्व से ही पीतत्वादिक की और कुण्डलादिक की निष्पत्ति ह्र सिद्धि होती है; सुवर्ण न हो तो पीतत्वादिक और कुण्डलादिक भी न हों, इसीप्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से द्रव्य से भिन्न नहीं दिखाई देनेवाले गुणों और पर्यायों का अस्तित्व वह द्रव्य का ही अस्तित्व है क्योंकि गुणों और पर्यायों के स्वरूप को द्रव्य ही धारण करता है, इसलिये द्रव्य के अस्तित्व से ही गुणों की और पर्यायों की निष्पत्ति होती है, द्रव्य न हो तो गुण और पर्यायें भी न हों। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

अथवा, जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से [3]जो पीतत्वादि गुणों से और कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्त्ता-

१. पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें।

२. द्रव्य ही गुण-पर्यायों का कर्त्ता (करनेवाला), उनका करण (साधन) और उनका अधिकरण (आधार) है; इसलिये द्रव्य ही गुण-पर्याय का स्वरूप धारण करता है।

३. जो-जो सुवर्ण।

करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्त्तमान पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादिपर्यायों से जिसकी निष्पत्ति होती है ह्र ऐसे सुवर्ण का, मूल साधनपने से [1]उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है; उसीप्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से गुणों से और पर्यायों से जो पृथक् नहीं दिखाई देता, कर्त्ता-करण - [2]अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान गुणों और पर्यायों से जिसकी निष्पत्ति होती है ह्र ऐसे द्रव्य का मूल साधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (पीतत्वादिक से और कुण्डलादिक से भिन्न न दिखाई देनेवाले सुवर्ण का अस्तित्व वह पीतत्वादिक और कुण्डलादिक का ही अस्तित्व है, क्योंकि सुवर्ण के स्वरूप को पीतत्वादिक और कुण्डलादिक ही धारण करते हैं, इसलिये पीतत्वादिक और कुण्डलादिक के अस्तित्व से ही सुवर्ण की निष्पत्ति होती है, पीतत्वादिक और कुण्डलादिक न हों तो सुवर्ण भी न हो; इसीप्रकार गुणों से और पर्यायों से भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्य का अस्तित्व वह गुणों और पर्यायों का ही अस्तित्व है, क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को गुणों और पर्यायें ही धारण करती हैं; इसलिये गुणों और पर्यायों के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। यदि गुण और पर्यायें न हों तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

(जिसप्रकार द्रव्य का और गुण-पर्याय का एक ही अस्तित्व है ह्र ऐसा सुवर्ण के दृष्टान्तपूर्वक समझाया, उसीप्रकार अब सुवर्ण के दृष्टान्त पूर्वक ऐसा बताया जा रहा है कि द्रव्य का और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का भी एक ही अस्तित्व है।)

जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से सुवर्ण से [3]जो पृथक् नहीं

१. उनसे=पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से। (सुवर्ण का अस्तित्व निष्पन्न होने में उपजने में, या सिद्ध होने में मूलसाधन पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें हैं।)

२. गुण-पर्यायें ही द्रव्य की कर्त्ता, करण और अधिकरण हैं; इसलिये गुण-पर्यायें ही द्रव्य का स्वरूप धारण करती हैं।

३. जो=जो कुण्डलादि उत्पाद, बाजूबंधादि व्यय और पीतादि ध्रौव्य।

दिखाई देते, कर्त्ता-करण - [१]अधिकरणरूप से कुण्डलादि उत्पादों के, बाजूबंधादि व्ययों के और पीतत्वादि ध्रौव्यों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण के अस्तित्व से जिनकी निष्पत्ति होती है ह्न ऐसे कुण्डलादि उत्पाद, बाजूबंधादि व्यय और पीतत्वादि ध्रौव्यों से जो सुवर्ण का अस्तित्व है, वह (सुवर्ण का) स्वभाव है; उसीप्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्त्ता-करण-अधिकरणरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान द्रव्य के अस्तित्व से जिनकी निष्पत्ति होती है ह्न ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जो द्रव्य का अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से द्रव्य से भिन्न दिखाई न देनेवाले उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों का अस्तित्व है, वह द्रव्य का ही अस्तित्व है; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों के स्वरूप को द्रव्य ही धारण करता है; इसलिये द्रव्य के अस्तित्व से ही उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों की निष्पत्ति होती है। यदि द्रव्य न हो तो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भी न हों। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

अथवा जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से कुण्डलादि-उत्पादों से बाजूबंधादि व्ययों से और पीतत्वादि ध्रौव्यों से जो पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्त्ता-करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान कुण्डलादि उत्पादों, बाजूबंधादि व्ययों और पीतत्वादि ध्रौव्यों से जिसकी निष्पत्ति होती है ह्न ऐसे सुवर्ण का, मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जो पृथक् दिखाई नहीं देता, कर्त्ता-करण- [२]अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जिसकी निष्पत्ति होती है

१. सुवर्ण ही कुण्डलादि-उत्पाद, बाजूबंधादि-व्यय और पीतत्वादि ध्रौव्य का कर्त्ता, करण तथा अधिकरण है; इसलिये सुवर्ण ही उनका स्वरूप धारण करता है। (सुवर्ण ही कुण्डलादिरूप से उत्पन्न होता है, बाजूबंधादिरूप से नष्ट होता है और पीतत्वादिरूप से अवस्थित रहता है।)

१. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्य के कर्त्ता, करण और अधिकरण हैं; इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्य के स्वरूप को धारण करते हैं।

ह्न ऐसे द्रव्य का मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (उत्पादों से, व्ययों से और ध्रौव्यों से भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्य का अस्तित्व वह उत्पादों, व्ययों और ध्रौव्यों का ही अस्तित्व है; क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ही धारण करते हैं; इसलिये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हों तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

भावार्थ :ह्न अस्तित्व के और द्रव्य के प्रदेशभेद नहीं है और वह अस्तित्व अनादि-अनन्त है तथा अहेतुक एकरूप परिणति से सदा परिणमित होता है, इसलिये विभावधर्म से भी भिन्न प्रकार का है; ऐसा होने से अस्तित्व द्रव्य का स्वभाव ही है।

गुण-पर्यायों का और द्रव्य का अस्तित्व भिन्न नहीं है, एक ही है; क्योंकि गुण-पर्यायें द्रव्य से ही निष्पन्न होती हैं और द्रव्य, गुण-पर्यायों से ही निष्पन्न होता है। और इसीप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का और द्रव्य का अस्तित्व भी एक ही है; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से ही उत्पन्न होते हैं और द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से ही उत्पन्न होता है।

इसप्रकार स्वरूपास्तित्व का निरूपण हुआ।

गाथा १६ पर प्रवचन

''छहों द्रव्यों में दो प्रकार का अस्तित्व है ह्न

१. स्वरूप अस्तित्व, २. सादृश्य अस्तित्व। आत्मा आदि सभी द्रव्य त्रिकाल अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अभेद हैं और पर से अत्यंत पृथक् हैं ह्न इसका नाम स्वरूप-अस्तित्व है।

सब काल में गुणों तथा अनेक प्रकार की अपनी पर्यायों द्वारा तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा द्रव्य का जो अस्तित्व है, वह वास्तव में वस्तु का स्वभाव है, उसे सादृश्य अस्तित्व कहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य में स्वभावरूप ऐसा स्वरूप-अस्तित्व है, वह अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता; इसीलिए अनादि-अनंत, अहेतुक, एकरूप

अवस्था से सदा ही परिणमित होने से वह विभाव धर्म से पृथक लक्षणवाला है तथा उसमें अपूर्णता भी नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य में उसका अस्तित्व गुण अर्थात् मौजूदगी सोलह-सोलह आना है। इससे विपरीत कोई कहे कि द्रव्य में बारह आने तो अस्तित्व अपने से है और चार आने नहीं अर्थात् बारह आने अस्तित्व अपने से है और चार आने पर से है तो यह विरुद्ध है; क्योंकि जो है, उसमें विरुद्धता अथवा अपूर्णता नहीं होती तथा अस्तित्व में किसी संयोग के आधार की अपेक्षा ही नहीं होती; इसीलिये प्रत्येक द्रव्य उनके अस्तित्व गुण के कारण स्वतंत्ररूप से टिक रहे हैं।

एकेन्द्रिय अवस्था कितनी विपरीत और अल्प तथा सिद्ध दशा कितनी पूर्ण और यथार्थ! किन्तु उसमें द्रव्य की सत्ता ह्न अस्तित्व में क्या अंतर पड़ा? क्योंकि यह अस्तित्व गुण तो विभाव अल्पता रहित परिपूर्ण धारावाहिक वर्तता है।

भाव और भाववानत्व के कारण अनेकत्व होने पर भी प्रदेशभेद नहीं होने से द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ वह द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न होगा? अवश्य होगा। तथा जैसे यह अस्तित्व आत्मा परमाणु आदि प्रत्येक में भिन्न-भिन्न रहकर उसमें पूर्ण हो जाता है, वैसे ही द्रव्य-गुण-पर्याय में से किसी एक में ही अस्तित्व पूर्ण नहीं हो जाता; क्योंकि तीनों की सिद्धि परस्पर होने से द्रव्य-गुण-पर्याय में रहा अस्तित्व गुण एक है। इसलिये तीनों का अस्तित्व एक ही साथ व्याप्त हुआ है। अतः एक ही है और वह स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से पृथक् नहीं है, यदि ऐसा जाने तो अपने गुण-पर्यायों का आधार स्वयं है। इन तीनों की सत्ता मेरे में है, मैं उस स्वरूप हूँ, इसीलिये कहीं बाहर ढूँढने के लिए जाना पड़े अथवा दूसरे के सामने देखना पड़े अथवा किसी काल व संयोग की राह देखनी पड़े ह्न ऐसी अपेक्षा रखने का मेरा स्वभाव नहीं है ह्न ऐसा जानकर स्व तरफ ढले और देखे तो स्वयं चिदानन्द का दरिया ही है।

जैसे समुद्र में रहा मच्छ किसी से कहे कि मुझे पानी लाकर दो तो

सामनेवाला कहता है कि अरे! पानी तो तेरे पास है तो फिर तू दूसरे से क्यों माँगता है? अर्थात् तेरा अस्तित्व सदा ही निरपेक्ष रूप से तेरे में ही परिपूर्ण है तो फिर तू दूसरे के पास माँगने किसलिये जाता है?

द्रव्य अर्थात् गुणों का पिण्ड, उसमें जो अन्वयशक्तिरूप कायम रहते हैं, वे गुण हैं; ये गुण और उनकी क्रमबद्ध एक के पश्चात् एक जो अवस्था, उत्पाद-व्ययरूप हुई प्रवाहित होती रहती है, वे पर्याय हैं। इन तीनों का अस्तित्व एक ही है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख, चारित्र आदि और परमाणु में स्पर्श-रस-गंध-वर्ण कि जो गुण और उनकी पर्यायें हैं, वे निश्चय हैं, वे किसी की अपेक्षा से नहीं हैं। यहाँ स्वज्ञेयों में द्रव्य-गुण-पर्याय के अभेद अस्तित्व द्वारा सभी द्रव्यों की सिद्धि करना है।

द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से स्वर्ण के अस्तित्व द्वारा उसके सभी गुण-पर्यायों को पहिचाना जा सकता है और पीलापन आदि गुणों तथा कुण्डलादि पर्यायों द्वारा स्वर्ण का अस्तित्व है ह्न ऐसा पहिचाना जाता है, किन्तु किसी सोनी आदि संयोग से वह नहीं पहिचाना जाता ह्न ऐसा स्वर्ण का स्वभाव है।

जिसप्रकार स्वर्ण उसके गुण-पर्यायों से पृथक् दिखाई नहीं देता, इसीलिये उसके पीतादि गुण और कुण्डलादि अवस्था का कर्त्ता-साधन और आधार स्वर्ण ही है; किन्तु सोनी, चिमटी, हथौड़ी आदि नहीं। उसीप्रकार स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से प्रत्येक वस्तु उनके गुण-पर्यायों से पृथक् दिखाई नहीं देती; इसीलिये कोई पदार्थ, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणमित होने के स्वभाववाला नहीं है।

आत्मा भी स्वयं अपने ही ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि का कर्त्ता-साधन आधार है। इसमें कोई देव-गुरु-शास्त्र, निरोग शरीरादि कर्त्ता और साधन नहीं हैं, इसी तरह ये आधार देनेवाले भी नहीं हैं; क्योंकि उनकी सत्ता से उनके गुण-पर्यायों का अस्तित्व है, किन्तु उनसे इस जीव का अस्तित्व नहीं है। इसप्रकार एक के द्वारा दूसरे की सिद्धि नहीं होती।

वर्तमान पर्याय में धर्म या अधर्म भाव स्वयं करे तो होता है, किन्तु

अन्य किसी के कारण अथवा किसी की प्रेरणा से अथवा प्रभाव से नहीं होता। अज्ञानी संयोग बुद्धि से देखता है, किन्तु ज्ञानी किसी के अस्तित्व को किसी दूसरे के द्वारा नहीं देखता।

अच्छे क्षेत्र-काल में धर्म हो सकता है ह्न ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि वस्तुस्वभाव ऐसा नहीं है। मैं सत्य बोल सकता हूँ ह्न ऐसा माननेवाले ने परमाणु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को अपने से एकरूप माना है। 'मैं यह बोलूँ' ह्न ऐसी जो इच्छा करता है, यह इच्छा आत्मा को बताती है; क्योंकि भाषा के परमाणु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, जीव से पृथक् अस्तित्व को धारण करते हैं तथा उनका कर्त्ता-साधन-आधार परमाणु है।

प्रत्येक वस्तु के गुण-पर्याय, समय-समय के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव स्व से अस्तिरूप हैं तथा कर्त्ता-साधन-आधाररूप एकमेक हैं और पर से त्रिकाल पृथक् हैं; ऐसा ही प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है ह्न ऐसा जाने तो स्वतंत्र परिपूर्ण स्व-पर ज्ञेय को जानने की प्रतीति होती है।

प्रत्येक आत्मा, परमाणु आदि द्रव्य उनके गुण-पर्यायों से व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से पृथक् नहीं है। वे पृथक् आधार की अपेक्षा रखनेवाले नहीं हैं। अब, यहाँ गुण-पर्यायों को मूल कारण लेकर द्रव्य को सिद्ध करनेवाले कर्त्ता-साधन और आधाररूप बताते हैं।

जैसे ह्न द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से पीतादि गुणों से तथा कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् स्वर्ण दिखाई नहीं देता, किन्तु स्वर्ण द्रव्य को सिद्ध करने के लिए रचना करनेरूप साधनरूप तथा आधाररूप सोने की गुण-पर्यायें ही हैं।

जैसे ह्न सोने को उसके गुण-पर्यायें करते हैं अर्थात् गुण-पर्यायें मूल साधनरूप सोने को धारण करते हैं, वैसे ही आत्मा आदि सर्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से उनके गुण-पर्यायें पृथक् देखने में नहीं आते; क्योंकि जो गुण-पर्यायें हैं, वे उनके द्रव्य को सिद्ध करनेरूप कर्त्ता होती हैं, मूल साधन होते हैं और आधार होकर धारण किये रखते हैं। इस महासिद्धांत में संयोग से कार्य होने की मान्यता नष्ट हो जाती है।

परमाणु को सिद्ध करने में उसके गुण-पर्यायें कर्त्ता, आधार और मूल साधन हैं। जीव इच्छा करे अथवा ज्ञान करे, उससे परमाणु सिद्ध हुए हों ह्न ऐसा नहीं है, क्योंकि जीवस्वरूप से परमाणु नहीं है।

अंशी वस्तु है और उसके अंश ...... (अवस्था) दूसरे के द्वारा हों तो वर्तमान पर्यायरूप अंश बिना, वस्तु कैसी? हम आत्मा हैं, किन्तु हमारा धर्म देव-गुरु-शास्त्र से हुआ, शरीर अच्छा था तो समता हुई ह्न ऐसा जिसने माना, उसने अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अपना अस्तित्व नहीं माना। बाह्य साधन से, दूसरे के आधार से, आत्मा तथा आत्मा के गुण-पर्याय का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता; क्योंकि आत्मा के ही गुण-पर्याय आत्मा को सिद्ध करने के मूल साधन हैं।

शरीर का चलना, परमाणु की पर्याय को निश्चित करने का वास्तविक साधन है, किन्तु जीव उसे चलाने का साधन नहीं होता; क्योंकि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से शरीर उसके परमाणु द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देता। यदि आत्मा से शरीर चलता हो तो इच्छा के अनुसार उसे निरंतर उसी समय चलना चाहिए। यह तो महान स्वतंत्रता का सिद्धान्त है।

वाह! आत्मा की ज्ञानादि पर्यायें कर्त्ता-आधार और मूल साधनरूप होकर आत्मद्रव्य को धारण करके रखती हैं। यहाँ द्रव्य का निर्णय करने में गुण-पर्याय को ही मूल साधन कहा है।

पर की दया, पर को सिद्ध करती है और आत्मा की इच्छा, आत्मा को सिद्ध करती है, किन्तु किसी दूसरे के निर्णय करने का कर्त्ता, साधन और आधार कोई दूसरा द्रव्य नहीं हो सकता।

प्रश्न :ह्न शुद्धोपयोग करने में कोई दूसरा साधन है अथवा नहीं?

उत्तर :ह्न नहीं, क्योंकि शुभरागरूप व्यवहार अथवा किसी निमित्त के कारण उसका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता; यदि स्वयं स्वतंत्ररूप से शुद्धभावरूप परिणमित हो तो राग और निमित्त को उपचार से साधन कहा जाता है, किन्तु वास्तव में तो वे सभी भिन्न कारण हैं; क्योंकि उसने आत्मा की शुद्धता को नहीं बताया है।

जो केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई, वह आत्मा का वास्तविक साधनरूप होकर आत्मा को सिद्ध करती है, किन्तु वह वज्रवृषभनाराचसंहनन अथवा कर्म के अभाव को सिद्ध नहीं करती। दिव्यध्वनि की पर्याय उसके परमाणु को सिद्ध करती है, किन्तु भगवान आत्मा को नहीं। इसीतरह रोटी की पर्याय उसके परमाणु को सिद्ध करती है; किन्तु तवा, अग्नि आदि को नहीं।

प्रश्न :ह्न इसमें व्यवहार शास्त्र में कहे गये निमित्त तो उड़ जाते हैं?

उत्तर :ह्न यदि ऐसा निश्चय स्वरूप जाने तो फिर निमित्त कारण किस प्रकार के होते हैं, उसे जो व्यवहार के शास्त्र बताते हैं, उसका यथार्थ ज्ञान होता है।

शंकादि दोष रहित स्व-पर अर्थ का निर्णय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है; उसमें सबसे पहले स्व कौन है, उसका अच्छी तरह निर्णय करने के पश्चात् ही पर का भी यथार्थ ज्ञान होता है, तब प्रमाण कहलाता है।

जिस द्रव्य-गुण में से पर्याय आई है, वही द्रव्य को टिके रहने का मूल वास्तविक साधन है, किन्तु अन्य नहीं ह्न ऐसा अंतर में निर्णय करे तो तेरे वर्तमान और त्रिकाली में भेद दिखाई नहीं दे, अपितु स्वरूप से ही अभेद और परिपूर्णता है, वह दिखाई देगी। ऐसा एक वीतराग का ही मार्ग है। स्व लक्ष्य से ऐसे आत्मा को अभेदरूप जानने पर स्व-पर प्रकाशक ज्ञान खिला; उसके पश्चात् पर कौन है, वह भी जानने में आ जाता है। स्वयं समझा, इसीलिये सामने समझानेवाला था ह्न यह सिद्ध नहीं होता; अपितु समझ की पर्याय द्वारा उसका द्रव्य सिद्ध होता है।

इस प्रवचनसार की मूल गाथा की लेखनी पर से श्री कुन्दकुन्दाचार्य सिद्ध नहीं होते, अपितु वे इससे भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा के हैं, जो इस ज्ञानपर्याय के आधार द्वारा ज्ञानरूपी वास्तविक साधन द्वारा पहिचाने जाते हैं।

यदि मूल साधनरूप स्वपर्याय द्वारा अपने को जाने तो परपदार्थ पर द्वारा है ह्न ऐसा यथार्थ ज्ञान होता है। सभी क्षेत्र-काल में यह एक ही बात

है कि समय-समय की पर्याय द्वारा उसके द्रव्य का सद्भाव सिद्ध होता है; इसीलिये किसी दूसरे को ढूँढने की अपेक्षा नहीं रहती।

''वचनामृत वीतराग ना, परम शांतरस मूल'' ह्न ये शब्द परमाणु को सिद्ध करते हैं, किन्तु जीव के ज्ञान को सिद्ध नहीं करते। प्रत्येक का कर्त्ता, आधार और साधन द्रव्य त्रिकाल पृथक्-पृथक् हैं ह्न ऐसा जाने तो ज्ञान की महिमा आवे।

मूल साधनरूप गुण-पर्यायें हैं, इसके द्वारा ही द्रव्य सिद्ध होता है। तीनों काल की पर्यायों का पिण्ड द्रव्य है। तीनों काल की पर्यायों में से एक अंश (पर्याय) मूल साधनरूप न मानो तो कोई भी द्रव्य सिद्ध नहीं होता।

प्रत्येक द्रव्य में भूतकाल की पर्याय की तुलना में भविष्यकाल की पर्याय अनंतगुणी (अधिक) है, किन्तु कितने ही यह नहीं मानते, अपितु वे ऐसा मानते हैं कि भूतकाल की पर्याय की तुलना में भविष्य की पर्याय वर्तमान एक समय जितनी ही अधिक है, किन्तु ऐसा मानने से द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। पर्यायें तो मूल साधनरूप हैं, यदि इसमें से एक भी पर्याय कम माने तो द्रव्य का ही निर्णय नहीं होता। यह सूक्ष्म बात है। एक परमाणु, उसके अनंतगुण और उसकी शक्तिरूप त्रिकाली पर्याय उसमें से एक पर्याय भी कम करो, निकाल दो तो गुण सिद्ध नहीं होते और गुण के बिना द्रव्य भी सिद्ध नहीं होता।

एक-एक समय की पर्याय द्रव्य को सिद्ध करने में असली-मूल साधन है, कर्त्ता है, आधार है, इसमें किसी की किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं है। इसतरह पर से भेद हुआ और स्व में अभेद का निश्चय हुआ ह्न यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का अनुभव है।

प्रश्न :ह्न निमित्त को तो याद ही नहीं किया?

उत्तर :ह्न निमित्त की पर्याय से वह निमित्त पहिचाना जाता है, उसका साधन, आधार वही है ह्न इसप्रकार उसे याद किया है। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव ये सभी सत् हैं, अहेतुक हैं; इन्हें पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-

भाव का सम्बन्ध नहीं है; इसप्रकार निरपेक्ष स्वभाव स्वीकार करने के पश्चात् सम्बन्ध का ज्ञान करना व्यवहार है।

प्रश्न :ह्र इसमें कुछ करना तो रहता नहीं है?

उत्तर :ह्र स्व तरफ झुकने में ही आनन्द है ह्र ऐसा जाना अर्थात् स्व में ज्ञातारूप झुकाव और मिथ्या का स्वीकार नहीं करना ह्र यह करना रहता है।

प्रत्येक आत्मा तथा परमाणु आदि द्रव्यों की समय-समय पर्याय होती है, जो द्रव्य को सिद्ध करने का मूल साधन है। इस गुण-पर्याय से द्रव्य का अस्तित्व पहिचाना जाता है। ऐसा अस्तित्व द्रव्य का स्वभाव है।

यदि करोड़ रुपये की पूँजी में से एक पैसा भी कम करो तो करोड़ रुपये सिद्ध नहीं होते। वर्तमान उत्पाद-व्ययरूप पर्याय और ऐसी अनंत पर्यायों का पिण्ड, वह गुण है। ऐसे अनंत गुण-पर्यायों का पिण्ड, वह द्रव्य है। यदि इसमें से एक पर्याय को कम करो अथवा उसे किसी परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आधार से हुई है, यह कहो तो कोई द्रव्य सिद्ध नहीं होता। पर्याय से द्रव्य टिक रहा है, पर्याय (प्रत्येक समय की उत्पाद-व्ययरूप अवस्था) आधार है और द्रव्य आधेय है। पर्याय कर्त्ता है और द्रव्य कार्य है। पर्याय मूल साधन है और द्रव्य साध्य है।

आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र आदि गुण की एक समय की कोई भी पर्याय किसी दूसरे के द्वारा होती है ह्र ऐसा मानो तो इस अंश ह्र पर्याय के बिना द्रव्य सिद्ध नहीं होता, सम्पूर्ण स्वरूप-अस्तित्व ही नहीं रहता। जैसे सौ वर्ष के सभी समय होकर के पुरुष की आयु है; यदि इसमें से एक समय की अवस्था को निकाल दो अथवा उसे पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव द्वारा उत्पन्न हुई मानो तो सौ वर्ष का पुरुष सिद्ध नहीं होता; वैसे ही आत्मा में किसी कर्म, शरीर, क्षेत्र, काल के कारण राग-द्वेष, ज्ञान, सुख-दुःख हो और किसी एक आत्मा के कारण किसी दूसरे में कर्त्तापना, साधन अथवा आधारपना हो तो कोई द्रव्य सिद्ध नहीं होता। किसी के कारण किसी का अस्तित्व नहीं है, क्योंकि अस्तित्वगुण और गुणी ह्र ऐसा द्रव्य किसी की अपेक्षा नहीं रखता।

अग्नि आई तो वस्त्र जला ह्र ऐसा माना जावे तो उसकी पर्याय का काल नहीं था ह्र ऐसा मानना पड़ेगा और उस पर्याय को पर द्वारा मानने पर, द्रव्य का टिका रहना नहीं बनता। अग्नि ने कपड़े की पर्याय अग्निरूप करी तो अग्नि ने कपड़े को सिद्ध किया; किन्तु उसके अपने द्रव्य के मूलसाधनरूप, आधाररूप, कर्त्तारूप बनाये रखने का काम अग्नि ने नहीं किया ह्र ऐसा मानना पड़ेगा।

गाथा में सर्वकाल में ह्र ऐसा शब्द है। इसमें वर्तमानकाल भी वर्तमान पर्यायरूप से आ गया; इसीलिये कोई भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से तथा वर्तमान उत्पाद-व्ययरूप पर्याय से ही द्रव्य की सिद्धि होती है, किन्तु किसी भी काल में द्रव्य उसके गुण-पर्याय के बिना सिद्ध नहीं होता।

एक समय की कुण्डलादि पर्याय सम्पूर्ण सोने को टिकाये रखती है ह्र पीतादि गुणों और उसकी अवस्था न हो तो स्वर्ण ही न हो; इसलिए गुण-पर्यायों का अस्तित्व वही द्रव्य का अस्तित्व है ह्र ऐसा प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है।

अब, द्रव्य का तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का भी एक ही अस्तित्व है ह्र ऐसा दृष्टांतपूर्वक सिद्ध करते हैं।

जैसे सोने के अस्तित्व से पृथक् नहीं होने से उसके पीतादि गुण और कुण्डलादि अवस्थाओं का उत्पन्न होना, बदलना और टिके रहना सोने के द्वारा सिद्ध होता है। सोना ही उसकी पर्यायों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का कर्त्ता-साधन और आधार है; किन्तु सोनी, चिमटी, अग्नि आदि नहीं। किसी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से किसी की भूल से अथवा किसी की होशियारी से सोने का घड़ा फूटा हो और नया मुकुट बना हो ह्र ऐसा नहीं है।

किसी भी अवस्था के व्यय और उत्पाद का आधार वह द्रव्य है ह्र ऐसा जो जानता है, उसे समता आती है। लड़के ने घी गिरा दिया, इसीलिये द्वेष हुआ अथवा रसोई अच्छी बनी, इसीलिये राग हुआ; बालक गिर गया, इसीलिये द्वेष हुआ ह्र इसप्रकार पर द्रव्य-क्षेत्र-कालादि

से उत्पाद-व्यय माननेवाला ह्न वर्तमान संयोग और पर्याय को देखकर इष्ट-अनिष्ट माननेवाला पर्यायमूढ़ ह्न मिथ्यादृष्टि है। यदि पर के कारण राग-द्वेष, सुख-दुःख होते हों तो सभी को होना चाहिए और एक जैसा होना चाहिए, किन्तु ऐसा तो होता दिखाई नहीं देता।

पैसे का व्यय होने का आधार और कर्त्ता परमाणु है, अन्य नहीं। सिर फूटा तो उसका आधार और कारण शरीर के रजकण हैं। अनेक आकार के गहनों का आधार सोना ही है ह्न ऐसा माने तो द्रव्य के सामने देखे और उसके आश्रय से सच्चा समाधान हो।

खिचड़ी में घी गिरने से राग करता है और बाहर गिरने पर द्वेष करे तो वह अनंत संसार का कारण ऐसी अनंतानुबंधी कषाय है। उसका आधार-कर्त्ता अज्ञानी जीव है। पर्याय मात्र को देखनेवाला मूढ़ ह्न अज्ञानी मानता है कि मेरे द्वारा ही सामनेवाले पदार्थ का अस्तित्व है तो उसने उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का आधार वह पदार्थ है, उसका विरोध किया, जिसमें अपना ही विरोध हुआ; क्योंकि पर के कारण अथवा पर के आधार से किसी का उत्पन्न होना, बदलना अथवा टिंके रहना होता है ह्न ऐसी मान्यता अनंत परपदार्थों की पराधीनता की दृष्टि है, जो अनंत संसार का कारण है।

किसी गुण्डे ने छुरी मारी, उसके कारण शरीर में गड्ढा पड़ा, अच्छा आहार लिया; इसीलिये शरीर अच्छा हुआ अथवा भूख मिटी, आहार नहीं लिया; इसीलिये उपवास हुआ अथवा परिणाम अच्छे रहे ह्न ऐसा माननेवाले ने किसी भी द्रव्य का स्वतंत्र अस्तित्व है ह्न ऐसा माना ही नहीं।

अब द्रव्य की सिद्धि के लिए वर्तमान पर्याय के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को मूल साधनरूप-कर्त्तारूप-आधाररूप बताते हैं।

जैसे ह्न द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कुण्डलादि उत्पादों से, बाजूबंध आदि व्यय से और पीतादि ध्रौव्यों से जो पृथक् दिखाई नहीं देता ह्न ऐसे सोने को इन पर्यायों ने टिकाये रखा है। पूर्व की अवस्था का व्यय होता है, नई अवस्था का उत्पाद होता है और स्वर्णत्व टिका रहता है, इनके आधार से सोने का अस्तित्व है ह्न स्वभाव है।

प्रश्न :ह्न द्रव्य हो तो गुण-पर्याय हो और गुण-पर्याय हो तो द्रव्य हो ह्न ऐसा मानने पर तो इतरेतराश्रय दोष आयेगा?

उत्तर :ह्न उनका एक ही अस्तित्व होने से यह दोष नहीं आता।

पदार्थों में सर्वकाल उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं, जो उनसे पृथक् देखने में नहीं आते, अपितु उनके कारण तो द्रव्य टिकता है। यदि मूल साधन-कर्त्ता-आधार न हो और दूसरा कोई हो तो द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। किसी दूसरे के द्वारा उत्पाद आदि हुआ कहो तो वस्तु ही नहीं रहती।

एक परमाणु की पर्याय के उत्पन्न होने अथवा बदलने का कारण कोई दूसरा परमाणु नहीं है तथा किसी की इच्छा-ज्ञानादि भी इसका कारण नहीं है। फूटने के समय यदि घड़ा नहीं फूटे और ठीकरे का उत्पाद न हो तो वस्तु का स्वरूप टिक (रह) नहीं सकता। मूलकारण को नहीं देखकर संयोग से देखनेवाले मूढजीव को असली वस्तुस्वरूप की सत्ता का सुनना भी अच्छा नहीं लगता। यह अरुचि उसके द्रव्य की पहिचान कराती है। प्रत्येक समय के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से सर्वकाल सभी द्रव्य टिक रहे हैं।

इच्छा के द्वारा कोई सोनगढ़ नहीं आता। जो बहुत समय की इच्छा थी तो उस समय की पर्याय से तुम्हारे द्रव्य की प्रसिद्धि थी, दूसरे समय में दूसरी पर्याय द्वारा तुम्हारा अस्तित्व सिद्ध था। वर्तमान में यह पर्याय तुम्हारी सिद्धि के लिए मूल साधनरूप, कारणरूप और आधाररूप है और तुम आधेय हो; किन्तु पूर्व पर्याय में इच्छा की थी, ज्ञान किया था, शुभाशुभ राग किया था, श्रवण किया था; उसके आधार से तुम वर्तमान में टिके हो ह्न ऐसा नहीं है, किन्तु वर्तमान प्रगट उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप पर्याय के आधार से तुम टिके हो। पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तो कहीं बहुत दूर रह गये, किन्तु पूर्व की पर्याय के आधार से भी किसी का टिकना

नहीं है। भूतकाल एवं भविष्यकाल की पर्याय से नहीं, अपितु जो मूल साधन रूप वर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप जो पर्याय है, उसके द्वारा अवस्थावान द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है ह्न ऐसा जाने तो द्रव्यदृष्टि हो और पराधीनता छूटे।

प्रत्येक पदार्थ के अस्तित्व स्वभाव को उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य मूल साधनरूप से धारण करते हैं; ये द्रव्य के अस्तित्व से पृथक् नहीं हैं। दया, दान के शुभराग का उत्पाद हुआ और उस समय अशुभराग का व्यय हुआ तो उसने जीव द्रव्य के अस्तित्व को सिद्ध किया है, किन्तु उसने पर में कुछ भी नहीं किया।

प्रश्न :ह्न क्या राग की पर्याय आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती है?

उत्तर :ह्न हाँ, यह चारित्र गुण की विकारी पर्याय है, यह पर्याय गुण को सिद्ध करती है और गुण, गुणी को सिद्ध करते हैं। एक समय का राग तथा उसके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं, इसमें से किसी भी एक को नहीं मानो तो अंश की सत्ता के बिना अंशरूप कोई भी वस्तु सिद्ध नहीं होती। यदि अगली पर्याय का व्यय न हो तो नई पर्याय का उत्पाद सिद्ध नहीं होता और उनके बिना द्रव्य भी सिद्ध नहीं होता।

इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के अस्तित्व द्वारा द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है।

प्रश्न :ह्न भगवान की पूजा के लिए शुद्ध अष्ट द्रव्य ले जाना अथवा नहीं? समयसार पढ़ने की इच्छा हुई तो वह लेना अथवा नहीं।

उत्तर :ह्न अपने को उस तरफ का राग है, इस कारण अष्ट द्रव्य और समयसार शास्त्र आये ह्न ऐसी पराधीन सत्ता उसकी नहीं है। वर्तमान इच्छा जीव द्रव्य के अस्तित्व को सिद्ध करती है, किन्तु पर द्रव्य के क्षेत्र-काल-भाव के साथ उसके सम्बन्ध नहीं है। आँख की पुतली फिरती है, उसके ऊपर जीव का अधिकार नहीं है। एक परमाणु की क्रिया में दूसरे परमाणु का अधिकार नहीं है।

प्रश्न :ह्न हमें कैसी श्रद्धा से काम लेना चाहिए?

उत्तर :ह्न स्वद्रव्याश्रित श्रद्धा से ऐसा मानना चाहिए कि मुझे कोई भी इच्छा नहीं करता है और जो विकल्प किया है, वह मेरे अस्तित्व को बताता है, किन्तु उसके कारण आँख की पुतली चले अथवा रुके ह्न ऐसा सिद्ध नहीं होता। स्थूल संयोग से देखनेवाले अज्ञानी को इसमें एकांत-नियतिवाद लगता है, किन्तु तीनों काल में प्रत्येक द्रव्य की पर्याय नियत ही होती है, किसी अन्य तरह की नहीं होती ह्न ऐसे सम्यक् अनेकांत पूर्वक द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है और द्रव्यदृष्टि का निःशंक जोर हो सकता है।

•

तब प्रश्न उठता है कि आखिर 'मैं हूँ कौन ?' यदि एक बार यह प्रश्न हृदय की गहराई से उठे और उसके समाधान की सच्ची जिज्ञासा जगे तो इसका उत्तर मिलना दुर्लभ नहीं है; पर यह 'मैं' पर की खोज में स्वयं को भूल रहा है। कैसी विचित्र बात है कि खोजनेवाला खोजनेवाले को ही भूल रहा है। सारा जगत पर की संभाल में इतना व्यस्त नजर आता है कि 'मैं कौन हूँ ?' ह्न यह सोचने-समझने की उसे फुर्सत ही नहीं है।

'मैं' शरीर, मन, वाणी और मोह-राग-द्वेष, यहाँ तक कि क्षणस्थायी परलक्षी बुद्धि से भिन्न एक त्रैकालिक, शुद्ध, अनादि-अनन्त, चैतन्य, ज्ञानानन्दस्वभावी ध्रुवतत्त्व हूँ, जिसे आत्मा कहते हैं।

ह्न मैं कौन हूँ ?, पृष्ठ-६-७

प्रवचनसार गाथा १७

अब, यह (नीचे अनुसार) सादृश्य-अस्तित्व का कथन है ह्र

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं॥१७॥

(हरिगीत)

रे सर्वगत सत् एक लक्षण विविध द्रव्यों का कहा।
जिनधर्म का उपदेश देते हुए जिनवरदेव ने॥१७॥

अन्वयार्थ :ह्र [धर्मं] धर्म का [खलु] वास्तव में [उपदिशता] उपदेश करते हुए [जिनवरवृषभेण] [1]जिनवरवृषभ ने [इह] इस विश्व में [विविधलक्षणानां] विविध लक्षणवाले [भिन्न-भिन्न स्वरूपास्तित्ववाले सर्व] द्रव्यों का [सत् इति] 'सत्' ऐसा [सर्वगतं] [2]सर्वगत [लक्षणं] लक्षण [सादृश्यास्तित्व] [एकं] एक [प्रज्ञप्तम्] कहा है।

टीका :ह्र इस विश्व में, विचित्रता को विस्तारित करते हुए (विविधता-अनेकता को दिखाते हुए), अन्य द्रव्यों से [3]व्यावृत्त रहकर प्रवर्त्तमान और प्रत्येक द्रव्य की सीमा को बाँधते हुए ऐसे विशेष लक्षण भूत स्वरूपास्तित्व से (समस्त) द्रव्य लक्षित होते हैं; फिर भी सर्व द्रव्यों का, विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ, सर्व द्रव्यों में प्रवृत्त होकर रहनेवाला और प्रत्येक द्रव्य की बँधी हुई सीमा की अवगणना करता हुआ, 'सत्' ऐसा जो सर्वगत सामान्यलक्षणभूत सादृश्यास्तित्व है, वह वास्तव में एक ही जानना चाहिए। इसप्रकार 'सत्' ऐसा कथन और 'सत्' ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थों का [4]परामर्श करनेवाला है। यदि वह ऐसा (सर्वपदार्थ परामर्शी) न हो तो कोई पदार्थ सत्, (अस्तित्ववाला) कोई असत् (अस्तित्व रहित), कोई सत् तथ ा असत् और कोई अवाच्य

१. जिनवरवृषभ=जिनवरों में श्रेष्ठ; तीर्थंकर
२. सर्वगत = सब में व्यापने वाला।
३. व्यावृत्त = पृथक्; अलग; भिन्न।
४. परामर्श = स्पर्श; विमर्श; लक्ष्य; स्मरण।

होना चाहिए; किन्तु वह तो विरुद्ध ही है और यह बात ('सत्' ऐसा कथन और ज्ञान के सर्वपदार्थ परामर्शी होने की बात) तो सिद्ध हो सकती है, वृक्ष की भाँति।

जैसे बहुत से, अनेक प्रकार के वृक्षों को अपने-अपने विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाले अनेकत्व को, सामान्य लक्षणभूत [1]सादृश्यदर्शक वृक्षत्व से उत्पन्न होनेवाला एकत्व [2]तिरोहित (अदृश्य) कर देता है; इसीप्रकार बहुत से, अनेकप्रकार के द्रव्यों को अपने-अपने विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाले अनेकत्व को, सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक 'सत्' पने से ('सत्' ऐसे भाव से, अस्तित्व से, 'है' पने से) उत्पन्न होनेवाला एकत्व तिरोहित कर देता है। और जैसे उन वृक्षों के विषय में सामान्य-लक्षणभूत सादृश्यदर्शक वृक्षत्व से उत्पन्न होनेवाले एकत्व से तिरोहित होने पर भी (अपने-अपने) विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है, (बना रहता है, नष्ट नहीं होता); उसीप्रकार सर्वद्रव्यों के विषय में भी सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक 'सत्' पने से उत्पन्न होनेवाले एकत्व से तिरोहित होने पर भी (अपने-अपने) विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है।

[बहुत से (संख्यापेक्षा से अनेक) और अनेकप्रकार के (अर्थात् आम्र, अशोकादि) वृक्षों का अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है, इसलिये स्वरूपास्तित्व की अपेक्षा से उनमें अनेकत्व है, परन्तु वृक्षत्व जो कि सर्व वृक्षों का सामान्यलक्षण है और जो सर्व वृक्षों में सादृश्य बतलाता है, उसकी अपेक्षा से सर्व वृक्षों में एकत्व है। जब इस एकत्व को मुख्य करते हैं, तब अनेकत्व गौण हो जाता है; इसीप्रकार बहुत से (अनन्त) और अनेक (छह) प्रकार के द्रव्यों का अपना-अपना

१. सादृश्य = समानत्व।
२. तिरोहित = तिरोभूत; आच्छादित; अदृश्य।

स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है; इसलिये स्वरूपास्तित्व की अपेक्षा से उनमें अनेकत्व है, परन्तु सत्पना (अस्तित्वपना, 'है' ऐसा भाव) जो कि सर्व द्रव्यों का सामान्य लक्षण है और जो सर्वद्रव्यों में सादृश्य बतलाता है, उसकी अपेक्षा से सर्वद्रव्यों में एकत्व है। जब इस एकत्व को मुख्य करते हैं, तब अनेकत्व गौण हो जाता है। और इसप्रकार जब सामान्य सत्पने को मुख्यता से लक्ष्य में लेने पर सर्वद्रव्यों के एकत्व की मुख्यता होने से अनेकत्व गौण हो जाता है, तब भी वह (समस्त द्रव्यों का स्वरूप-अस्तित्व संबंधी) अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान ही रहता है।]

(इसप्रकार सादृश्य अस्तित्व का निरूपण हुआ)।

गाथा १७ पर प्रवचन

अब, सादृश्य-अस्तित्व को कहते हैं :ह्र

धर्म का वास्तव में उपदेश देते हुए तीर्थंकर भगवान ने यह कहा है कि इस विश्व में सदैव भिन्न-भिन्न स्वरूप से अस्तित्ववाले सर्वद्रव्य हैं और वे अन्यान्य रूप नहीं हैं; ऐसा होने पर भी उनका सत् ह्र ऐसा सर्व में व्याप्त होनेवाला लक्षण (सादृश्य-अस्तित्व) एक कहा है।

अस्तित्व सभी में वर्तता है। इस सामान्य सत्ता में से किसी को निकाला नहीं जा सकता, निगोद एकेन्द्रिय की महादुःखी दशा और सिद्ध की दशा, महाहिंसक और अहिंसक, क्रोध और क्षमा, सुगन्ध और दुर्गंध, तत्त्व का महाविरोध करनेवाला और समझकर स्वीकार करनेवाले ह्र इत्यादि जगत में एक साथ हैं। मैं ज्ञान हूँ, ये ज्ञेय हैं। ऐसी विचित्रता क्यों? इस विकल्प को ज्ञान में स्थान नहीं है। अस्तित्व में सभी समान हैं ह्र ऐसी दृष्टि होना वीतरागता का कारण है।

प्रश्न :ह्र एक ब्रह्म मानने पर बहुत वीतरागता होती होगी?

उत्तर :ह्र नहीं। इसमें तो किसी द्रव्य का स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं माना। यदि सभी एक हैं तो ऐसा हो जायेगा कि सभी रागी तो मैं भी रागी हो जाऊँ? सभी रागी, अज्ञान द्वारा भले ही दुःखी हों, किन्तु मैं उनसे पृथक् होने से स्वतंत्र मेरे द्वारा वीतरागी होकर मुक्त हो सकता हूँ। एकांत

अद्वैत मानने में अंश मात्र भी वीतरागता नहीं आती; क्योंकि इसमें मैं समस्त जगतरूप एक हूँ, पृथक् नहीं ह्र ऐसा माना तो दूसरे तीव्र पापी, दुःखी, अज्ञानी हैं, इसीलिये मुझसे वीतरागी नहीं हुआ जाएगा; किन्तु किसी भी समय किसी का भी स्वरूप एक नहीं होता। वे हैं ह्र ऐसा उन्हें सामान्य ज्ञेय बनाकर सभी का ज्ञाता-द्रष्टा रहना ह्र इसका नाम वीतरागता है। एकांत सत्ता कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, किन्तु उसमें सर्व की स्वरूप सत्ता गौण करके सब के अस्तित्व की एक सत्ता कहना है।

कोई सत्य का विरोध करता है तो कोई बहुमान करता है, कल का महापापी आज धर्मी हो जाता है ह्र ऐसा क्यों? ऐसा विकल्प ज्ञान नहीं करता; क्योंकि ये भी जगत के ज्ञेय हैं। किसी के भी अस्तित्व का निषेध नहीं करनेवाला ज्ञान वीतरागता का कारण है।

इस विश्व में विचित्रता को विस्तारता (अनेकत्व को दर्शाता) अन्य द्रव्यों से सदैव पृथक् रहकर वर्तमान अर्थात् पर से अभाव-भावरूप रहकर वर्तता, प्रत्येक द्रव्य की मर्यादा को बाँधता ह्र ऐसा विशेष लक्षणभूत स्वरूप अस्तित्व द्वारा प्रत्येक द्रव्य लक्षित होता है।

जो एक समय, वह सभी समय; जो एक समय पृथक्, वह त्रिकाल सर्व अवस्थाओं में पर से पृथक् और स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अभेद रहता है। इसीलिये किसी आत्मा के किसी गुण-पर्याय की मर्यादा पर जीव में अथवा किसी देहादि में नहीं जाती और उसमें किसी का कुछ नहीं आता ह्र ऐसा वस्तुस्वरूप है।

आत्मा सूक्ष्म परमाणु को नहीं बदल सकता, किन्तु स्थूल शरीरादि को तो बदल सकता है ह्र ऐसा माननेवाले ने वस्तु की मर्यादा को नहीं जाना है। यदि तीन गाँवों में जाना हो तो तेज गति से चलना चाहिए और यदि एक गाँव जाना हो तो धीमी गति से चलना चाहिए ह्र यह बात असत्य है; क्योंकि जीव ऐसी इच्छा तो कर सकता है, किन्तु शरीर की गति को (तीव्र-मंद) नहीं कर सकता।

प्रत्येक द्रव्य की सत्ता की (परस्पर) पृथक्ता है। इस मर्यादा को न देखकर सत् ऐसा जो सर्वगत सादृश्य-अस्तित्व है, उसे वास्तव में एक ही जानना। किसी को भी क्षोभ रहित तथा यह कैसे? ऐसे विकल्प रहित जाने ह्न ऐसी दृष्टि वह वीतरागता है।

सभी वस्तुएँ सत् हैं, इसमें कोई भी शेष नहीं रहता। 'है' ह्न ऐसी सादृश्य सत्ता का ज्ञान है। 'है' ह्न ऐसा जो वचन में आता है, वह वाणी के कारण आता है और ज्ञेय में भी ऐसा ही है। यदि सभी पदार्थों में सत्‌रूप समानपना न हो और ज्ञान सब पदार्थों को लक्ष्य में लेनेवाला न हो तो कोई पदार्थ सत् और कोई पदार्थ अस्तित्व रहित असत् होना चाहिए; किन्तु कोई पदार्थ किसी समय सत् न हो ह्न ऐसा नहीं होता।

'है' इसमें 'नहीं' ह्न ऐसा ज्ञान नहीं होता; किन्तु पदार्थ है ह्न ऐसा ज्ञान जानता है; सिद्ध भी है, निगोद भी है; ये सभी एक समय में हैं, इनमें से (अस्तित्व में से) किसी का भी अभाव नहीं किया जा सकता और इसी में से वीतरागता प्रगट होती है। सभी हैं ह्न ऐसा ख्याल करे तो मैं स्वरूप से हूँ, परपदार्थ पररूप से हैं ह्न ऐसा ज्ञान जानता है तथा जब तत्त्व है तो उनको जाननेवाला भी है और उनको कहनेवाले भी हैं।

कोई कहे कि सिद्ध तो होना चाहिए और निगोद नहीं होना चाहिए अथवा सुगन्ध तो होना चाहिए और दुर्गन्ध नहीं होना चाहिए, आदर करनेवाले होना चाहिए और अनादर करनेवाले नहीं होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता; परन्तु सब हैं, इसप्रकार स्वीकार सभी का अस्तित्व करने पर वीतरागता होती है।

प्रश्न :ह्न शुद्धात्मा का आदर करना या नहीं करना?

उत्तर :ह्न स्वभाव है ह्न ऐसा जाना तो इसमें शुद्धात्मा का आदर हो जाता है, किन्तु विकल्प द्वारा शुद्धात्मा का आदर नहीं होता। विकल्प मिटाने से अस्तित्व लक्ष्य में आता है। अस्तित्व से सर्वज्ञेय को समान न माने तो राग-द्वेष अथवा भले-बुरे माननेरूप हुए बिना नहीं रहे।

जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है; गुण है, वह पर्याय जितना नहीं है और

पर्याय है, वह द्रव्य-गुणरूप नहीं है ह्न ऐसा ज्ञान जानता है; फिर भी सर्व के सामान्य अस्तित्व में से किसी का अस्तित्व बाहर नहीं निकलता। ज्ञान में, वचन में और जगत में अस्तित्व नहीं हो तो विरोध आयेगा।

इस विश्व में अनंत परमाणु तथा आत्मा आदि हैं। उनकी अनेक अवस्थाओं के बहुत से प्रकार हैं, किन्तु कोई न हो ह्न ऐसा नहीं है। प्रत्येक पदार्थ स्वस्वरूप से रहकर पर से पृथक् हैं, फिर भी सभी 'हैं' ह्न ऐसा सामान्य संग्रहरूप एक अस्तित्व ज्ञान में जानने में आ रहा है, वचन में भी ह्न ऐसा बताने की सामर्थ्य है। इसप्रकार 'है' पना किसी को पृथक् नहीं करता, किन्तु सभी का अस्तित्व में समावेश करता हुआ वीतरागी ज्ञान किसी में अथवा किसी से राग-द्वेष की कल्पना नहीं करता।

किसी आत्मा को कोई दूसरा आत्मा अथवा देहादि परमाणुओं के साथ सम्बन्ध नहीं है, ऐसा अपनी आत्मा के लक्ष्य से भान होना सम्यग्दर्शन है।

जीव को विकार अथवा अविकार, सुख अथवा दुःख अपने कारण है ह्न किन्तु पर के कारण नहीं; कोई कहे कि मेरे अस्तित्व में तो पर नहीं, किन्तु पर पररूप से भी नहीं है ह्न ऐसा नहीं है, अपितु सर्व सदैव अपनी मर्यादा में रह रहे हैं। उन सभी को सामान्य संग्रह अस्तित्व दृष्टि से देखें तो स्व-पर ज्ञेय में अनेक प्रकार देखने पर यह ऐसा कैसे ह्न ऐसी विस्मयता अथवा अथवा यह होना चाहिए और यह नहीं होना चाहिए ह्न अथवा यह ठीक है और यह ठीक नहीं है ह्न ऐसा नहीं माननेवाला वीतरागी-विज्ञान का विकास करता है, सत् ऐसा कथन और सत् ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थ का जाननेवाला है; यदि ऐसा न हो तो कोई पदार्थ तो सत् हो और कोई असत् हो।

प्रश्न :ह्न जो पदार्थ सत् हो तो क्या वही पदार्थ असत् होगा?

उत्तर :ह्न हाँ! क्योंकि जो सत् है, वह स्व की अपेक्षा से है और पर की

अपेक्षा से वही असत् है, किन्तु यहाँ यह बात नहीं है। यहाँ तो सर्व सत् को संग्रह करके सामान्य सत् और उसको जाननेवाला ज्ञान बताना है। सभी के अस्तित्व में से किसी को पृथक् करके उसके अस्तित्व का निषेध नहीं करना चाहिए; क्योंकि कोई पदार्थ हो और कोई पदार्थ न हो ह्न ऐसा नहीं होता। आगे आयेगा कि स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जो आत्मा आदि सत् हैं ह्न स्वरूप है, वे पर से असत् हैं ह्न ऐसा मानें तो ही अनेकांतपना बना रहता है।

इस आत्मा को अन्य आत्मा तथा जड़कर्मादि के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ह्न दोनों त्रिकाल पृथक्-पृथक् हैं। राग-द्वेष की पर्याय मेरी वर्तमान कमजोरी से है तथा मेरे अनंत गुण और उनकी पर्याय मेरे अस्तित्व में मेरे कारण है, पर के कारण नहीं। क्षणिक राग मेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं है ह्न इसप्रकार शुद्धात्मा को स्वीकार करने पर सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् किसी भी ज्ञेय को जानने पर यह ऐसा क्यों? ऐसे अज्ञान द्वारा पर से रागादि होने की मान्यतारूप आश्चर्य नहीं होता। तत्पश्चात् सभी को जैसे हैं, वैसे यथार्थ जाननेवाला रहता है। इसके बाद सत् की रुचि काम करती है।

मेरे परिणाम में दया-दान, व्रत, काम क्रोधादि भाव मेरे कारण हैं। इस पर्यायसत् को पर्यायरूप जानने की रुचि, वह सत् रुचि है। फिर भी वह एक समय की अवस्था है; यदि कोई उसके अस्तित्व को ही स्वीकार न करे तो त्रिकाली स्वरूप का अस्तित्व ही नहीं रहता।

पुण्य-पाप रागादि विकार जितना ही मैं हूँ, पर के कारण मुझे रागादि होते हैं, राग के कारण मैं पर का कर सकता हूँ, शुभराग के अवलम्बन से अथवा गुणभेद के आश्रय से अथवा सच्चे देवादि से सम्यग्दर्शन होता है ह्न ये सभी मिथ्या मान्यताएँ हैं। इन्हें सच्चे ज्ञान द्वारा दूर करके, स्व आश्रय द्वारा स्वद्रव्य को अंगीकार करे तो सम्यग्दर्शन होता है।

इस तरह स्वज्ञेय को जाने तो यह भी जानता है कि राग, स्वभाव नहीं है; अपितु कमजोरी से होनेवाली मेरी पर्याय है, इसप्रकार उसे भी स्वज्ञेय

मानता है। किसी भी पर के कारण कभी किसी में लाभ-नुकसान आदि नहीं होता। पर्यायसत् को सत्रूप जाननेवाले को ऐसा कैसे? ऐसी अज्ञानमय विषमता नहीं होती; वह शुद्धि को बढ़ाता हुआ ज्ञान की महिमा को विस्तारता हुआ वीतरागता को ही लाता है।

सत् ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थों का ख्याल में लेनेवाला है; यदि ऐसा न हो तो कोई पदार्थ सत् और कोई असत् ठहरे और किसी का अस्तित्व किंचित् अर्थात् आंशिक सत् और आंशिक असत् ठहरे और कोई अवाच्य होना चाहिए, किन्तु यह तो विरुद्ध ही है।

गुण अनंत हैं और उनका आधार द्रव्य वह सामान्य ध्रुव है, उनकी समयवर्ती क्रमभावी पर्यायें एक समय मात्र की सत् हैं, उनका अस्तित्व भाववान में अपने से होता है। रागादि पर्याय स्वज्ञेय हैं, किन्तु पर्यायें द्रव्य-गुणरूप नहीं हैं।

''सर्व पदार्थों को सर्व प्रकार से एक अस्तित्व भाव द्वारा जानने पर कोई मिथ्या कल्पना नहीं होती। जैसे हैं वैसा ज्ञान जानता है। किसी को निगोद पर्याय तो किसी को पूर्ण सिद्ध पर्याय, कोई साधक तो कोई विराधक आदि जैसे हैं वैसे हैं।

परमाणु के अनेक प्रकार हैं, वे भी उनरूप उन्हीं से हैं। इसतरह समस्त ज्ञेय अस्तिरूप एक समय में हैं। उसमें यह कैसे? ऐसे मिथ्यात्व के जोरवाला विकल्प ज्ञानी को नहीं होता। कमजोरी से उठनेवाले विकल्पों का ज्ञान में समाधान वर्तता है। सामनेवाले के कारण मेरा धर्म-अधर्म नहीं है; उनके भाव उनमें है। सभी हैं ह्न ऐसा निश्चय करनेवाला ज्ञान, ज्ञान की विशालता प्रगट करता हुआ, ज्ञान में स्थिर रहता हुआ अकेले वीतराग-विज्ञान को सिद्ध करता हुआ केवलज्ञानरूप होता है।

समस्त पदार्थ हैं ह्न ऐसा कहने की योग्यता वचन की है। समस्त पदार्थ हैं, ऐसा जानने की योग्यता ज्ञान में है, समस्त पदार्थ हैं ह्न ऐसी सत् सामान्य रूप ज्ञेयत्व की योग्यता उन पदार्थों में हैं।

यदि ऐसा है तो फिर उसमें यह कैसे? अथवा यह नहीं होना चाहिए, यह न हो ह्र ऐसे विकल्पों को कोई अवकाश नहीं है। वे ज्ञेय हैं और मात्र जाननेवाला यह ज्ञान है ह्र इनमें विरोध क्या करना?

अरे! तुम बिगड़ गये ह्र तो यह पर्याय भी अस्तिरूप है। दूध गिर गया, घर बिगड़ गया, सम्हालना नहीं आया, तुमने ऐसा क्यों किया, किन्तु भाई! इसकी वर्तमान योग्यता के अनुसार यह क्यों नहीं बदलेगा? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तो अस्ति स्वभाव है। उसमें ऐसा कैसे? यह विकल्प नहीं होता; क्योंकि ऐसा ही जानने की उस समय ज्ञान की योग्यता भी है। इससमय ऐसा ही होगा ह्र इसप्रकार सभी के सत् स्वभाव को जाननेवाला वीतराग दृष्टिवंत है, इसके बल से वह वीतरागरूप परिणमित होता है।

जगत में सम-विषम विचित्रता जिस समय जो होती है, वह उसी के कारण है और मैं एकमात्र जाननेवाला हूँ ह्र ऐसा जाने, उसे द्रव्यदृष्टि की मुख्यता रहती है और स्व-सन्मुख निःशंक रुचि काम करती है, वह साधक दशा में कमजोरी से जो राग होता है, उसे पर के कारण हुआ नहीं देखता; अपितु उस पर्याय की भूमिका के अनुसार ऐसा भी होता है, इसप्रकार विवेकरूप अस्तित्व का ज्ञान स्थायी समता-वीतरागता का विस्तार करती है।

प्रश्न :ह्र सर्वज्ञ की वाणी में और ज्ञान में एक ही साथ सभी ऐसे हैं ह्र यह आता है, किन्तु अल्पज्ञ को कैसा आता है?

उत्तर :ह्र सम्पूर्ण स्व-पर ज्ञेय हैं; ये सभी उनके गुण-पर्याय सहित एक समय में सभी सम्पूर्ण अस्तित्व को धारण करते हैं; वे जैसे हैं, वैसे ही हैं, अल्पज्ञ को ऐसी सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान है। किसी के गुण-पर्याय की अस्ति किसी अन्य के द्वारा नहीं होती ह्र इस निर्णय में सच्चा पुरुषार्थ है।

भक्ति के भाव हुए, तब तो भगवान के दर्शन हुए ह्र साक्षात् तीर्थंकर प्रभु की उपस्थिति थी। वाह! इनसे मुझे भक्तिभाव प्रगट हुआ, इसप्रकार अनंतानुबंधी सहित का आश्चर्य ज्ञानी को नहीं होता; क्योंकि पर के कारण मुझे कुछ हो जाये ह्र ऐसा वे नहीं मानते। अचानक कोई क्रोधी

दुश्मन मारने के लिए आता हुआ दिखाई दिया तो जो भय हुआ, वह दुश्मन के कारण नहीं हुआ है।

अल्प कमजोरी के कारण जो अस्थिरता हुई है, वह ज्ञेय में जाती है; ज्ञान की उस समय की योग्यता उसे ही जानने की है। कोई दुश्मन अथवा मित्र नहीं है। मैं स्वज्ञेय और अन्य सभी पर ज्ञेय ह्र सभी एक समय में हैं। वे अपनी योग्यता के अनुसार कब नहीं पलटते? जहाँ देखे, वह इस समय ऐसा ही होता है ह्र ऐसा जानते हुए ज्ञानी को यह क्यों हुआ? इस जाति का मिथ्यादृष्टि को होनेवाला राग ज्ञानी को नहीं होता। जैसा केवली जानते हैं, वैसा ही मैं भी जाननेवाला हूँ ह्र ऐसी दृष्टि वीतराग दृष्टि है।

सभी एक ही साथ हैं और वैसा ही ज्ञान में तथा कथन में आता है। सर्व पदार्थों का अस्तित्व एक ही साथ जाना जा सके ह्र ऐसा निर्णय हो सकता है।

वस्तु स्वभावसिद्ध है, उसका ज्ञान-श्रद्धान करना धर्म है। ऐसे स्वरूप को मैं स्व-सन्मुख होकर जाननेवाला हूँ। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान में जो रहा है; उसे ही सच्चा दान, तप, व्रत, सामायिक, प्रतिक्रमणरूप धर्म यथार्थरूप में हुए और मिथ्यारूप भाव गये।

स्वरूप के ग्रहण में मिथ्यात्व के त्याग का प्रत्याख्यान हो जाता है। पर का ग्रहण-त्याग मेरे में नहीं, इसप्रकार अकेले जाननेवाले स्वभाव का ग्रहण हुआ, जो अपूर्व धर्म है। नव तत्त्वरूप सम्पूर्ण जगत जैसा है, वैसा ही है ह्र ऐसा ज्ञान करे तो सच्चा ज्ञान हो।

संख्या से अनेक और बहुत प्रकार के वृक्षों को समानरूप से दिखानेवाले संग्रहरूप सामान्य अस्तित्व द्वारा देखने पर जो पृथक्-पृथक् वृक्ष हैं, उनका अनेकत्व ढँक जाता है। इसीप्रकार प्रत्येक पदार्थ का पृथक्-पृथक्पना त्रिकाल है, फिर भी सभी को अस्तित्वरूप से देखने पर अनेकत्व ढँक जाता है।

अनन्त सुखी सिद्ध भी हैं, महादुःखी नित्य निगोद के जीव भी हैं, साधक-बाधक भी हैं, कोई एकावतारी हैं तो कोई अभव्य भी हैं ह्र ये

सभी एक समय के अस्तित्व में समा जाते हैं, इसमें यह कैसे? ऐसा मिथ्याजन्य क्षोभ या विस्मय ज्ञानी को नहीं होता; इसीलिये ऐसे अनेकत्वरूप विकल्प को वे ढँक देते हैं अर्थात् होने ही नहीं देते।

तीर्थंकर भगवान के मोक्ष जाने पर समवशरण बिखर जाता है, चक्रवर्ती के दीक्षा लेते ही नव निधान चले जाते हैं और सभी कुछ सूना लगता है तो ऐसा क्यों? ऐसा मिथ्याजन्य विस्मय ज्ञानियों को नहीं होता। उनके समय में वैसा ही होता है और ज्ञान भी ऐसा ही जाने ह्न यह ज्ञाता का धर्म है; इसके अतिरिक्त बाहर के क्रियाकाण्ड के लक्ष्य से शुभ-अशुभ राग करे तो उनकी धर्म मार्ग में कोई कीमत नहीं है।

द्रव्य-गुण-पर्याय द्वारा प्रत्येक पदार्थ का स्व-पने अस्तित्व है, किन्तु पररूप नहीं ह्न ऐसे विरोध रहित आत्मा में सत् दृष्टि होने के पश्चात् सत् कहने पर उसमें कुछ भी सत् बाकी नहीं रहता। इस आत्मा में विकार अथवा अविकार जैसे हैं, वैसे हैं तथा अन्य आत्माओं और परमाणु आदि की जो अवस्थाएँ जिस समय में जैसी होती हैं, वैसे ही हैं ह्न ऐसा मानना वीतरागी श्रद्धा है और इसीप्रकार ज्ञान स्वीकार करे, वह वीतरागता है।

जिस-जिस समय में जो अवस्था होनी है, वह वैसी ही होती है, उसमें यह कैसे? ऐसे विकल्प को अवकाश नहीं है। किसी ज्ञेय में अनुकूल-प्रतिकूल मानकर राग-द्वेषरूप विस्मय नहीं होता; क्योंकि जानना मेरा स्वरूप है, इसमें किसी को इष्ट-अनिष्ट मानने का विकल्प नहीं है। कमजोरी से जो राग हुआ, वह भी है ह्न ऐसा मात्र जाननेवाला मेरा स्वभाव है।

अनन्त पुद्गल तथा जीव की जिस समय जो अवस्थाएँ होती हैं, वे ऐसी हों तो ठीक, ज्ञानी ऐसा नहीं मानते। मैं तो मेरे ज्ञायक स्वभाव में रहकर स्व-पर ज्ञेयों को अस्तिरूप जाननेवाला ही हूँ, इसी का नाम धर्म है ह्न वीतरागता है ह्न ऐसा तीनों काल के त्रिलोकीनाथ भगवान ने जाना है और उनकी वाणी में भी ऐसा ही आया है।

यह विषय गूढ़ है। इस जीव ने सत् क्या है, यह अनंतकाल से नहीं

जाना। सभी द्रव्य अपनी शक्तियों से कायम रहकर परिणमन करते हैं; उन्हें परिणमित करने का, रखने का अथवा दूर करने का अधिकार किसी दूसरे का नहीं है। कायमी शक्ति से शक्तिमान पदार्थ रह रहा है ह्न ऐसा मानना सम्यग्दर्शन है। यह समझे बिना धर्म के नाम से जो कुछ भी करें ह्न उसमें यदि राग मंद हो तो पुण्य है, किन्तु धर्म नहीं।

सत् ह्न ऐसे सर्वपदार्थ हैं। और सत् ह्न ऐसा ज्ञान है, ये सर्वपदार्थ ऐसे ही हैं, आत्मा उनको जाननेवाला है, किन्तु यह होना चाहिए अथवा यह नहीं होना चाहिए ह्न ऐसा करनेवाला नहीं है। स्वरूप से पृथक्-पृथक् सभी पदार्थ रह रहे हैं। उन्हें एक ही समय में अस्तित्व जाननेवाला आत्मा है। ऐसे वीतराग स्वभाव की प्रतीति सम्यग्दर्शन है।

तीर्थंकर भगवान हैं, इसीलिये राग उत्पन्न होता है ह्न ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। जिसे रागादि भाव उत्पन्न होता है, उसे अपनी तत् समय की योग्यता से ही उत्पन्न होता है, कोई शत्रु आये, प्रतिकूलता दिखाई दे अथवा शरीर में रोग आता है ह्न यह भी उन्हीं के कारण हैं ह्न ऐसा जानकर उन्हें रंचमात्र भी खेद नहीं होता, अपितु एकमात्र आत्माश्रित ज्ञान ही आता है। कमजोरी से राग हो जाता है; वे तो वह भी है, उसे ज्ञेय बनाकर स्वसन्मुख वीतराग दृष्टि द्वारा स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की निर्मलता करते हैं।

सत् पदार्थ सत् ह्न ऐसा ज्ञान और 'सत्' ऐसा रागी सत् ह्न ये सभी एक समय में हैं। ऐसा कहनेवाली वाणी भी सत् पदार्थ में आ जाती है, फिर भी उसे पृथक् किया है। सत् ज्ञान के सामने सर्वज्ञेय ऐसे ही होते हैं। ज्ञानी किसी में फेरफार करना नहीं मानते। मात्र जाननेवाला सत् जो ज्ञान स्वभावी है, वही मैं हूँ ह्न ऐसी सत्य प्रतीति को भगवान ने सम्यग्दर्शन कहा है।

सत् है, ऐसा जाननेवाला ज्ञान प्रत्येक आत्मा का कायमी स्वभाव है। साधक अवस्था में कोई शुभ-अशुभ राग होने पर यह क्यों हुआ ह्न ऐसा ज्ञानी नहीं मानते; क्योंकि इसप्रकार का राग जिस समय है ह्न ऐसा उससमय में जानने की मेरी ज्ञान की योग्यता है। जाननहार स्वभाव में यह

हो और यह नहीं हो ह्न ऐसा नहीं होता, तो फिर पर का करूँ अथवा दूसरे की दया-सेवा कर सकता हूँ, यह बात कहाँ रही? अज्ञानी इसमें मेरा किया ह्न ऐसा मानता है, वही भ्रम है; इसका इसी के कारण इसके योग्य समय में हुआ है और मेरा मेरे से हुआ है ह्न ऐसा जाने तो सम्यग्दृष्टि है।

जगत की प्रत्येक वस्तु त्रिकाली है, जो स्वयं के आधार से ध्रुव रहकर परिणमन करती है। उसका कोई ईश्वर आदि कर्त्ता-हर्त्ता-धर्त्ता नहीं है। सभी जड़ व चेतन अनादि-अनंत स्वरूप से हैं और उनकी स्वभावरूप शक्ति त्रिकाली है तथा उनकी परिणमन करने की शक्ति प्रत्येक समय स्वतंत्र है ह्न इसे भूलकर मैं दूसरों को बिगाड़ूँ अथवा सुधारूँ, अच्छे निमित्तों को मिलाऊँ और खराब को छोड़ूँह्न ऐसा माननेवाला सत्‌रूप ज्ञान को स्वीकार नहीं करता और अनंत स्वतंत्र सत् का निषेध करता है।

सर्वज्ञ भगवान एक समय में सर्व को जानते हैं, किन्तु किसी के कर्त्ता-हर्त्ता-धर्त्ता नहीं है; इन्होंने किसी के धर्म को टिका कर नहीं रखा है, किन्तु धर्मी को क्या करना चाहिए? वह सर्वज्ञ भगवान बताते हैं। वे कहते हैं कि ह्न हमें सत् ज्ञान से सर्व को अस्तिरूप जानना चाहिए। द्रव्य-गुण-पर्यायवान छहों द्रव्य सभी विद्यमान ह्न सत् हैं, ज्ञान भी विद्यमान है। ये ज्ञात होने योग्य सभी पदार्थ सदा ही स्वतंत्र हैं, उन्हें जैसा हम देखते हैं, वैसा ही तू भी देख; जाननहार है तो सत् ज्ञानरूप जाननहार रह, कमजोरी से जो राग होता है, उसे भी स्वज्ञेयरूप से देख और मैं राग रहित त्रिकाली ज्ञानस्वभावी हूँ तथा किसी के द्वारा किसी का उत्पन्न होना, बदलना अथवा ध्रुव रहना नहीं है ह्न ऐसा जान!

सर्वज्ञ देव, सच्चे गुरु और सत् शास्त्र कैसे हैं, वह सभी इसमें आ जाता है; क्योंकि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र सर्व पदार्थों के सत् को जैसा है, वैसा ही बताते हैं?

जिस पदार्थ की, जिस समय, जो पर्याय होनी है; वह वैसी ही होती है, उसमें कोई भी फेर-फार नहीं कर सकता। जो सत् ज्ञान है, वह स्व-पर

ज्ञेय को वे जिसतरह, जैसे हैं, वैसा जान लेता है; किन्तु किसी में कुछ करे अथवा करावे ह्न ऐसी ताकत किसी के ज्ञान में और राग में भी नहीं है। ज्ञान ऐसा ही जाने और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र भी ऐसे सत् स्वरूप को बताते हैं ह्न ऐसा जाने तो उसने सच्चे-देव-गुरु-शास्त्र को स्वीकार किया है।

यहाँ तो महासादृश्य-अस्तित्व को स्वीकारते हैं; ऐसी पारमेश्वरी व्यवस्था है ह्न ऐसा बताते हैं। प्रत्येक पदार्थ की जिस समय जिस-जिस प्रकार की अवस्था होने योग्य होती है, वह उसी तरह उसी के कारण होती है, यह उसकी स्वतंत्र महिमावंत व्यवस्था है, जिसमें किसी दूसरे का कोई अधिकार नहीं है।

चाकू लगा, इसकारण खेद हुआ ह्न ऐसा नहीं है, अपितु अपनी ही कमजोरी से खेद हुआ है और उस समय ऐसा जानने का उसके ज्ञान का स्वभाव था। संयोग को देखनेवाला अज्ञानी यह नहीं मानता तो भी ऐसा ही वस्तु-स्वरूप है।

प्रत्येक वस्तु की पर्याय समय-समय उनकी योग्यता द्वारा नई-नई होती है; इसमें भव्य-अभव्य, सिद्ध-साधक, पुण्य-पाप सभी हैं, उन्हें अस्तिरूप जानना चाहिए।

कोयले को सोनेरूप न जाने, किन्तु इस समय वह कोयलेरूप है ह्न ऐसा जाने। उसे जाने, इसीलिये उसे बदल भी दे ऐसा नहीं है।

अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार का महाविचित्र परिणमन देखे, घोर उपसर्ग देखे तो इस समय में ऐसा ही होना होगा, जो ऐसा जाने तो उसका जोर सत्‌ज्ञान के ऊपर जाता है, किन्तु यह क्यों हुआ? इसप्रकार जो पर के कारण विकल्प उत्पन्न करता है, उसका जोर राग के ऊपर जाता है। इससमय होनेवाला ज्ञेय और होनेवाले ज्ञान की पर्याय ऐसी ही होनी थी। सत् को बतानेवाला कथन ऐसा ही होता है ह्न इसतरह जाननेवाले स्वभाव को स्वीकार करना सम्यग्दर्शन है।

सभी में सर्वगत लक्षण एक है ह्न ऐसा भगवान ने कहा है, ज्ञान ने जाना है और वाणी, वाणी के कारण आती है। अज्ञानी कहता है कि मेरे

से वाणी आती है, किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि आत्मा तो सदा ही अरूपी है, जिसमें वाणी नहीं भरी है। वाणी वाणी से है और मैं मेरे से हूँ ह्न ऐसा सत्ज्ञान जानता है।

स्व-पर ज्ञेय में अपूर्ण-पूर्ण, विकारी अथवा अविकारी पर्याय जैसी है; वैसी सत्रूप, उस समय होनेवाले भावरूप, होनेवाले ज्ञान द्वारा जानना, किन्तु उसमें फेर-फार करने का भाव न रखकर मात्र जाननहाररूप रहना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान है और अपने ज्ञायकरूप की श्रद्धा है ह्न ऐसा अनंत सर्वज्ञ भगवान ने कहा है।

जैसा है, वैसा जाननेवाला सत्यार्थ प्रकाशक ज्ञान तेरा स्वभाव है, और वही स्व सामर्थ्य है; यह पर में कुछ भी नहीं करता, मेरे कारण यह (पर-ज्ञेय) नहीं है और इनके कारण मैं नहीं हूँ ह्न ऐसा मानते ही अनंत पर-पदार्थों का अहंकार समाप्त हो जाता है। पर से लाभ-नुकसान होगा ह्न ऐसी दीनता दूर हो जाती है। यदि कोई प्रतिकूलता मिलेगी तो क्या होगा? जो सत् ज्ञान स्वभाव को मानता है, उसे ऐसा भय अथवा खेद नहीं होता।

सभी पदार्थ 'हैं' ऐसा जानने पर, सभी एक नहीं हो जाते, अपितु वे सभी एक समय में एक ही साथ अपने-अपने समय में प्रवर्तते हैं; उन सभी का ज्ञान होता है, यह ज्ञान किसी के साथ एकमेक नहीं होता।

सामान्य सत् का एकरूप होना मानने पर भी प्रत्येक के पृथक्त्व का नाश नहीं होता, अपितु प्रत्येक रजकण पृथक् रहता है। कर्म का उदय है, इसीलिये रागी जीव को राग है ह्न ऐसा नहीं है और रागी जीव को राग है ह्न इसीलिये कर्म का उदय है ह्न ऐसा भी नहीं है, अपितु उस समय राग करे तो होता है और नहीं करे तो नहीं हो। तथा राग है, इसीलिये उसको जाननेवाला ज्ञान है ह्न ऐसा भी नहीं है। सर्वज्ञेयों को जानने पर भी सभी से ज्ञान स्वभाव अधिक (भिन्न) है।

राग है, इसीलिये नये कर्म आते हैं और कर्म है; इसीलिये मैं बँधता हूँ ह्न ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। कर्म हैं, उनकी सत्ता की स्वीकृति है। ठंडा-

गरम, खट्टा-मीठा आदि पदार्थ एक समय में उनके स्थान में वे सभी हैं ह्न ऐसा जानने पर सत् ज्ञान उनमें एकमेक नहीं हो जाता।

इसप्रकार सत् ज्ञान, सत् ज्ञेय और सत् वाणी है। जैसी विद्यमान ह्न सत् को बतानेवाले हैं; यह ज्ञान वीतरागता का कारण है और इसी में धर्म भी आ गया। बाहर में शरीर की क्रिया के आश्रित सामायिक, उपवास, व्रत-तप में अनादि से धर्म मान रखा है; जबकि उसमें धर्म नहीं है, इसमें यदि राग घटाये तो पुण्य है। लोगों ने अभी धर्म के सही स्वरूप को सुना ही नहीं है। एक सैकण्ड का धर्म भी मोक्ष को निश्चित कर देता है।

प्रश्न :ह्न क्या स्वरूप-अस्तित्व ज्ञान का विषय और सादृश्य-अस्तित्व दर्शन का विषय है?

उत्तर :ह्न नहीं। दोनों ही ज्ञान के विषय हैं। सामान्य-विशेष एक-अनेक हैं ह्न ऐसा भेद करके जानना, वह ज्ञान है और भेद किये बिना सामान्य ही देखना। यह दर्शन चेतना है। ज्ञान स्व-पर ज्ञेय को 'है' ऐसा जानता है; उसमें श्रद्धा, दर्शन ह्न चेतना सभी आ जाते हैं।

यहाँ ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शन की बात है। सूक्ष्मज्ञान निर्मल होने पर ज्ञान आत्मा के ही आधार से है ह्न ऐसा ज्ञानी जानते हैं। यह पूर्ण वीतरागता के लक्ष्य से, पूर्णता के लक्ष्य से, ज्ञेय को जानने का अधिकार है।

इस तरह सभी का अस्तित्व है ह्न ऐसा उनमें अटके बिना सत् ज्ञान जाने, उसका नाम मोक्षमार्ग है। ये सभी इन्हीं से हैं; इन सभी को जाननेवाला मैं आत्मा हूँ। यदि सभी स्वतंत्र और भिन्न-भिन्न हैं ह्न ऐसा न जाने तो सर्व पदार्थों की पहिचान नहीं हो सकती। वीतराग मार्ग के सिवाय अन्य कहीं ऐसी व्यवस्था का प्रतिपादन हो नहीं सकता। वीतराग मार्ग कोई सम्प्रदाय का पक्ष नहीं है, अपितु यह तो वस्तु-स्वभाव का दर्शन है।

वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में साक्षात् सीमंधर भगवान विचरण करते हैं। ऐसे अनंत तीर्थंकर हो गये हैं, उन्होंने भी ऐसा ही कहा है। कोई भी द्रव्य-गुण-पर्याय किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध करके एकमेक नहीं हो जाता; एक सत्पने को मुख्य करते हैं, तब अनेकपना गौण होता है,

किन्तु किसी का अभाव नहीं होता।

एक निगोद शरीर में अनंत आत्मा हैं, वे सभी स्वयं अपनी पूर्ण शक्ति से रह रहे हैं, क्षेत्र की अपेक्षा एक साथ होने पर भी स्वरूप से तो ये अनंत आत्मायें सदा ही पृथक्-पृथक् हैं।

बीस वर्ष का पुत्र मरा, इसलिये मैं दुःखी हूँ ह्व ऐसा धर्मी जीव नहीं मानते। जो पर के कारण सुख-दुःख का होना मानते हैं, वे मूढ़ हैं। धर्मी जीव किसी को पिता-पुत्र, शत्रु-मित्र, अनुकूल-प्रतिकूल मानते ही नहीं। वे उनके कारण हैं और मैं मेरे कारण हूँ ह्व ऐसा स्वरूप होने पर भी किसी के कारण किसी में फेरफार होना माने तो उसने किसी भी सत् को नहीं माना; क्योंकि सभी के कारण वे स्वयं हैं ह्व ऐसा समय-समय का स्वतंत्र सत् है, उसका ज्ञान करना इसी का नाम धर्म है।

●

देहादि परपदार्थ तो अपने हैं ही नहीं; पर उन्हें अपना जाननेवाला हमारा ज्ञान, अपना माननेवाली हमारी श्रद्धा और उनमें राग-द्वेष करनेवाला चारित्र गुण का परिणमन भी मैं नहीं हूँ। यद्यपि ज्ञान जानता है कि ये मोह-राग-द्वेष के परिणाम अपनी ही विकारी पर्याय हैं, तथापि श्रद्धा उन्हें स्वीकार नहीं करती। अत: ज्ञान की अपेक्षा वे अपने हैं और श्रद्धा की अपेक्षा अपने नहीं हैं। श्रद्धा का श्रद्धेय तो अमल आत्मा ही है। श्रद्धा का हिसाब अलग है और ज्ञान का हिसाब अलग।

ह्व गागर में सागर, पृष्ठ-२५

प्रवचनसार गाथा १८

अब, द्रव्यों से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति होने का और द्रव्य से सत्ता का [१]अर्थान्तरत्व होने का खण्डन करते हैं। (अर्थात् ऐसा निश्चित करते हैं कि किसी द्रव्य से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती और द्रव्य से अस्तित्व कोई पृथक् पदार्थ नहीं है) :ह्व

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ॥१८॥

(हरिगीत)

स्वभाव से ही सिद्ध सत् जिन कहा आगमसिद्ध है।
यह नहीं माने जीव जो वे परसमय पहिचानिये ॥१८॥

अन्वयार्थ :ह्व [द्रव्यं] द्रव्य [स्वभावसिद्धं] स्वभाव से सिद्ध और [सत् इति] (स्वभाव से ही) 'सत्' है, ऐसा [जिनाः] जिनेन्द्रदेवों ने [तत्त्वतः] यथार्थतः [समाख्यातवन्तः] कहा है; [तथा] इसप्रकार [आगमतः] आगम से [सिद्धं] सिद्ध है; [यः] जो [न इच्छति] इसे नहीं मानता [सः] वह [हि] वास्तव में [परसमयः] परसमय है।

टीका :ह्व वास्तव में द्रव्यों से द्रव्यान्तरों की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं। (उनकी) स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनता से है; क्योंकि [२]अनादिनिधन साधनान्तर की अपेक्षा नहीं रखता। वह गुण-पर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभाव को ही ह्व जो कि मूल साधन है, उसे धारण करके स्वयमेव सिद्ध हुआ वर्तता है।

जो द्रव्यों से उत्पन्न होता है, वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, [३]कादाचित्कपने के कारण पर्याय है; जैसे ह्व द्विअणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि। द्रव्य तो अनवधि (मर्यादा रहित) त्रिसमय-अवस्थायी (त्रिकालस्थायी) होने से उत्पन्न नहीं होता।

१. अर्थान्तरत्व=अन्य पदार्थपना।
२. अनादिनिधन=आदि और अन्त से रहित। (जो अनादि-अनन्त हो, उसकी सिद्धि के लिए अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है।)
३. कादाचित्क = कदाचित् ह्व किस समय हो ऐसा; अनित्य।

अब इसप्रकार ह्न जैसे द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध है, उसीप्रकार '(वह) सत् है' ह्न ऐसा भी उसके स्वभाव से ही सिद्ध है, ऐसा निर्णय हो; क्योंकि सत्तात्मक ऐसे अपने स्वभाव से निष्पन्न हुए भाववाला है (द्रव्य का 'सत् है' ह्न ऐसा भाव द्रव्य के सत्तास्वरूप स्वभाव का ही बना हुआ है)।

द्रव्य से अर्थान्तरभूत सत्ता उत्पन्न नहीं है (नहीं बन सकती, योग्य नहीं है) कि जिसके समवाय से वह (द्रव्य) 'सत्' हो। (इसी को स्पष्ट समझाते हैं) :ह्न

प्रथम तो [1]सत् से [2]सत्ता की [3]युतसिद्धता से अर्थान्तरत्व नहीं है; क्योंकि दण्ड और दण्डी की भाँति उनके सम्बन्ध में युतसिद्धता दिखाई नहीं देती। (दूसरे) अयुतसिद्धता से भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता। 'इसमें यह है (अर्थात् द्रव्य में सत्ता है)' ऐसी प्रतीति होती है, इसलिये वह बन सकता है ह्न ऐसा कहा जाये तो (पूछते हैं कि) इसमें यह है, ऐसी प्रतीति किसके आश्रय (कारण) से होती है? यदि ऐसा कहा जाये कि भेद के आश्रय से (अर्थात् द्रव्य और सत्ता में भेद होने से) होती है तो वह कौन-सा भेद है? प्रादेशिक या अताद्भाविक? [4]प्रादेशिक तो है नहीं; क्योंकि युतसिद्धत्व पहले ही रद्द (नष्ट, निरर्थक) कर दिया गया है और यदि [5]अताद्भाविक कहा जाये तो वह उपपन्न ही (ठीक ही) है, क्योंकि ऐसा (शास्त्र का) वचन है कि 'जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है' परन्तु (यहाँ

१. सत् = अस्तित्ववान् अर्थात् द्रव्य।
२. सत्ता = अस्तित्व (गुण)
३. युतसिद्ध = जुड़कर सिद्ध हुआ; समवाय से ह्न संयोग से सिद्ध हुआ। (जैसे लाठी और मनुष्य के भिन्न होने पर भी लाठी के योग से मनुष्य लाठीवाला होता है, इसीप्रकार सत्ता और द्रव्य के अलग होने पर भी सत्ता के योग से द्रव्य सत्तावाला (सत्) हुआ है ह्न ऐसा नहीं है। लाठी और मनुष्य की भाँति सत्ता और द्रव्य अलग दिखाई नहीं देते। इसप्रकार लाठी और लाठीवाले की भाँति सत्ता और सत् के संबंध में युतसिद्धता नहीं है।)
४. द्रव्य और सत्ता में प्रदेशभेद है; क्योंकि प्रदेशभेद हो तो युक्तसिद्धत्व आये, जिसको पहले ही रद्द करके बताया है।
५. द्रव्य वह गुण नहीं है और गुण वह द्रव्य नहीं है ह्न ऐसे द्रव्य-गुण के भेद को (गुण-गुणी-भेद को) अताद्भाविक (तद्रूप न होनेरूप) भेद कहते हैं। यदि द्रव्य और सत्ता में ऐसा भेद कहा जाये तो वह योग्य ही है।

भी यह ध्यान में रखना कि) यह अताद्भाविक 'भेद एकान्त से इसमें यह है' ह्न ऐसी प्रतीति का आश्रय (कारण) नहीं है, क्योंकि वह (अताद्भाविक भेद) स्वयमेव [1]उन्मग्न और [2]निमग्न होता है। वह इसप्रकार है :ह्न जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त कराई जाये (अर्थात् जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करती है ह्न पहुँचती है ह्न इसप्रकार पर्यायार्थिकनय से देखा जाये) तब हीह्न 'शुक्ल यह वस्त्र है', यह इसका शुक्लत्व गुण है' ह्न इत्यादि की भाँति 'गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है', इसप्रकार अताद्भाविक भेद उन्मग्न होता है; परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाये (अर्थात् द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करता है, पहुँचता है ह्न इसप्रकार द्रव्यार्थिकनय से देखा जाये), तब जिसके समस्त [3]गुणवासना के उन्मेष अस्त हो गये हैं ह्न ऐसे उस जीव को ह्न 'शुक्लवस्त्र ही है।' इत्यादि की भाँति ह्न 'ऐसा द्रव्य ही है', इसप्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद निमग्न होता है। इसप्रकार भेद के निमग्न होने पर उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति निमग्न होती है। उसके निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना निमग्न होता है। इसलिए समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है। और जब भेद उन्मग्न होता है, वह उन्मग्न होने पर उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति उन्मग्न होती है, उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्व अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है। तब भी (वह) द्रव्य के पर्यायरूप से उन्मग्न होने से ह्न जैसे जलराशि से जलतरंगें व्यतिरिक्त नहीं हैं (अर्थात् समुद्र से तरंगें अलग नहीं हैं) उसीप्रकार ह्न द्रव्य से व्यतिरिक्त नहीं होता।

ऐसा होने से (यह निश्चित हुआ कि) द्रव्य स्वयमेव सत् है। जो ऐसा नहीं मानता, वह वास्तव में 'परसमय' (मिथ्यादृष्टि) ही मानना।

१. उन्मग्न होना = ऊपर आना; तैर आना; प्रगट होना (मुख्य होना)।
२. निमग्न होना = डूब जाना (गौण होना)।
३. गुणवासना के उन्मेष = द्रव्य में अनेक गुण होने के अभिप्राय की प्रगटता; गुणभेद होनेरूप मनोवृत्ति के (अभिप्राय के) अंकुर।

गाथा १८ पर प्रवचन

जैसे प्रत्येक पदार्थ (अस्तिरूप) है, वैसे ही ज्ञान में जानने की शक्ति है अर्थात् सत् ज्ञान सामर्थ्य से भरा हुआ आत्मा, आत्मा की तरफ झुकता है, इसी का नाम सभी को जाननेवाला है। राग को जानने पर उसमें एकत्व का काम नहीं करता, इसीतरह वह सभी को जानता है, किन्तु किसी में फेर-फार करने का काम नहीं करता; इसी का नाम वीतराग दृष्टि है।

यहाँ कहते हैं कि एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की, किसी के गुण से दूसरे के गुण की अथवा पर्याय की उत्पत्ति नहीं हो सकती, द्रव्य में समय-समय नई-नई पर्याय उत्पन्न हुआ करती है, किन्तु इससे दूसरी नई वस्तु नहीं होती। जैसे आटे में से रोटी होती है, वैसे रोटी में से जीव के ज्ञान-सुखादि उत्पन्न नहीं होते। किसी संयोग से गुण एकमेक होकर, द्रव्य बढ़े अथवा पुष्ट हो ह्न ऐसा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में उसकी अनंत शक्तियाँ हैं; उसमें से क्रमबद्ध पर्याय नई-नई उत्पन्न होती है। जो है, उसमें से होती है, किसी अन्य से नहीं।

बाहर में व्रत-तप के शुभभाव करे तो पुण्य बँधता है, किन्तु अविकारी स्वभाव नहीं बढ़ता, आत्मा का उपधान नहीं होता। धर्मी जीव को एक ही साथ निर्मल पर्याय बहुत बढ़ जाये और पुद्गल में वर्णादि की एकदम वृद्धि दिखाई दे, उसमें उसका अस्तित्व प्रगट होता है। बाहर से कोई आकर काम कर जाये ह्न ऐसा नहीं है।

किसी भी गुणी (द्रव्य) से गुण पृथक् नहीं रहते, किन्तु आत्मा के अथवा पुद्गल के जो-जो अनंतगुण हैं, वे पर से पृथक् रहकर स्व-द्रव्य से ही कार्य करते हैं। जो नई पर्याय उत्पन्न होती है, वह उसके द्रव्य को सिद्ध करती है, किन्तु वह किसी दूसरे द्रव्य-क्षेत्र को सिद्ध नहीं करती।

शरीर में आत्मा है, इसीलिये खून (रक्त) है ह्न ऐसा नहीं है; अपितु जो रक्त है, वह परमाणु की सत्ता को सिद्ध करता है। आत्मा में ज्ञान-चारित्र आदि पर्याय कम थी और अब बढ़ी तो वह देव-गुरु-शास्त्र, आहार-पानी, प्रकाश में से नहीं आई है, किन्तु अपने द्रव्य-गुण की

अनंत सामर्थ्य से पर्याय की उत्पत्ति होती है और द्रव्य से अस्तित्व कोई पृथक् पदार्थ नहीं है ह्न वह यहाँ कहते हैं।

आत्मा आदि प्रत्येक द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध ह्न निश्चित है और सत्तागुण द्वारा अनादि से सत् है ह्न ऐसा जिनदेव ने वास्तव में कहा है। यही आगम से भी निश्चित है, फिर भी जो ऐसा नहीं मानता, वह संयोग से देखनेवाला वास्तव में पर्यायमूढ़ है?

''वास्तव में अनादि सत् द्रव्य होने से द्रव्यों से दूसरे द्रव्य की अथवा गुण की उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभाव से ही अपने गुण-पर्याय से सिद्ध हुए हैं; किन्तु कोई ईश्वर कर्ता है; इसलिए वे हुए हैं ह्न ऐसा नहीं है।

ऐसा अनादि-अनंत व्यवस्थितरूप स्वयं अपनी सत्ता से है। सभी द्रव्य अपने गुण-पर्याय से ही स्वयंसिद्ध हैं, कोई परमेश्वर उनका कर्ता नहीं है। अपितु उनकी नई-नई पर्याय का उत्पाद और पुरानी का व्यय करनेवाला स्वयं वह द्रव्य है।

जड़ परमाणु आदि अपने जड़त्व में स्वयं हैं, इसीतरह चेतन भी अपने गुण-पर्यायों में खुद स्वयं सिद्ध है। जो ऐसा नहीं मानता, वह स्व-पर किसी को भी नहीं मानता।

पुत्र, पैसा, रोटी आदि किसी दूसरे से नहीं आते, अपितु पुद्गल परावर्तन के समय में उस द्रव्य की पर्याय जो उसमें होने योग्य थी, वही हुई है। इन द्रव्यों की नई-नई पर्यायों का उत्पन्न होना स्वयं उनसे होता है और प्रत्येक गुण-गुणी अपने से अभेद और अनादि-अनंत होने से नई-नई अवस्था करने में और पुरानी अवस्था को बदलने के लिए किसी दूसरे साधन की अपेक्षा नहीं रखते।

प्रत्येक आत्मा आदि सभी द्रव्य अपने गुण-पर्याय स्वभाव को धारण करके वर्तते हैं; किन्तु किसी दूसरे द्रव्य-गुण-पर्याय के आधार अथवा प्रभाव से किसी का अस्तित्व नहीं है, अपितु सभी अनादि-अनंत स्वयं से ही रह रहे हैं।

आत्मा और परमाणुओं द्वारा अपनी-अपनी नई-नई अवस्था होती है। यह द्रव्यांतर अन्य द्रव्य नहीं, किन्तु अनित्य होने से पर्याय है। द्रव्य-गुण ध्रुव हैं और पर्याय एक-एक समय जितनी नई-नई होती है। लोहे में से राख होती है, वनस्पति के टुकड़े हो जाते हैं; वे नये द्रव्य नहीं हुए हैं, अपितु द्रव्य में से पर्याय हुई है। पर्याय में से पर्याय नहीं होती है।

यदि दो परमाणु एक हुए तो नया द्रव्य नहीं हुआ है, अपितु पर्याय नई हुई है। दो परमाणु के स्कंध पर्याय का व्यय होकर तीन अणु की स्कंधरूप पर्याय होती है तो यह पर्याय में से पर्याय नहीं हुई है, अपितु द्रव्य में से हुई है।

प्रश्न :ह्न क्या पर्याय में से पर्याय नहीं होती?

उत्तर :ह्न नहीं। फिर भी कोई मानता है कि पहले दस परमाणु का पिण्ड था, उसमें पाँच परमाणु का पिण्ड और मिल गया तो पूर्व पर्याय से नई पर्याय हुई ह्न जबकि ऐसा नहीं है, अपितु उसके द्रव्य-गुण के आश्रय से ही नई-नई पर्याय होती है।

चौमासे (बरसात) में बहुत से रजकण अपनी योग्यता से एक होकर मेंढक आदि बन जाते हैं, हजारों वनस्पतियाँ उग जाती हैं तो क्या जगत में जीव और रजकण नहीं थे और नये उत्पन्न हुए हैं? अथवा द्रव्य में से नये द्रव्य हुए हैं? द्रव्य-गुण किसी के नये नहीं होते, अपितु द्रव्य में से पर्याय ही नई होती है।

पहले जो परमाणु स्थूलरूप दिखाई नहीं देता था, किन्तु अब दिखाई दे रहा है तो वह उसके समय में उसकी योग्यता के कारण सूक्ष्म में से स्थूल अवस्थारूप हुआ है। बादल आदि तथा मनुष्य शरीर आदि पर्यायें नई-नई होती हैं, किन्तु द्रव्य नया नहीं होता।

अब, जैसा द्रव्य त्रिकाली होने से नया नहीं होता; वैसे ही सत्ता नाम का गुण भी गुणी ह्न ऐसे द्रव्य में अनादि स्वभाव से ही सिद्ध है; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य का सत् है ह्न ऐसा भाव द्रव्य के सत्तास्वरूप स्वभाव का ही बना हुआ है। द्रव्य से सत्ता पृथक् नहीं है कि जिसके जुड़ने से द्रव्य सत्तावान कहलाये।

कोई तो मानते हैं कि संयोग से नये गुण आते हैं, जैसे ह्न मिट्टी में पहले गंध नहीं थी, किन्तु पानी गिरने पर नई गंध आई है, किन्तु ऐसा नहीं है, अपितु गंध गुण की जो अव्यक्त पर्याय थी, वह स्थूलरूप से व्यक्त हुई है। गुण तो गुणी से कभी भी पृथक् नहीं होते।

(१) जैसे लकड़ी के संयोग से मनुष्य लकड़ीवाला कहलाता है, वैसे ही सत् द्रव्य का सत्तावानपना सत्ता से जुड़कर नहीं हुआ है। आत्मा और उसके ज्ञानादि गुण अथवा सत्तागुण पर से जुड़े नहीं हैं, अपितु स्वभाव से एकरूप हैं। लकड़ी और लकड़ीवाले के समान सत्ता और सत् में युतसिद्धपना नहीं है।

(२) अयुतसिद्धपने द्वारा भी सत् और सत्ता एक नहीं हुए हैं। आत्मा और सत्ता पर से जुड़ी है ह्न यह तो सिद्ध नहीं होता, किन्तु जैसे अग्नि में उष्णता है, वैसे ही द्रव्य में सत्ता जुड़ी हुई है ह्न ऐसा नहीं है।

गुणी में गुण है ह्न ऐसा कहते हो तो हम पूछते हैं कि तुम ऐसा किससे मानते हो? यदि गुण-गुणी भेद के आश्रय से मानते हो तो क्या भेद है? (अर्थात्) उनमें प्रदेशभेद है अथवा अताद्भाविक भेद है? थाली में भोजन के, समान गुण-गुणी में प्रदेशभेद तो नहीं है; क्योंकि उनमें युतसिद्धपने का तो पहले से ही निषेध किया है और अताद्भाविक भेद अर्थात् गुण, वह द्रव्य नहीं है और द्रव्य, वह गुण नहीं है ह्न इसप्रकार द्रव्य और सत्ता कथंचित् भेद कहो तो वह योग्य ही है। एकांत भेद नहीं है, अपितु अनेकांत है।

जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करती है, तब (कहा जाता है कि) यह सफेद वस्त्र है और यह इसका सफेद गुण है, इसप्रकार पर्यायार्थिकनय से ह्न भेददृष्टि से देखने पर; यह इसका गुण है, यह द्रव्य, गुणवाला है ह्न इसप्रकार अताद्भाविक भेद मुख्य होता है, परन्तु द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करता है ह्न ऐसा अभेदपना देखनेवाले द्रव्यार्थिकनय से देखने पर समस्त भेदवासना का अभिप्राय, गुण-भेद का विकल्प नहीं रहता और इससे भेदाश्रित प्रतीति भी डूब जाती है।

गुणी और गुण के लक्षण पृथक् हैं ह्न ऐसे भेद को गौण करनेवाली अभेददृष्टि में गुण के विकल्प नहीं रहते। यहाँ पर की तो बात ही नहीं है अथवा गुण-गुणी का प्रदेशभेद तो है ही नहीं; गुणभेद भी भेददृष्टि को मुख्य करने पर ही मालूम पड़ते हैं; किन्तु अभेददृष्टि से देखने पर ऐसा भेद नहीं दिखता। द्रव्य में डूब जाने पर भेद के भी विकल्प नहीं उठते तो फिर परद्रव्य-क्षेत्रादि को देखने की बात ही नहीं है।

पर्वत की यात्रा करने से आकुलता होती है; क्योंकि उसमें पराश्रय है, इसीलिये आकुलता को दूर करके सुखरूप होना हो तो इस अनंतगुण के पिण्डरूप स्वद्रव्य के पर्वत की यात्रा कर उसे अभेदरूप देख; निर्विकल्प दशा में गुण-गुणी का भेद नहीं रहता।

जैसे जलराशि से जल की कल्लोलें (लहरें) पृथक् नहीं हैं अर्थात् समुद्र से लहरें पृथक् नहीं हैं, वैसे ही द्रव्य से गुण-पर्यायें पृथक् दिखाई नहीं देतीं। द्रव्य और उसके अनंतगुण राशि से उत्पन्न होनेवाली उसकी पर्यायें पृथक् नहीं हैं, किन्तु एक सत् की अभेद सत्ता है; उसमें दूसरे के साथ संयोग से गुण या पर्याय नहीं होती।

प्रत्येक परमाणु की क्रिया उसी परमाणु से होती है और आत्मा की क्रिया आत्मा से ही होती है। प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण सामर्थ्यवाला अनादि सत् होने से स्वयं ही अपना-अपना ईश्वर है; इसीलिए वह दूसरे किसी संयोग, क्षेत्र, काल आदि की अपेक्षा नहीं रखता और अपनी नई-नई अवस्थाओं को स्वयं करता है ह्न इसका नाम सम्यक् एकान्त है और यही धर्म है ह्न ऐसा जो नहीं मानता वह मिथ्या एकांतवादी परसमय है, मूढ है। इसप्रकार माने बिना धर्म नहीं होता; उसके दया-दान, पूजा-भक्ति आदि सभी एक के बिना के शून्य है।

●

प्रवचनसार गाथा ११

अब, यह बतलाते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य 'सत्' है :ह्न

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो ॥११॥

(हरिगीत)

स्वभाव में थित द्रव्य सत् सत् द्रव्य का परिणाम जो।
उत्पादव्ययध्रुवसहित है वह ही पदार्थस्वभाव है ॥११॥

अन्वयार्थ :ह्न [स्वभावे] स्वभाव में [अवस्थितं] अवस्थित (होने से) (द्रव्यं) द्रव्य [सत्] 'सत्' है; [द्रव्यस्य] द्रव्य का [यः हि] जो [स्थितिसंभवनाशसंबद्धः] उत्पादव्ययध्रौव्य सहित [परिणामः] परिणाम है [सः] वह [अर्थेषु स्वभावः] पदार्थों का स्वभाव है।

टीका :ह्न यहाँ (विश्व में) स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से द्रव्य 'सत्' है। स्वभाव द्रव्य का ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकतास्वरूप परिणाम है।

जैसे [1]द्रव्य का वास्तु समग्रपने द्वारा (अखण्डता द्वारा) एक होने पर भी, विस्तारक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे प्रदेश हैं; इसीप्रकार द्रव्य की [2]वृत्ति समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे परिणाम हैं। जैसे विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है, उसीप्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर [3]व्यतिरेक है।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से

१. द्रव्य का वास्तु = द्रव्य का स्व-विस्तार, द्रव्य का स्व-क्षेत्र, द्रव्य का स्व-आकार, द्रव्य का स्व-दल। (वास्तु = घर, निवास स्थान, आश्रय, भूमि।)
२. वृत्ति = वर्तना वह; होना वह; अस्तित्व।
३. व्यतिरेक = भेद; (एक का दूसरे में) अभाव, (एक परिणाम दूसरे परिणामरूप नहीं है, इसलिये द्रव्य के प्रवाह में क्रम है।)

विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर [१]अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसीप्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं। और जैसे वास्तु का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व प्रदेश के विनाशस्वरूप है, वही (अंश) उसके बाद के प्रदेश का उत्पाद स्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुभय स्वरूप है (अर्थात् दो में से एक भी स्वरूप नहीं है), इसीप्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व परिणाम के विनाशस्वरूप है, वही उसके बाद के परिणाम के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

इसप्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणाम पद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य स्वभाव का [२]अतिक्रम नहीं करता; इसलिये [३]सत्त्व को [४]त्रिलक्षण ही [५]अनुमोदना चाहिए ह्न मोतियों के हार की भाँति।

जैसे ह्न जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है ह्न ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं; इसलिये, और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते; इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता सूत्र अवस्थित होने से त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। इसीप्रकार जिसने [६]नित्यवृत्ति ग्रहण की है ह्न ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य में, अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट) होते हुए समस्त परिणामों में पीछे-पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के

१. अनुस्यूति = अन्वयपूर्वक जुड़ान। (सर्व परिणाम परस्पर अन्वयपूर्वक (सादृश्य सहित) गुँथित (जुड़े) होने से, वे सब परिणाम एक प्रवाहरूप से हैं; इसलिये वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं।)

२. अतिक्रम = उल्लंघन; त्याग।

३. सत्त्व = सत्पना; (अभेदनय से) द्रव्य।

४. त्रिलक्षण = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ह्न ये तीनों लक्षणवाला; त्रिस्वरूप; त्रयात्मक।

५. अनुमोदना = आनंद से सम्मत करना।

६. नित्यवृत्ति = नित्य स्थायित्व; नित्य अस्तित्व; सदा वर्तना।

परिणाम प्रगट होते हैं; इसलिये, और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं; इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ :ह्न प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है, इसलिये 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश वह प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश, वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एक प्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप - ध्रुव रहता है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समयभेद नहीं है, तीनों ही एक ही समय में हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य स्वभाव से ही सदा रहता है; इसलिये द्रव्य स्वयं भी, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है।

गाथा ११ पर प्रवचन

प्रवचनसार की यह गाथा अलौकिक है। इस गाथा में आचार्यदेव ने वस्तुस्वभाव का रहस्य भर दिया है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्त परिणाम द्रव्य का स्वभाव है और उस स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है, इसलिए द्रव्य सत् है।

यहाँ द्रव्य के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए आचार्यदेव द्रव्य के असंख्यप्रदेशी क्षेत्र का उदाहरण देते हैं। जिसप्रकार द्रव्य को संपूर्ण विस्तार अर्थात् क्षेत्ररूप से लक्ष्य में लिया जाये तो उसका वास्तु (क्षेत्र) एक है, उसीप्रकार संपूर्ण द्रव्य के तीनों काल के समय-समय के परिणामों को एकसाथ लक्ष्य में लिया जाये तो उसकी वृत्ति एक है। जिसप्रकार क्षेत्र में प्रदेशक्रम है, उसीप्रकार द्रव्य के परिणमन में प्रवाहक्रम है। जिसप्रकार द्रव्य के विस्तारक्रम का अंश प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाहक्रम का अंश परिणाम है।

देखो, यह प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार है; अतः यहाँ कहा है कि समस्त ज्ञेय सत् हैं। वे जैसे हैं, वैसे एकसाथ ज्ञान में ज्ञात होते हैं। आत्मा

ज्ञान का सागर है और समस्त लोक ज्ञेयों का सागर है तथा दोनों में मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, कर्त्ता-कर्म या भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध नहीं है। बस, इसी में से वीतरागता निकलती है; क्योंकि मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धों में राग-द्वेष अथवा उनमें फेरफार करने-कराने की बुद्धि नहीं होती। देखो, आचार्यदेव ने प्रत्येक गाथा में वीतरागता के बीज बोए हैं, अतः सभी गाथाओं में से वीतरागता निकलती है।

समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में भी यही कहा है कि द्रव्य अपने क्रमबद्ध परिणाम से उत्पन्न होता है। यह बात कहकर वहाँ सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण विषय बतलाया है, द्रव्यदृष्टि कराई है। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है, अतः समस्त द्रव्य परिणमन-स्वभाव में स्थित हैं ह्न ऐसा कहकर पूर्ण ज्ञान और पूर्ण ज्ञेय बतलाये हैं। ऐसे सर्व ज्ञेयों के स्वभाव को और उन्हें जाननेवाले ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा करना ही सम्यग्दर्शन है।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु और धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य पृथक्-पृथक् स्वयंसिद्ध पदार्थ हैं। सामान्यतया देखने पर प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र अखण्ड है; एक है, तथापि उस क्षेत्र के विस्तार का जो सूक्ष्म अंश है, वह प्रदेश है। छह द्रव्यों में से परमाणु और काल का क्षेत्र एकप्रदेशी ही है तथा आत्मा का क्षेत्र असंख्यातप्रदेशी है। वह समग्ररूप से एक होने पर भी उसका अंतिम अंश प्रदेश है। इसप्रकार यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त है और वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामों को समझना सिद्धांत है। जिसप्रकार असंख्यप्रदेशी विस्तार को एकसाथ लेने से द्रव्य का क्षेत्र एक है, उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य की अनादि-अनंत परिणमनधारा समग्ररूप से एक है तथा उस सम्पूर्ण प्रवाह का छोटे से छोटा एक अंश परिणाम है। प्रत्येक परिणाम को पृथक् किये बिना समग्ररूप से द्रव्य के अनादि-अनंत प्रवाह को देखने पर वह एक है। अनादि निगोद से लेकर अनंत सिद्धदशा तक द्रव्य का परिणमन एक ही है। जिसप्रकार द्रव्य का सम्पूर्ण क्षेत्र एक साथ फैला है, उसे प्रदेशभेद से न देखा जाये तो उसका क्षेत्र एक ही है; उसी प्रकार त्रिकाली द्रव्य के प्रवाह में परिणाम का भेद न किया जाये तो सम्पूर्ण प्रवाह एक ही है और उस त्रिकाली प्रवाहक्रम का प्रत्येक अंश परिणाम है।

''यहाँ प्रदेशों का विस्तारक्रम क्षेत्र-अपेक्षा से है और परिणामों का प्रवाहक्रम परिणमन-अपेक्षा से है। यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त देकर आचार्यदेव परिणामों का स्वरूप समझाना चाहते हैं।

यह ज्ञान में ज्ञात होने योग्य ज्ञेय पदार्थों का वर्णन है। यद्यपि बात सूक्ष्म है, तथापि भाई! ये सब ज्ञेय हैं, अतः ज्ञान में अवश्य ज्ञात हो सकते हैं और तेरा ज्ञानस्वभाव समस्त ज्ञेयों को जान सकता है। आत्मा ज्ञाता है और स्वयं स्वज्ञेय भी है तथा अन्य जीव-पुद्गलादि परज्ञेय हैं।

धर्मास्तिकाय आदि के असंख्यप्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे ह्न फैले हुए हैं, आकाश के अनंत प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे ह्न फैले हुए हैं, उनमें कभी एक भी प्रदेश का क्रम आगे-पीछे नहीं होता; उसीप्रकार द्रव्य का अनादि-अनंत प्रवाहक्रम भी कभी खण्डित नहीं होता। प्रवाहक्रम कहकर आचार्यदेव ने अनादि-अनंत ज्ञेयों को एकसाथ व्यवस्थित बतला दिया है। प्रवाहक्रम कहने से समस्त परिणामों का क्रम व्यवस्थित ही है, कोई भी परिणाम अर्थात् कोई भी पर्याय आगे-पीछे नहीं होती। इस प्रतीति में ही द्रव्यदृष्टि और वीतरागता है।

यहाँ समय-समय के परिणामों का एकदम सूक्ष्म सिद्धांत समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण दिया है। यद्यपि वह भी सूक्ष्म मालूम होता है, परन्तु परिणाम की अपेक्षा तो स्थूल ही है। यदि अपने लक्ष्य में वस्तु का स्वरूप आ जाये तो समझ में आना कठिन नहीं है। जीने (सीढ़ी) का दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार क्षेत्र से देखने पर पूरा जीना ऐसे का ऐसा स्थित है; उसका छोटा अंश प्रदेश है और जीने की लम्बाई से देखने पर एक के बाद एक सीढ़ियों का प्रवाह है, पूरे जीने का प्रवाह एक है। उसकी एक-एक सीढ़ी उसके प्रवाह का अंश है, उन सीढ़ियों के प्रवाह का क्रम टूटता नहीं, दो सीढ़ियों के बीच में भी छोटे-छोटे भाग किये जायें तो अनेक भाग होते हैं, उस चढ़ते हुए प्रत्येक सूक्ष्म भाग को परिणाम समझना चाहिए। उसीप्रकार आत्मा असंख्य प्रदेशों में फैला

हुआ एक है और उसके क्षेत्र का प्रत्येक अंश प्रदेश है तथा संपूर्ण द्रव्य का अस्तित्व अनादि-अनंत प्रवाहरूप से एक है और उस प्रवाह का प्रत्येक समय का अंश परिणाम है। उन परिणामों का प्रवाहक्रम जीने की सीढ़ियों की भाँति क्रमबद्ध है। परिणामों का वह प्रवाहक्रम आगे-पीछे नहीं होता, इसलिये सब-कुछ जैसा है, वैसा जानना ही आत्मा का स्वभाव है। वस्तु जैसी हो, वैसी न मानकर उसे अन्य प्रकार से माने तो वे ज्ञान व श्रद्धा दोनों सच्चे नहीं हैं।

अब उन परिणामों का एक-दूसरे में अभाव बतलाते हैं। जिसप्रकार विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है, उसीप्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है।

द्रव्य में विस्तारक्रम का कारण अर्थात् क्षेत्र-अपेक्षा से विस्तार का कारण प्रदेशों का परस्पर भिन्नत्व है। पहले प्रदेश का दूसरे में अभाव ह्र इसप्रकार प्रदेशों के भिन्न-भिन्नपने के कारण विस्तारक्रम रचा हुआ है। यदि एक का दूसरे में अभाव न हो और एक प्रदेश दूसरे में भी भावरूप से वर्तता हो, सब मिलकर एक ही प्रदेश हो तो द्रव्य का विस्तार ही न हो। द्रव्य एकप्रदेशी ही हो जाये, इसलिए विस्तारक्रम कहने से ही प्रदेश एक-दूसरे के रूप से नहीं हैं ह्र ऐसा आ जाता है। विस्तारक्रम अनेकता का सूचक है, क्योंकि एक में क्रम नहीं होता। सब में एकता न हो, किन्तु भिन्नता हो, तभी अनेकता निश्चित होती है और अनेकता हो, तभी विस्तारक्रम होता है; इसलिए विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है।

इसीप्रकार अब विस्तारक्रम की भाँति प्रवाहक्रम का स्वरूप कहा जाता है। प्रवाहक्रम कहते ही परिणामों की अनेकता सिद्ध होती है और परिणामों की अनेकता कहते ही एक का दूसरे में अभाव सिद्ध होता है; क्योंकि एक का दूसरे में अभाव हो, तभी अनेकता हो। यदि ऐसा न हो तो सब परिणाम एक ही हो जायें। जिसप्रकार विस्तारक्रम में एक प्रदेश का दूसरे में अभाव है, उसीप्रकार प्रवाहक्रम में एक परिणाम का दूसरे में

अभाव है। इसप्रकार परिणामों में परस्पर एक का दूसरे में अभाव होने से अनादि-अनंत प्रवाहक्रम रचा हुआ है। ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे परिणामस्वभाव में द्रव्य स्थित है।

यहाँ विस्तारक्रम तो दृष्टान्तरूप है और प्रवाहक्रम सिद्धान्तरूप है। दृष्टान्त सर्वप्रकार से लागू नहीं होता। पुद्‌गल और कालद्रव्य का विस्तार तो एकप्रदेशी ही है, इसलिये उसमें प्रदेशों के परस्पर व्यतिरेक का दृष्टांत लागू नहीं होता, किन्तु प्रवाहक्रम का जो सिद्धान्त है, वह समस्त द्रव्यों में समान रीति से लागू होता है।

प्रदेशों के विस्तारक्रम की भाँति द्रव्य का अनादि-अनंत लम्बा प्रवाहक्रम होता है और यह प्रवाहक्रम तभी सम्भव है, जबकि एक परिणाम का दूसरे परिणाम में अभाव हो। पहला परिणाम दूसरे परिणाम में नहीं है, दूसरा तीसरे में नहीं है ह्र इसप्रकार परिणामों में व्यतिरेक होने से द्रव्य में प्रवाहक्रम है। द्रव्य के अनादि-अनंत प्रवाह में एक के बाद एक परिणाम क्रमशः होते रहते हैं। ऐसे ये समस्त द्रव्य मात्र ज्ञेय हैं। इन ज्ञेय द्रव्यों की यथावत् प्रतीति करने से श्रद्धा में जो निर्विकल्पता और वीतरागता होती है, वही एक मात्र यथार्थ मोक्ष का मार्ग है।

अहो! जहाँ एक ही द्रव्य के एक परिणाम में दूसरे परिणाम का भी अभाव है, वहाँ एक द्रव्य की अवस्था में दूसरा द्रव्य कुछ करे - यह बात ही कहाँ रहती है? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में कुछ करता है अथवा एक द्रव्य के परिणामों में क्रम परिवर्तित किया जा सकता है ह्र ऐसा जो मानता है, उसे ज्ञेयतत्त्व की खबर नहीं है।

कोई ऐसा माने कि मैंने अपनी बुद्धि से पैसा कमाया तो उसकी मान्यता मिथ्या है; क्योंकि बुद्धि का जो परिणाम हुआ, वह आत्मा के प्रवाहक्रम में आया हुआ परिणाम है और जो पैसा आया, वह पुद्‌गल के प्रवाहक्रम में आया हुआ पुद्‌गल का परिणाम है। दोनों द्रव्य अपने-अपने प्रवाहक्रम में भिन्न-भिन्न रूप से वर्त रहे हैं। आत्मा अपने परिणाम-प्रवाह में स्थित है और जड़पदार्थ जड़ के परिणाम-प्रवाह में स्थित हैं।

दोनों पदार्थों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। जिसने पदार्थों का ऐसा स्वरूप जाना, उसकी मैं पर में कुछ फेरफार करता हूँ या पर के कारण मुझमें कुछ फेरफार होता है ह्न ऐसी मिथ्याबुद्धि दूर हो गई, इसलिये वह समस्त द्रव्यों का ज्ञाता रह गया। जिसप्रकार केवली भगवान वीतरागरूप से सबके ज्ञाता हैं, उसीप्रकार यह भी ज्ञाता ही है। अभी साधक है, इसलिये अस्थिरता से राग-द्वेष होते हैं, किन्तु वे भी ज्ञाता के ज्ञेय हैं। ज्ञान और राग की एकतापूर्वक राग-द्वेष नहीं होते, किन्तु ज्ञान के ज्ञेयरूप से राग-द्वेष होते हैं। इसलिये अभिप्राय से तो वह साधक भी पूर्ण ज्ञाता ही है।

यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानने से स्वयं छहों द्रव्यों का ज्ञाता हो गया और छहों द्रव्य ज्ञान में ज्ञेय हुए। इसप्रकार स्वयं एक ज्ञाता और सामने छहों द्रव्य ज्ञेय ह्न ऐसा ज्ञातापना बतलाने के लिए स्वात्मानुभव मनन में कहा है कि आत्मा सप्तम द्रव्य हो जाता है।

आत्मा में केवलज्ञान का सारा दल और उसके सामने लोकालोकरूप सम्पूर्ण ज्ञेयों का दल; बस ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव रह गया। ज्ञेय-ज्ञायकपने में राग-द्वेष या फेरफार करना कहाँ रहा? अहो! ऐसे ज्ञायक स्वभाव का स्वीकार तो कर! इसकी स्वीकृति में वीतरागी श्रद्धा है और उसी में वीतरागता तथा केवलज्ञान के बीज हैं।

यहाँ दो बातें सिद्ध की हैं :ह्न

(१) प्रथम तो, क्षेत्र के दृष्टान्त से द्रव्य के अनादि-अनंत प्रवाह की एक समग्रवृत्ति बतलाई और उस प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश को परिणाम कहकर द्रव्य को सत् सिद्ध किया गया तथा उसमें अखण्ड अस्तित्व की अपेक्षा से एकत्व और परिणामों की अपेक्षा से अनेकत्व बताकर सत् में एकत्व-अनेकत्व भी सिद्ध किया।

(२) परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया है।

इसप्रकार दो बातें सिद्ध की हैं। अब उनका विस्तार करके उसमें से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं।

जिसप्रकार वे प्रदेश अपने स्थान में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसीप्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं।

इसमें प्रदेशों की बात दृष्टान्तरूप और परिणामों की बात सिद्धांत रूप है।

पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव है और उस स्वभाव में सदैव स्थित द्रव्य सत् है। प्रथम इतनी बात तो सिद्ध कर चुके हैं कि द्रव्य की वृत्ति अनादि-अनंत अखण्डरूप से एक होने पर भी उसके प्रवाहक्रम का अंश परिणाम है। वे परिणाम एक-दूसरे में नहीं वर्तते, किन्तु उनका एक-दूसरे में अभाव है। अब उसमें से विस्तार करके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं। उसमें भी प्रथम क्षेत्र का दृष्टान्त देते हैं।

सम्पूर्ण द्रव्य के एक क्षेत्र को लें तो उसके प्रदेश उत्पत्ति-विनाश-रहित हैं और उन प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक होने से वे अपने-अपने स्वक्षेत्र में अपने से सत् और पूर्व-प्रदेशरूप से असत् हैं। वे प्रदेश अपने से उत्पादरूप हैं और पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से व्ययरूप हैं। इसप्रकार समस्त प्रदेश-उत्पाद-व्ययरूप हैं और सर्वप्रदेशों का विस्तार साथ में लेने से द्रव्य के सभी प्रदेश ध्रौव्यरूप हैं। इसप्रकार समस्त प्रदेश एकसमय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं।

यहाँ प्रदेशों के जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे हैं, वे क्षेत्र-अपेक्षा से समझना। उक्त कथन के अनुसार समय-समय के परिणामों में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। अनादि-अनंत एक प्रवाह की अपेक्षा से परिणाम उत्पत्ति-विनाश रहित ध्रुव हैं और वे परिणाम अपने-अपने में उत्पादरूप हैं तथा पूर्वपरिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं। इसप्रकार समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप हैं और यह उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम वस्तु का स्वभाव है।

यहाँ प्रथम समुच्चय क्षेत्र और समुच्चय परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं। यद्यपि यह बात अकेले आत्मा की नहीं, अपितु समस्त द्रव्यों के स्वभाव की है, परन्तु यहाँ आत्मा की मुख्यता से बात की है।

जिसप्रकार आत्मा के असंख्य प्रदेशों में एक समय में क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू होता है, उसीप्रकार आत्मा के प्रवाहक्रम में वर्तनेवाले समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न, पूर्वरूप से विनष्ट और अखण्ड धारावाही प्रवाह के रूप में उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं, इसलिये वे परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं।

द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न हैं, पूर्व-रूप से विनष्ट हैं और एक अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से उत्पत्ति-विनाश रहित ध्रौव्य हैं।

यहाँ परिणामों का स्व-अवसर कहकर आचार्यदेव ने अद्भुत बात की है। जितने एक द्रव्य के परिणाम, उतने ही तीन काल के समय होते हैं और जितने तीन काल के समय, उतने ही एक द्रव्य के परिणाम होते हैं। बस ! इतना निश्चित करे तो अपने ज्ञायकपने की प्रतीति हो जाये। द्रव्य के प्रत्येक परिणाम का अपना-अपना अवसर भिन्न है। तीनकाल के परिणाम एक साथ ज्ञेय हैं और आत्मा उनका ज्ञाता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायकपने में राग नहीं रहा, अकेली वीतरागता ही आई। प्रथम ऐसी श्रद्धा करने से वीतरागी श्रद्धा होती है, पश्चात् ज्ञानस्वभाव में स्थिरता होने से वीतरागी चारित्र होता है।

अहो! द्रव्य के परिणामों का स्व-अवसर कहो अथवा क्रमबद्ध परिणाम कहो, उसकी प्रतीति करने त्रिकाली द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। परिणाम के स्व-अवसर की यह बात स्वीकार करने से निमित्ताधीन दृष्टि नहीं रहती, निमित्त आये तो वस्तु में परिणमन हो या निमित्त के कारण परिणाम में फेरफार होता है, कर्म के उदय से विकार होता है या व्यवहार करते-करते परमार्थ प्रगट होता है, पर्याय के आधार से पर्याय होती है ह्र ऐसी मान्यता छूट जाती है। जहाँ द्रव्य का प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में सत् है, वहाँ निमित्त के सन्मुख देखना ही कहाँ रहा? और मैं पर में फेरफार करूँ या पर से मुझमें फेरफार हो ह्र यह बात भी कहाँ रही? मात्र ज्ञाता और ज्ञेयपना ही रहता है। यही मोक्षमार्ग है, यही सम्यक् पुरुषार्थ है।

प्रत्येक द्रव्य के त्रिकालवर्ती परिणाम उसके प्रवाहरूपी साँकल के अंश हैं। जैसे साँकल के अंश आगे-पीछे नहीं होते, जहाँ के तहाँ रहते हैं; वैसे ही द्रव्य के अनादि-अनन्त परिणाम अपने अवसर (स्वकाल) से आगे पीछे नहीं होते। प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में सत् है। यहाँ तीन काल के परिणामों की एक सलंग साँकल में उत्पाद-व्यय-ध्रुव की बात की है।

यहाँ प्रथम, परिणामों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव सिद्ध करते हैं और पश्चात् यह सिद्ध करेंगे कि परिणाम-स्वभाव में स्थित होने से वह द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत् है। ज्ञाता द्वारा वस्तु के ऐसे स्वभाव को मानना, स्वीकार करना और ज्ञेयों में फेरफार करने की मान्यता छोड़ना सम्यक्त्व है तथा पदार्थों के स्वभाव का ज्ञाता रहना ही वीतरागतारूप धर्म है।

इस प्रवचनसार में पहले तो ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन में आत्मा का ज्ञानस्वभाव निश्चित किया है और फिर दूसरे अधिकार में ज्ञेयतत्त्वों का वर्णन किया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान ही है और जीव-अजीव में अपने-अपने अवसर में होनेवाले तीनकाल के परिणाम ज्ञेय हैं ह्र ऐसी प्रतीति होने पर वस्तु-व्यवस्था में फेरफार या पर्यायों को आगे-पीछे करने की बुद्धि नहीं रहती; इसलिए ज्ञान स्व में स्थिर हो जाता है। यही वीतरागता और केवलज्ञान का यथार्थ कारण है।

पदार्थों का जैसा सत्स्वभाव हो, वैसा माने तो मान्यता सत् कहलाये; किन्तु पदार्थों के सत्स्वभाव से अन्य प्रकार माने तो वह मान्यता मिथ्या है। यहाँ सत् की श्रद्धा कराते हैं। सत् द्रव्य का लक्षण है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाला है। द्रव्य के ऐसे सत्स्वभाव की प्रतीति करना ही

सम्यग्दर्शन है; क्योंकि यही सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान है। इस समय बात तो परिणामों की चल रही है, किन्तु परिणाम के निर्णय में परिणामी द्रव्य का निर्णय भी आ जाता है; क्योंकि वे त्रिकाली द्रव्य के ही हैं। परिणाम परिणामी से अभिन्न होने से एक के निर्णय में दूसरे का निर्णय हो ही जाता है। परिणाम अधर में नहीं होते, किन्तु परिणामी के आधार से ही परिणाम हैं; इसलिए परिणाम का निर्णय करने से परिणामी द्रव्य का निर्णय हो जाता है और अकेले परिणाम पर से रुचि हटकर त्रिकाली द्रव्यस्वभाव पर ज्ञान का झुकना सम्यग्दर्शन है और यही वीतरागता का मूल है।

इस गाथा में वस्तु-स्थिति का अलौकिक रीति से वर्णन किया है। समस्त द्रव्य सत् है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-सहित परिणामस्वभावी है ह्न ऐसा इस गाथा में सिद्ध किया है।

यहाँ निम्न पाँच बातें सिद्ध की हैं :ह्न

१. द्रव्य में समग्रपने से अनादि-अनंत प्रवाह की एकता।
२. और फिर प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान सूक्ष्म अंशरूप परिणामों का परस्पर व्यतिरेक।
३. तत्पश्चात् समुच्चयरूप से सम्पूर्ण द्रव्य के त्रिकाली परिणामों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक स्वरूप। उसके दृष्टान्त में द्रव्य के समस्त प्रदेशों को क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया है।
४. एक ही परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकपना बतलाया।
५. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम के प्रवाह में निरन्तर वर्त रहा द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से सत् है ह्न ऐसा कहा है।

ऊपर जो बातें कही हैं, उनमें तीसरे बोल में अपने-अपने अवसर में त्रैकालिक समस्त परिणामों के एक ही साथ होनेवाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात करके यहाँ अकेला ज्ञायकभाव ही बतलाया है।

यहाँ परिणामों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण लिया है। कोई ऐसा कहे कि दूसरा कोई सरल उदाहरण न देकर आचार्यदेव ने प्रदेशों का ऐसा सूक्ष्म उदाहरण क्यों दिया? उनसे कहते हैं

कि भाई! द्रव्य के प्रदेशों का सारा क्षेत्र एकसाथ अक्रम से फैला पड़ा है और परिणामों की व्यक्तता तो क्रमशः होती है, इसलिए प्रदेशों की अपेक्षा परिणामों की बात सूक्ष्म है। यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म एवं गंभीर बात समझाना है, इसलिये उदाहरण भी प्रदेशों का सूक्ष्म ही लेना पड़ा है। यदि बाह्य स्थूल उदाहरण दें तो सिद्धान्त की जो सूक्ष्मता और गम्भीरता है, वह ख्याल में नहीं आयेगी; इसलिये ऐसे सूक्ष्म उदाहरण की ही यहाँ आवश्यकता है।

इस जगत में अनंत जीव, अनंतानन्त पुद्गल, एक-एक धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं आकाश और असंख्यात कालाणुरूप छह प्रकार के पदार्थ हैं। उनमें से प्रत्येक आत्मा का ज्ञानगुण छहों पदार्थों की क्रमशः होनेवाली समस्त अवस्थाओं को तथा द्रव्य-गुणों को जाननेवाला है। ऐसे ज्ञानस्वभाव को जो जानता है, वह जीव राग-परिणाम को अवश्य जानता है, किन्तु उस राग को अपना मूलस्वरूप नहीं मानता, राग को धर्म नहीं मानता और राग-परिणाम को आगे-पीछे करनेवाला भी नहीं मानता। अपने अवसर (स्वकाल) में वह राग-परिणाम भी सत् है और उसे जाननेवाला ज्ञान भी सत् है। द्रव्य के त्रिकाली प्रवाहक्रम में वह राग-परिणाम भी सत्रूप से आ जाता है, इसलिये राग का ज्ञान हुआ ह्न ऐसा नहीं है, किन्तु ज्ञान का ही स्वभाव जानने का है। पूर्ण स्वज्ञेय को जाननेवाला ज्ञान उस राग को भी स्वज्ञेय के अंशरूप से जानता है, त्रिकाली अंशी के ज्ञानसहित अंश का भी ज्ञान करता है। यदि राग को स्वज्ञेय के अंशरूप से सर्वथा न जाने तो उस ज्ञान में सम्पूर्ण स्वज्ञेय नहीं होता, इसलिये वह ज्ञान सच्चा नहीं होता और यदि उस रागरूप अंश को ही पूर्ण स्वज्ञेय मान ले और त्रिकाली द्रव्य-गुण को स्वज्ञेय न बनाये तो वह ज्ञान भी मिथ्या है। द्रव्य, गुण और समस्त पर्यायें ह्न ये तीनों मिलकर स्वज्ञेय पूरा होता है। उसमें अंशी-त्रिकाली द्रव्य-गुण की रुचि सहित अंश को ह्न परज्ञेय को जानने का कार्य सम्यग्ज्ञान करता है। यथार्थ ज्ञान में ज्ञेयों का स्वभाव कैसा ज्ञात होता है, उसका यह वर्णन है।

समस्त पदार्थों का स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त है, प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय परिणाम होते हैं। वे परिणाम क्रमानुसार अनादि-अनंत होते हैं, इसलिये स्व-अवसर में होनेवाले परिणामों का प्रवाह अनादि-अनंत है। उस प्रवाहक्रम का छोटे से छोटा प्रत्येक अंश भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप वाला है। अनादि-अनंत काल के प्रत्येक समय में उस-उस समय का परिणाम स्वयं सत् है। ऐसे सत् परिणामों को ज्ञान जानता है, किन्तु उनमें कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता। जैसे ह्न अग्नि या बर्फ आदि पदार्थों को आँख देखती है, किन्तु उसमें कुछ भी फेरफार नहीं करती; उसीप्रकार ज्ञान की पर्याय भी ज्ञेयों को सत्रूप से जैसे हैं, वैसा जानती ही है, उनमें कुछ फेरफार नहीं करती। स्व-अवसर में जब जो परिणाम है, उस समय वही परिणाम होता है, अन्य परिणाम नहीं होते ह्न ऐसा जहाँ ज्ञान में निश्चित किया, वहाँ किसी भी ज्ञेय को उल्टा-सीधा करने की मिथ्याबुद्धि एवं राग-द्वेष नहीं होते।

अहा! देखो तो! क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में कितनी गंभीरता है। द्रव्य की पर्याय पर से बदलती है ह्न यह बात तो है ही नहीं, किन्तु द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय को उल्टा-सीधा करना चाहे तो भी नहीं हो सकती। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य पलटकर अन्य रूप नहीं होता, उसीप्रकार उसका प्रत्येक समय का परिणाम भी बदलकर अन्यरूप नहीं होता। जीव पलटकर कभी भी अजीवरूप नहीं होता और अजीव पलटकर कभी भी जीवरूप नहीं होता। जिसप्रकार त्रिकाली सत् नहीं बदलता, उसीप्रकार उसका वर्तमान सत् भी नहीं बदलता। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य नहीं बदलता, उसीप्रकार उसकी प्रत्येक समय की अनादि-अनंत अवस्थाएँ भी जिन समयों में जो होनी हैं, उनमें फेरफार नहीं हो सकता। त्रिकाली प्रवाह के वर्तमान अंश अपने-अपने काल में सत् हैं ह्न ऐसी श्रद्धा से पर में या स्व में कहीं भी फेरफार करने की बुद्धि नहीं रहती, इसलिये ज्ञान ज्ञातामात्र रह जाता है, पर्यायबुद्धि में नहीं रुकता। इसप्रकार ज्ञान जानने का कार्य करता है ह्न ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है।

ज्ञानी जीव केवलज्ञान होने से पूर्व केवली भगवान का लघुनन्दन हो जाता है। श्रद्धा-अपेक्षा से तो साधक जीव भी सर्व का ज्ञायक हो जाता है।

समस्त पदार्थों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभाव को निश्चित करने से स्व में या पर में फेरफार करने की बुद्धि नहीं रहती, किन्तु ज्ञान में केवल जानने का ही कार्य रह जाता है, पर में परिवर्तन करने की चिन्ता नहीं रहती; अतः अब ज्ञान में ऐसा क्यों ह्न यह प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए तथा अपने में स्थिर हो जाना चाहिए। इसी में ज्ञान का परम पुरुषार्थ है, इसी में मोक्षमार्ग का और केवलज्ञान प्राप्त करने का पुरुषार्थ आ जाता है। पर में कर्तृत्वबुद्धि वाले को ज्ञान-स्वभाव की प्रतीति नहीं होती, इसकारण उसे ज्ञानस्वभाव का ह्न ज्ञायकपने का पुरुषार्थ भी प्रकट नहीं होता।

अहो! समस्त द्रव्य अपने-अपने अवसर में होनेवाले परिणामों में वर्त रहे हैं, उनमें तू कहाँ कैसे परिवर्तन करेगा? भाई! तेरा स्वभाव तो देखने का है। तू देखनेवाले को द्रष्टा ही रख, द्रष्टा को हाय-हाय करनेवाला न बना। द्रष्टास्वभाव की प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। मैं पर में फेरफार करता हूँ और पर मुझमें फेरफार करता है ह्न ऐसा भाव मिथ्यादृष्टि का होता है। उसे ज्ञान और ज्ञेय के स्वभाव की प्रतीति नहीं है। जगत के जड़ या चेतन समस्त द्रव्य अपने प्रवाह में वर्तते हैं, उनमें जो-जो अंश वर्तमान में वर्त रहा है, उसे कोई आगे-पीछे नहीं कर सकता। मैं ध्यान रखकर शरीर को बराबर रखूँ ह्न ऐसा कोई माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। शरीर का प्रत्येक परमाणु उसके अपने प्रवाहक्रम में वर्त रहा है, उसके क्रम को कोई नहीं बदल सकता। कहीं भी फेरफार करना आत्मा के किसी भी गुण का कार्य नहीं है, किन्तु स्व को जानते हुए पर को जाने ह्न ऐसा उसके ज्ञान-गुण का स्व-पर प्रकाशक कार्य है। इसकी प्रतीति ही मुक्ति का कारण है।

प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल परिणमित होता रहता है। उसके त्रिकाल के प्रवाह में स्थित समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। अपने स्वकाल में वे सब परिणाम अपनी अपेक्षा से उत्पाद-रूप हैं, पूर्व के परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं और परस्पर सम्बन्धवाले अखण्ड

प्रवाह की अपेक्षा से वे ध्रौव्य हैं। द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने काल में सत् हैं। वे परिणाम स्वयं अपनी अपेक्षा से असत् (व्ययरूप) नहीं हैं, किन्तु अपने पहले के परिणाम की अपेक्षा से वे असत् (व्ययरूप) हैं और प्रथम - पश्चात् के भेद किये बिना अखण्ड प्रवाह को देखो तो सभी परिणाम ध्रुव हैं। जब देखो, तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणामों में वर्त रहा है, कहीं भूत में या भविष्य में नहीं वर्तता। द्रव्य के तीनों काल के जो वर्तमान परिणाम हैं, वे अपने से पहले के परिणाम के अभाव स्वरूप हैं, स्व-परिणामपने से उत्पाद-रूप हैं तथा वे ही अखण्डप्रवाहरूप से ध्रौव्यरूप हैं।

देखो, इसमें यह बात आ गई कि पूर्व के परिणाम के अभाव-स्वरूप वर्तमान परिणाम है, इसलिए पूर्व के संस्कार वर्तमान में नहीं आते और न पूर्व का विकार वर्तमान में आता है। पहले विकार किया था, इसलिए इस समय विकार हो रहा है ह्न ऐसा नहीं है। वर्तमान परिणाम स्वतंत्रतया द्रव्य के आश्रय से होते हैं। यह निर्णय होने से ज्ञान और श्रद्धा, द्रव्य-स्वभावोन्मुख हो जाते हैं। जिसप्रकार त्रिकाली जड़ द्रव्य बदलकर चेतन या चेतन द्रव्य बदलकर जड़ नहीं होता, उसीप्रकार उसका वर्तमान प्रत्येक अंश भी बदलकर दूसरे अंशरूप नहीं होता। जिस-जिस समय का जो अंश है, उस-उस रूप ही वह सत् रहता है। जिसप्रकार सर्वज्ञ भगवान ज्ञाता हैं; उसीप्रकार वस्तु-स्वरूप की यथार्थ प्रतीति करनेवाला स्वयं भी प्रतीति में ज्ञाता हो जाता है।

पर में फेर-बदल करने की बात तो दूर ही रही, यहाँ तो वह कह रहे हैं कि द्रव्य अपने अंश को भी आगे-पीछे नहीं कर सकता, पहले का अंश पीछे नहीं होता, पीछे का अंश पहले नहीं होता ह्न ऐसा निर्णय करनेवाले को अंशबुद्धि दूर होकर अंशी की दृष्टि होने से सम्यक्त्व-परिणाम का उत्पाद और मिथ्यात्व-परिणाम का व्यय हो जाता है।

आत्मा का ज्ञानगुण आत्मा के आधार से ही टिका है। वह ज्ञाता स्वभाववाला है और उसके तीनकाल के परिणाम अपने-अपने अवसर

के अनुसार द्रव्य में से होते रहते हैं। आत्मा अपने वर्तमान में प्रवर्त्तमान अंश को कम-अधिक या आगे-पीछे कर सके ह्न ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है। पर के परिणाम में भी वह फेरफार नहीं कर सकता है। स्व-पर समस्त ज्ञेयों को यथावत् जानने का ही आत्मा का स्वभाव है। ऐसे ज्ञाता स्वभाव की प्रतीति में ही आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

प्रश्न :ह्न मिथ्यात्व-परिणाम को बदलकर सम्यक्त्व रूप करूँ ह्न ऐसा भाव तो सभी को होते देखा जाता है?

उत्तर ह्न देखो! ज्ञाता-स्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसमें मिथ्यात्व दूर हो ही जाता है। सम्यक्त्व-परिणाम का उत्पाद हुआ, उस समय मिथ्यात्व-परिणाम वर्तमान नहीं होते, इसलिए उन्हें बदलना भी कहाँ रहा? मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व करूँ ह्न ऐसे लक्ष्य से सम्यक्त्व नहीं होता; किन्तु द्रव्य-सन्मुख दृष्टि होने से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्व-परिणाम का अभाव हो ही जाता है, इसलिये उस परिणाम को भी बदलना नहीं रहता। मिथ्यात्व दूर होकर जो सम्यक्त्व पर्याय प्रगट होती है, उसे भी आत्मा जानता है; किन्तु परिणाम के किसी भी क्रम को आगे-पीछे नहीं करता।

अहो! जिस-जिस पदार्थ का जो वर्तमान अंश है, वह कभी नहीं बदलता ह्न इसमें अकेला वीतराग-विज्ञान ही आता है। पर्याय को बदलने की बुद्धि नहीं है और ऐसा क्यों ह्न ऐसा विषम भाव नहीं है, इसलिये श्रद्धा और चारित्र दोनों का मेल बैठ जाता है।

त्रिकाली द्रव्य के प्रत्येक समय के परिणाम सत् हैं ह्न ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है। द्रव्य सत् है और पर्याय भी सत् है। यह सत् जिसके चित्त में नहीं बैठा और मैं पर्यायों में फेरफार कर सकता हूँ ह्न ऐसा मानता है, उसे वस्तु के स्वभाव की, सर्वज्ञदेव की, गुरु की या शास्त्र की बात नहीं जमी है और वास्तव में उसने उनमें से किसी को नहीं माना है।

त्रिकाली वस्तु का वर्तमान कब नहीं होता? सदैव होता है। वस्तु का कोई भी वर्तमान अंश लो, वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। वस्तु को

जब देखो, तब वह वर्तमान में वर्त रही है। इस वर्तमान को यहाँ स्वयं सिद्ध सत् साबित करते हैं। जिसप्रकार त्रिकाल सत् पलटकर चेतन से जड़ नहीं हो जाता; उसीप्रकार उसका प्रत्येक वर्तमान अंश भी पलटकर आगे-पीछे नहीं होता। जिसने ऐसे वस्तु-स्वभाव को जाना, उसको जो अपने ज्ञायक-स्वरूप की प्रतीति हुई, वही धर्म है।

तीनों काल के समय में तीनों काल के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-रूप हैं। वर्तमान एक समय का परिणाम एक समय पहले नहीं था, नया उत्पन्न हुआ है; इसलिये वह उत्पाद-रूप है और उस परिणाम के समय पूर्व के परिणाम का व्यय है, पूर्व-परिणाम का व्यय होकर वह परिणाम उत्पन्न हुआ है, इसलिये पूर्व-परिणाम की अपेक्षा वही परिणाम व्ययरूप है और तीनों काल के परिणाम के अखण्ड-प्रवाह की अपेक्षा से वह परिणाम उत्पन्न भी नहीं हुआ है और विनाशरूप भी नहीं है, ध्रौव्य है। इसप्रकार अनादि-अनंत प्रवाह में जब देखो, तब प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभावरूप है।

किसी भी वस्तु की पर्याय में फेरफार करने की उमंग पर्यायबुद्धिरूप मिथ्यात्व है। उसे ज्ञान-स्वभाव की प्रतीति नहीं है और ज्ञेयों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव की भी खबर नहीं है। जो वस्तु सत् है, उसको जानने के अतिरिक्त उसमें कोई कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता? यदि कोई सत् में फेरफार करना मानेगा तो उसके मानने से सत् तो नहीं बदलेगा, किन्तु उसका ज्ञान ही असत् हो जायेगा। जिसप्रकार वस्तु सत् है, उसीप्रकार उसे केवलज्ञान में जानकर भगवान ने कहा है। भगवान ने तो मात्र सत् का ज्ञान किया है, वे वाणी के कर्त्ता नहीं हैं। उनका आत्मा तो अपने केवलज्ञान परिणाम में वर्त रहा है तथा समस्त पदार्थ अपने सत् में वर्त रहे हैं। ज्ञायकमूर्ति आत्मा तो केवल जानने का कार्य करता है। बस, ऐसी प्रतीति और परिणति का नाम मोक्षमार्ग है।

भगवान सर्व जगत के मात्र ज्ञाता-दृष्टा हैं, किसी में राग-द्वेष या फेरफार करनेवाले नहीं हैं। भगवान की भाँति मेरे आत्मा का स्वभाव भी

मात्र जानने का है ह्न इसप्रकार सब अपने ज्ञातास्वभाव की श्रद्धा करें और पदार्थों में फेरफार करने की बुद्धि छोड़ें। जिसने अपने ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा की, वह अस्थिरता के राग-द्वेष का भी ज्ञाता ही रहा। जिसने ऐसे ज्ञान-स्वभाव को माना; उसी ने अरिहंतदेव को माना, उसी ने आत्मा को माना, उसी ने गुरु को तथा शास्त्र को माना, उसी ने नवपदार्थों को माना, उसी ने छह द्रव्यों को तथा उनके वर्तमान अंश को माना। बस, इसी का नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

जानना ही आत्मा का पुरुषार्थ है। जानना ही आत्मा का धर्म है। उसी में मोक्षमार्ग और वीतरागता है। अनंत सिद्ध भगवंत भी प्रतिसमय पूर्ण जानने का ही कार्य कर रहे हैं।

ज्ञान में स्व-पर दोनों ज्ञेय हैं। ज्ञान ज्ञाता है ह्न ऐसा जाना तो ज्ञान भी स्वज्ञेय हुआ। ज्ञान को रागादि का कर्त्ता माने या बदलनेवाला माने तो उसने ज्ञान के स्वभाव को नहीं जाना है, स्वयं अपने को स्वज्ञेय नहीं बनाया; इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है। वस्तु के समस्त परिणाम अपने-अपने समय में सत् हैं ह्न ऐसा कहते ही अपना स्वभाव ज्ञायक ही है ह्न ऐसा उसमें सहज आ जाता है।

इस गाथा में क्षेत्र का उदाहरण देकर पहले द्रव्य का त्रिकाली सत्पना बतलाया, उसके त्रिकाली प्रवाहक्रम के अंश बतलाये और उन अंशों में (परिणाम में) अनेकतारूप प्रवाहक्रम का कारण उनका परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण द्रव्य के समस्त परिणामों के स्व-अवसर में वर्तनेवाला, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलाया।

अब, प्रत्येक समय के वर्तमान परिणाम को लेकर उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना बतलाते हैं। पहले समग्र परिणामों की बात थी, अब यहाँ केवल एक परिणाम की अपेक्षा बात करते हैं। इसके बाद परिणामी द्रव्य की ही बात कहकर द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलायेंगे।

जिसप्रकार वस्तु (क्षेत्र) का जो छोटा से छोटा (अन्तिम) अंश पूर्व-प्रदेश के विनाशरूप है, वही अंश उत्तर प्रदेश के उत्पाद-स्वरूप है तथा

वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुभव-स्वरूप है, दो में से एक स्वरूप भी नहीं है। उसीप्रकार प्रवाह (काल) का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व परिणाम के विनाश स्वरूप है, वही उत्तर परिणाम के उत्पाद-स्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

जिसप्रकार असंख्यप्रदेशी आत्मा का कोई भी एक प्रदेश लो तो वह प्रदेश (क्षेत्र-अपेक्षा से) पूर्व प्रदेश के व्ययरूप है, उत्तर प्रदेश के उत्पाद रूप है और अखण्डक्षेत्र की अपेक्षा से ध्रौव्य है। उसीप्रकार अनादि-अनंत प्रवाहक्रम के अंशरूप से देखें तो वह परिणाम ध्रौव्यरूप है। इसप्रकार प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

जहाँ समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात थी, वहाँ अपने-अपने अवसर में ह्न ऐसा कहकर उस प्रत्येक का स्वतंत्र स्वकाल बतलाया था और यहाँ एक परिणाम की विवक्षा को लक्ष्य में रखकर बात करने से उन शब्दों का प्रयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान एक ही परिणाम लिया, सो उसी में उसका वर्तमान स्वकाल आ गया।

वर्तमान वर्तनेवाला परिणाम पूर्व-परिणाम के अभावरूप ही है, इसलिये पूर्व के विकार का अभाव करने की बात नहीं रही और वर्तमान परिणाम वर्तमान में सत्रूप ही है, इसमें भी फेरफार करना नहीं रहता ह्न ऐसा समझने पर मात्र वर्तमान परिणाम की दृष्टि न रहने से, परिणाम और परिणामी की एकता होने पर सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्व-परिणाम का तो व्यय है ही, उसे दूर नहीं करना पड़ता। किसी भी परिणाम को मैं नहीं बदल सकता, मात्र जानता हूँ ह्न ऐसा मेरा स्वभाव है ह्न इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की प्रतीति में सम्यक्त्व-परिणाम का उत्पाद है और उसी में मिथ्यात्व का व्यय है; इसलिये मिथ्यात्व को दूर करूँ और सम्यक्त्व प्रगट करूँ ह्न यह बात भी नहीं रहती। जहाँ ऐसी स्वसन्मुख बुद्धि हुई, वहाँ उस समय का सत्परिणाम स्वयं ही सम्यक्त्व के उत्पादरूप और मिथ्यात्व के व्यय-रूप है तथा एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित

परिणामों के अखण्ड प्रवाहरूप से वह परिणाम ध्रौव्य है। इसप्रकार प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुव-युक्त सत् है।

जिसप्रकार सम्पूर्ण वस्तु सत् है, उसीप्रकार उसका वर्तमान भी सत् है। वस्तु के त्रिकाली प्रवाह में प्रत्येक समय का अंश सत् है। वर्तमान समय का परिणाम अपने से सत् है, पूर्व के परिणाम के अभाव के कारण नहीं। वह वर्तमान अंश भी पर से नहीं, किन्तु अपने से है। प्रत्येक समय का वर्तमान अंश निरपेक्षरूप से अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप सत् है।

वस्तुस्वरूप का ऐसा वर्णन सर्वज्ञ के सिवाय और कहीं नहीं है। जगत के सम्पूर्ण तत्त्व सत् है, उनकी पहली पर्याय के कारण भी दूसरी पर्याय नहीं होती, तब फिर तू उसमें क्या करेगा? तू तो मात्र ज्ञाता रहा। इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मानेगा तो वस्तु में तो कुछ भी फेरफार नहीं होगा, किन्तु तेरा ज्ञान ही मिथ्या साबित होगा।

वस्तु का वर्तमान अंश सत् है। यहाँ तो प्रत्येक समय के वर्तमान परिणाम को सत् सिद्ध किया है। द्रव्य के आधार से अंश है ह्न यह बात इस समय नहीं लेना है। यदि द्रव्य के कारण परिणाम का सत्पना हो, तब तो सभी परिणाम एक समान ही हों, इसलिये द्रव्य के कारण परिणाम का सत्पना न लेकर प्रत्येक समय का परिणाम स्वयं सत् है और द्रव्य ही उस वर्तमान परिणामस्वरूप से वर्तता हुआ सत् है ह्न ऐसा लिया है। प्रवाह का वर्तमान अंश उसी अंश के कारण स्वतंत्र है। इसप्रकार प्रत्येक समय का अकारणीय सत् सिद्ध किया है। समय-समय का सत् अहेतुक है। समस्त पदार्थों के तीनों काल के प्रत्येक समय का प्रत्येक अंश निरपेक्ष सत् है। ज्ञान उसे जैसे का तैसा यथावत् जानता है, किन्तु बदलता नहीं है। ज्ञान ने जाना, इसलिये वह अंश वैसा है ह्न ऐसी बात नहीं है। वह स्वयं सत् है।

वर्तमान परिणाम पूर्व-परिणाम के व्ययरूप है; इसलिये वर्तमान परिणाम को पूर्व-परिणाम की भी अपेक्षा नहीं रही, तब फिर पर पदार्थ के कारण उसमें कुछ हो ह्न यह बात कहाँ रही? केवली भगवान को पहले

समय केवलज्ञान हुआ, इसलिये दूसरे समय भी केवलज्ञान हुआ ह्न ऐसा नहीं है, किन्तु दूसरे समय के उस वर्तमान परिणाम का केवलज्ञान उस समय के अंश से ही सत् है। पहले समय के सत् के कारण दूसरे समय का सत् नहीं है। इसीप्रकार सिद्ध भगवान को पहले समय में सिद्धपर्याय थी, इसलिये दूसरे समय में भी सिद्धपर्याय हुई ह्न ऐसा भी नहीं है। सिद्धों में और समस्त द्रव्यों में प्रत्येक समय का अपना-अपना अंश स्वतंत्र सत् स्वरूप है।

यहाँ एक अंश के परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में अपने अवसर में ह्न ऐसी भाषा का उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान में प्रवर्तित एक परिणाम की बात है और वर्तमान में जो परिणाम वर्तता है, वही उसका स्वकाल है। तीनों काल के प्रत्येक परिणाम का जो वर्तमान है, वह वर्तमान ही उसका स्वकाल है। अपने वर्तमान को छोड़कर वह आगे-पीछे नहीं होता। इसप्रकार वर्तमान प्रत्येक परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव है।

इस गाथा में अभी तक चार बोल आये :-

(१) द्रव्य का अखण्ड प्रवाह एक है और उसके क्रमशः होनेवाले अंश परिणाम हैं।
(२) उन परिणामों में अनेकता है, क्योंकि उनमें परस्पर व्यतिरेक है।
(३) तीनों काल के परिणामों का पूरा दल लेकर समस्त परिणामों में सामान्यरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है।
(४) सम्पूर्ण प्रवाह का एक अंश लेकर प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे।

इसप्रकार परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित करके अब परिणामी द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते हैं।

इसप्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणाम-पद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य-स्वभाव का अतिक्रमण न करने से सत्त्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदना।

द्रव्य के समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप हैं और उन परिणामों के क्रम में प्रवर्तमान द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त ही है। यदि परिणाम की भाँति द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त न हो तो वह परिणामों की परम्परा में वर्तता है, इससे उसके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं। परिणामों की पद्धति अर्थात् जिसप्रकार साँकल की कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होतीं, उसीप्रकार परिणामों का प्रवाहक्रम नहीं बदलता। जिस समय द्रव्य का जो परिणाम प्रवाहक्रम में हो; उस समय उस द्रव्य का वही परिणाम होता है, दूसरा परिणाम नहीं होता।

देखो, यह वस्तु के सत्-स्वभाव का वर्णन है। वस्तु का सत्-स्वभाव है, सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त परिणाम है और उसे भगवान द्रव्य का लक्षण कहते हैं। सत् द्रव्यलक्षण तेरा स्वभाव जानने का है। जैसा सत् है, वैसा तू जान! सत् का उलटा-सीधा करने की बुद्धि करेगा तो तेरे ज्ञान में मिथ्यात्व होगा। वस्तुएँ सत् हैं और मैं उनका ज्ञाता हूँ ह्न ऐसी श्रद्धा होने के पश्चात् अस्थिरता का विकल्प उठता है, किन्तु उसमें मिथ्यात्व का जोर नहीं आता; इसलिये ऐसी ज्ञान और ज्ञेय की श्रद्धा के बल से उस अस्थिरता का विकल्प भी टूटकर वीतरागता और केवलज्ञान अवश्य होगा।

सर्वज्ञदेव ने केवलज्ञान में वस्तु का स्वभाव जैसा है, वैसा पूर्ण जाना और वैसा ही उनकी वाणी में आया है। जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा जानकर माने तो ज्ञान और श्रद्धा सम्यक् हो, वस्तु के स्वभाव को यथावत् न जाने तथा अन्य रीति से माने तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक्श्रद्धान नहीं होता और उसके बिना व्रत-तपादि सच्चे नहीं होते।

देखो, अभी तक यह कहा गया है कि प्रत्येक चेतन और जड़पदार्थ स्वयं सत् है, उसमें एक-एक समय में परिणाम होता है, वह परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त है। मूल वस्तु त्रिकाल असंयोगी और स्वयंसिद्ध है, वह किसी से निर्मित नहीं है और न कभी उसका नाश होता है। जब देखो, तब वह प्रतिसमय सत्‌रूप से वर्त रही है।

प्रत्येक समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। उसमें वस्तु वर्त रही है। प्रत्येक द्रव्य में तीन काल के जितने समय हैं, उतने ही परिणाम हैं। जैसे : एक सुवर्णपिण्ड के सौ वर्ष लिये जायें तो उन सौ वर्षों में हुई उस स्वर्णपिण्ड की कड़ा, कुंडल, हार आदि समस्त अवस्थाओं का एक पिण्ड सोना है; उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य तीन काल के समस्त परिणामों का पिण्ड है। वे परिणाम क्रमशः एक के बाद एक होते हैं। तीन काल के समस्त परिणामों का प्रवाह द्रव्य का प्रवाहक्रम है। और उस प्रवाहक्रम का एक समय का अंश परिणाम है। तीन काल के जितने समय हैं, उतने ही प्रत्येक द्रव्य के परिणाम हैं। यहाँ उस प्रत्येक परिणाम में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सिद्ध किये हैं। अपने-अपने निश्चित अवसर में प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। किसी अन्य से किसी अन्य के परिणाम का उत्पाद नहीं होता तथा कोई परिणाम आगे-पीछे नहीं होते। इस निर्णय में सर्वज्ञता का निर्णय और ज्ञायक द्रव्य की दृष्टि हो जाती है।

आत्मा में जो वर्तमान ज्ञान-अवस्था है, उस अवस्था में ज्ञानगुण वर्त रहा है, दूसरी अवस्था होगी, तब उसमें भी ज्ञान गुण वर्तेगा और तीसरी अवस्था के समय भी वही वर्तेगा। इसप्रकार दूसरी-तीसरी-चौथी सभी अवस्थाओं के प्रवाह का पिण्ड ज्ञानगुण है। ऐसे अनंतगुणों का पिण्ड द्रव्य है। द्रव्य के प्रतिसमय जो परिणाम होते हैं, वे परिणाम अपनी अपेक्षा से उत्पादरूप हैं, पूर्व के अभाव की अपेक्षा से व्ययरूप हैं और अखण्ड प्रवाह में वर्तनेवाले अंशरूप से ध्रौव्य हैं। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाला जो परिणाम है, वह प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। और ऐसे स्वभाव में द्रव्य नित्य प्रवर्तमान है, इसलिये द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव वाला है ह्न ऐसा समझना।

प्रत्येक वस्तु पलटती हुई नित्य है। यदि वस्तु अकेली नित्य ही हो तो उसमें सुख-दुःख आदि कार्य नहीं हो सकते और यदि वस्तु एकान्त पलटती ही रहे तो वह त्रिकाली स्थायी नहीं रह सकती, दूसरे ही क्षण उसका सर्वथा अभाव हो जायेगा। इसलिये वस्तु अकेली नित्य या अकेली पलटती नहीं है, किन्तु नित्यस्थायी रहकर प्रतिक्षण पलटती है। इसप्रकार नित्य पलटती हुई वस्तु कहो या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत् कहो ह्न एक ही बात है। अल्प से अल्पकाल में होनेवाले परिणाम में वर्तता द्रव्य नित्यस्थायी है। उसके प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है ह्न यह बात स्पष्ट हो गई है। अब कहते हैं कि द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है।

समस्त पदार्थ सत् हैं। पदार्थ हैं ह्न ऐसा कहते ही उसका सत्पना आ जाता है। पदार्थों का सत्पना पहले ९८वीं गाथा में सिद्ध कर चुके हैं। पदार्थ सत् है और सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है। कोई भी वस्तु हो, वह त्रिकाल अर्थात् प्रत्येक समय में वर्तमानरूप से वर्तती है। कहीं भूत-भविष्य में तो नहीं रहती। वह तो वर्तमान में ही वर्तती है। प्रत्येक समय का वर्तमान यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला न हो तो वस्तु का त्रिकाल परिवर्तनपना सिद्ध नहीं होगा। इसलिये प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणामों में ही वस्तु वर्तती है। जिसप्रकार द्रव्य त्रिकाली सत् है, उसीप्रकार उसके तीनों काल के परिणाम भी प्रत्येक समय के सत् हैं।

प्रत्येक परिणाम को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् सिद्ध करके अब यहाँ परिणाम में वर्तनेवाले द्रव्य को भी उत्पाद-व्यय-युक्त सिद्ध करते हैं।

द्रव्य का वर्तमान प्रवर्तित परिणाम अपने से उत्पादरूप है, अपने पहले के परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाह में वह ध्रौव्य है। इसप्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है और उस परिणाम में द्रव्य वर्तता है, इसलिये द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने से, उस परिणाम में वर्तनवाले परिणामी के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी सिद्ध हो ही जाते हैं। इसलिये कहा है कि द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना। अनुमोदना अर्थात् रुचिपूर्वक मानना, हृदय से स्वीकार करना।

यदि समय-समय के परिणाम की यह बात समझ ले तो पर में भी खटपट करने का अहंकार न रहे और अकेले रागादि परिणामों पर भी दृष्टि न रहे, किन्तु परिणामी अर्थात् त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि हो जाये।

जिसप्रकार त्रिकाली सत् में जो चैतन्य है, वह चैतन्य ही रहता है और जो जड़ है, वह जड़ ही रहता है, चैतन्य मिटकर जड़ नहीं होता और न जड़ मिटकर चैतन्य होता है; उसीप्रकार एक समय के सत् में भी जो परिणाम जिस समय में सत् है, वह परिणाम उसी समय होता है ह्न आगे-पीछे नहीं होता। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य सत् है, उसीप्रकार वर्तमान भी सत् है। जिसप्रकार त्रिकाली सत् पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता, उसीप्रकार वर्तमान सत् पलटकर भी भूत या भविष्यरूप नहीं हो जाता। तीनों काल के समय-समय के वर्तमान परिणाम अपना स्वसमय (स्व-काल) छोड़कर पहले या पीछे के समय नहीं होते। जितने तीनकाल के समय हैं, उतने ही द्रव्य के परिणाम हैं, उनमें जिस समय का जो वर्तमान परिणाम है, वह परिणाम अपना वर्तमानपना छोड़कर भूत या भविष्य में नहीं होता। बस! प्रत्येक परिणाम अपने-अपने स्वकाल में वर्तमान सत् है। उस सत् को कोई बदल नहीं सकता। जिसप्रकार चेतन को बदलकर जड़ नहीं किया जा सकता, उसीप्रकार द्रव्य के त्रिकाली प्रवाह में उस-उस समय के वर्तमान परिणाम को आगे-पीछे नहीं किया जा सकता।

जिसप्रकार वस्तु अनादि-अनंत है, उसीप्रकार उसका प्रत्येक समय का वर्तमान भी प्रवाहरूप से अनादि-अनंत है। वस्तु और वस्तु का वर्तमान आगे-पीछे नहीं हैं। वस्तु सदा अपने वर्तमान में ही रहती है। कभी भी वर्तमान बिना नहीं रहती, क्योंकि तीनों काल में से एक भी समय के वर्तमान को निकाल दें तो त्रिकाली वस्तु ही सिद्ध नहीं हो सकती। तीनों काल के वर्तमान का पिण्ड, सो सत् द्रव्य है और तीनों काल का प्रत्येक वर्तमान परिणाम अपने अवसर में सत् है, वह अपने से उत्पादरूप है, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप है और अखण्ड वस्तु के वर्तमानरूप से

ध्रौव्यरूप है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम से सत् है और वह द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे सत् को कौन बदल सकता है? सत् को जैसे का तैसा जान सकता है, किन्तु उसे कोई बदल नहीं सकता।

वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय का जैसा स्वभाव है, वैसा ज्ञान जानता है। अंश को अंशरूप से जानता है और त्रिकाली को त्रिकाली रूप से जानता है ह्न ऐसा स्वभाव जानने पर अकेले अंश की रुचि न रहने से त्रिकाली स्वभाव की ओर श्रद्धा ढल जाती है। अंश को अंशरूप से और अंशी को अंशीरूप से श्रद्धा करने पर श्रद्धा का सारा बल अंश पर से हटकर त्रिकाली द्रव्य-गुण की ओर ढल जाता है; यही सम्यग्दर्शन है।

द्रव्य, गुण और पर्याय ह्न ये तीनों स्वज्ञेय हैं, एक समय में द्रव्य-गुण-पर्याय का सम्पूर्ण पिण्ड पूर्ण स्वज्ञेय है, उसमें पर्याय तो एक समय की है, उस पर एक समय तक ही दृष्टि टिक सकती है तथा द्रव्य त्रिकाली है; अतः उस पर दृष्टि ले जाने से ही स्थिरता बढ़ सकती है। और उसकी रुचि में श्रद्धा का बल ढल जाता है। इसप्रकार द्रव्य को स्वज्ञेय बनाने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है; इसलिये इस ज्ञेय-अधिकार का दूसरा नाम सम्यक्त्व-अधिकार भी है।

स्वज्ञेय परज्ञेय से बिलकुल भिन्न है। यहाँ राग भी स्वज्ञेय में आता है। समयसार में द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से कथन है। वहाँ स्वभाव दृष्टि में राग की गौणता हो जाती है, इसलिये वहाँ तो राग आत्मा में होता ही नहीं, राग जड़ के साथ तादात्म्य वाला है ह्न ऐसा कहा जाता है। वहाँ दृष्टि अपेक्षा से राग को पर में डाल दिया और द्रव्य की दृष्टि कराई है तथा यहाँ प्रवचनसार में ज्ञान-अपेक्षा से कथन है, इसलिये सम्पूर्ण स्वज्ञेय बताने के लिए राग को भी स्वज्ञेय में लिया है। दृष्टि-अपेक्षा से राग पर में जाता है और ज्ञान-अपेक्षा से वह स्वज्ञेय में आता है, परन्तु राग में ही स्वज्ञेय पूरा नहीं हो जाता। रागरहित द्रव्य-गुण-स्वभाव भी स्वज्ञेय है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को स्वज्ञेयरूप से जाना, वहाँ राग में से एकत्वबुद्धि छूटकर रुचि का बल द्रव्य की ओर ढल गया। अकेले राग को सम्पूर्ण

तत्त्व स्वीकार करने से सम्पूर्ण ज्ञेय की प्रतीति नहीं होती थी। द्रव्य-गुण-पर्यायरूप सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति होने से उस प्रतीति का बल त्रिकाली की ओर बढ़ जाता है, इसलिये त्रिकाली की मुख्यता होकर उस ओर रुचि का बल ढलता है। इसप्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

स्वद्रव्य-गुण-पर्याय ह्न ये सब मिलकर स्वज्ञेय हैं, राग भी स्वज्ञेय है; किन्तु ऐसा जानने से रुचि का बल राग से हटकर अंतर में ढल जाता है। जो त्रिकाली तत्त्व को भूलकर मात्र प्रकट अंश को ही ज्ञेय का स्वीकार करती थी, वह मिथ्या रुचि थी। जब उपयोग द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को ज्ञेयरूप जानकर शक्तिरूप अंतरस्वभावोन्मुख हो, तभी स्वज्ञेय को पूर्ण प्रतीति में लिया माना जाता है और तभी उसने भगवान सर्वज्ञ कथित द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जाना ह्न ऐसा कहा जाता है।

जिसप्रकार, गुड़ को गुड़रूप जाने और विष को विषरूप जाने तो ही वह ज्ञान सही है। यदि गुड़ को विषरूप जाने और विष को गुड़रूप जाने तो वह ज्ञान सही नहीं है, मिथ्या है; उसीप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों मिलकर एक समय में सम्पूर्ण स्वज्ञेय है; उसमें द्रव्य को द्रव्यरूप जाने, गुण को गुणरूप जाने और पर्याय को पर्यायरूप जाने तो ही ज्ञान सच्चा है। जैसा है, वैसा न जाने या क्षणिक पर्याय को ही सम्पूर्ण तत्त्व मान ले अथवा क्षणिक पर्याय को ही सम्पूर्ण वस्तु जाने ह्न तो वह ज्ञान सच्चा नहीं होता। पदार्थ के सच्चे ज्ञान बिना श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती और ज्ञान-श्रद्धान बिना सम्यक्चारित्र, वीतरागता या मुक्ति नहीं होती।

त्रिकाली तत्त्व की रुचि की ओर ढलकर सम्पूर्ण स्वज्ञेय प्रतीति में आया, तब ज्ञान की परज्ञेय को जानने की यथार्थ शक्ति विकसित हुई। ज्ञान की जो वर्तमान दशा रागसन्मुख होकर उसे ही सम्पूर्ण स्वज्ञेय मानती थी, वह ज्ञानपर्याय मिथ्या थी, उसमें स्वपरप्रकाशक ज्ञानसामर्थ्य नहीं थी तथा जब ज्ञान अपनी वर्तमान पर्याय में अन्दर की सम्पूर्ण वस्तु को ज्ञेय बनाकर उस ओर ढलता है, तब वह ज्ञान सम्यक् होता है और उसमें स्वपरप्रकाशक शक्ति विकसित होती है।

परिणाम के प्रवाहक्रम में वर्तनेवाला द्रव्य है ह्न जहाँ ऐसा निश्चित किया, वहाँ रुचि का बल द्रव्य की ओर ढलने से रुचि सम्यक् हो जाती है। उस पर्याय में राग का अंश वर्तता है, वह भी ज्ञान के ख्याल से बाहर नहीं है, ज्ञान उसे स्व-ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है। इसप्रकार सम्पूर्ण स्वज्ञेय को (द्रव्य-गुण को तथा विकारी-अविकारी पर्यायों को) स्वीकार करने से द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ही का सम्यग्ज्ञान हो जाता है।

ज्ञेय के तीनों अंशों को (द्रव्य-गुण-पर्याय को) जो स्वीकार करे, वह ज्ञान सम्यक् है और जो एक अंश को ही (राग को ही) स्वीकार करे तो वह ज्ञान मिथ्या है तथा आत्मा को सर्वथा रागरहित स्वीकार करे तो वह ज्ञान भी मिथ्या है; क्योंकि राग-परिणाम भी साधक को वर्तते हैं, उन राग-परिणामों को स्व-ज्ञेयरूप से न जाने तो वह राग परिणाम में वर्तनेवाले द्रव्य को भी नहीं मानता ह्न ऐसा माना जायेगा।

राग परिणाम भी द्रव्य के तीनकाल के परिणाम की पद्धति में आ जाता है, रागपरिणाम कहीं द्रव्य के परिणाम की परम्परा से पृथक् नहीं है। तीनों काल के परिणामों की परम्परा में वर्तकर ही द्रव्य टिका रहता है।

निगोद या सिद्ध, कोई भी परिणाम हो; सभी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं और उस परिणाम में द्रव्य वर्त रहा है। परिणाम की जो रीति है, जो क्रम है, जो परम्परा है, जो स्वभाव है, उसमें द्रव्य अवस्थित है। वह द्रव्य अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणाम स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता। यहाँ स्वभाव कहने से शुद्ध परिणाम ही नहीं समझना, किन्तु विकारी या अविकारी समस्त परिणाम द्रव्य के स्वभाव हैं और वे सब स्वज्ञेय में आ जाते हैं ह्न ऐसा समझना। जो ऐसा जान लेता है, उसे शुद्धपरिणाम की उत्पत्ति होने लगती है। स्वज्ञेय में परज्ञेय नहीं है और परज्ञेय में स्वज्ञेय नहीं है ह्न ऐसा जानने में ही वीतरागी श्रद्धा आती है; क्योंकि मेरा स्वज्ञेय परज्ञेयों से भिन्न है ह्न ऐसा निर्णय करने से किसी भी परज्ञेय के अवलम्बन का अभिप्राय नहीं रहा। इसलिये स्वद्रव्य के अवलम्बन से सम्यक्श्रद्धा हो जाती है। सम्पूर्ण द्रव्य परिणामी और उसका एक अंश भी परिणाम;

सम्पूर्ण परिणामी द्रव्य की अंतर्दृष्टि बिना परिणाम अंश का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। परिणामों की परम्परा को द्रव्य नहीं छोड़ता, द्रव्य उस परम्परा में ही वर्तता है ह्न ऐसे निर्णय से लक्ष्य का बल कहाँ गया? द्रव्य पर ही गया न? इसप्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

द्रव्य तो अनंतशक्ति का त्रिकाली पिण्ड है और परिणाम तो एक समय पर्यंत का अंश है ह्न जहाँ ऐसा जाना, वहाँ श्रद्धा का बल अनंतशक्ति के पिण्ड की ओर ढल गया। इससे द्रव्य की प्रतीति हुई और द्रव्य-पर्याय दोनों का यथार्थ ज्ञान हुआ।

प्रत्येक वस्तु अपने परिणाम-स्वभाव में वर्त रही है, उस परिणाम के तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक) हैं; इसलिये उस परिणाम में प्रवर्तित वस्तु में भी ये तीनों लक्षण आ जाते हैं, क्योंकि वस्तु का अस्तित्व परिणाम-स्वभाव से पृथक् नहीं है। वस्तु 'है' ऐसा कहते ही उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आ जाते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बिना वस्तु है ह्न ऐसा सिद्ध नहीं होता। परिणाम है ह्न ऐसा कहने से वह परिणाम भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। अस्तित्व (सत्) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के बिना नहीं होता। इसलिये सत्त्व को त्रिलक्षण अनुमोदना चाहिए।

पहले यथार्थ श्रवण करके वस्तु को बराबर जाने कि ह्न यह ऐसा ही है तो ज्ञान निःशंक हो और ज्ञान निःशंक हो, तभी अंतर में उसका मंथन करे, निर्विकल्प अनुभव करे। किन्तु जहाँ ज्ञान मिथ्या हो और ऐसा होगा या वैसा ह्न ऐसी शंका में झूलता हो, वहाँ अन्तर में मंथन कहाँ से होगा? निःशंक ज्ञानरहित मंथन भी मिथ्या होता है अर्थात् मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा होती है। पहले वस्तुस्थिति क्या है, वह बराबर ध्यान में लेना चाहिए। वस्तु को बराबर ध्यान में लिये बिना किसका मंथन करेगा?

वस्तु परिणाम का उल्लंघन नहीं करती, क्योंकि परिणाम सत् है। यदि वस्तु परिणाम का उल्लंघन करे, तब तो सत् का ही उल्लंघन करे, इसलिये वस्तु है ह्न ऐसा सिद्ध न हो। वस्तु तीनों काल के परिणाम के प्रवाह में वर्तती है।

अहो, यह तो सम्पूर्ण ज्ञेय को प्रतीति में लेने का मार्ग है। इसे चाहे सम्यक् नियतिवाद कहो या यथार्थ मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ कहो, वीतरागता कहो अथवा धर्म कहो ह्न सब इसमें आ जाता है।

आचार्यदेव कहते हैं कि वस्तु का स्वभाव ही यही है। जो ऐसे स्वभाव को जाने, उसे अपूर्व आनन्द प्रगट हुए बिना न रहे। जहाँ वस्तु को त्रिलक्षण जाना, वहाँ आत्मा स्वयं सम्यक् स्वभाव में ढले बिना नहीं रहता तथा वस्तु सम्यक्-स्वभावरूप परिणमित होने पर अपूर्व आनंद का अनुभव होता ही है। इसलिये यहाँ कहा है कि ऐसे वस्तुस्वभाव को आनंद से मान्य करना।

देखो, उस-उस परिणाम का वस्तु उल्लंघन नहीं करती, इसलिये वस्तु पर ही दृष्टि गई, परिणाम-परिणामी की एकता हुई, इसलिये सम्पूर्ण सत् एकाकार हो गया ह्न सम्पूर्ण स्व-ज्ञेय अभेद हो गया। जो ऐसे स्व-ज्ञेय को जाने और माने, उसे वस्तुस्वभाव की सम्यक्प्रतीति और अपूर्व आनंद का अनुभव हुए बिना नहीं रहता।

जिसप्रकार केवलज्ञानी लोकालोक को सत्‌रूप से जानते हैं, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी उसे ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है और उसे जाननेवाले अपने ज्ञानस्वभाव को भी वह स्व-ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है। वहाँ उसकी रुचि स्वभाववान द्रव्य की ओर ढलती है, उस रुचि के बल से निर्विकल्पता हुए बिना नहीं रहती, निर्विकल्पता में आनंद का अनुभव भी साथ ही होता है।

प्रश्न :ह्न कितने काल में कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ह्न ऐसी तो कोई बात इसमें नहीं आयी?

उत्तर :ह्न इतने काल में इतने जीव मोक्ष जाते हैं ह्न यहाँ ऐसी गिनती की मुख्यता नहीं है, किन्तु मोक्ष कैसे हो? उसकी मुख्य बात है। स्वयं ऐसे यथार्थ स्वभाव को पहिचाने तो अपने को सम्यक्त्व और वीतरागता हो, और मोक्ष हो जाये। मोक्ष कब होता है ह्न ऐसी काल की मुख्यता नहीं है, किन्तु आत्मा का मोक्ष किस प्रकार होता है ह्न यही मुख्य प्रयोजन है और इसी की यह बात चल रही है।

जिसप्रकार सत् है, उसीप्रकार स्वीकार करे तो ज्ञान सत् हो और शांति आये। इस गाथा में दो सम-अंक (११) हैं और वह भी दो नौ-नौ के। नौ प्रकार के क्षायिकभाव हैं, इसलिये नौ का अंक क्षायिकभाव सूचक है और दो नौ इकट्ठे हुए, इसलिये समभाव-वीतरागता बतलाते हैं, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ह्न दोनों साथ आ जायें ह्न ऐसी अपूर्व बात है। अंक तो जो है सो है, किन्तु यहाँ अपने भाव का आरोप करना है न!

वर्तमान वर्तते परिणाम में वस्तु वर्त रही है, इसलिये सम्पूर्ण वस्तु ही वर्तमान में वर्तती है। वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाली है। यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहकर सत् सिद्ध करते हैं।

आत्मा सत्, जड़ सत्, एक द्रव्य के अनंत गुण सत्, तीन काल के स्व-अवसर में होनेवाले परिणाम सत्, प्रत्येक समय के परिणाम, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सत्। बस, इस सत् में कोई फेरफार नहीं होता। जहाँ ऐसा स्वीकार किया, वहाँ मिथ्यात्व को बदलकर सम्यक्त्व प्रगट करने की बात ही नहीं रही; क्योंकि जिसने ऐसा स्वीकार किया, उसने अपने ज्ञायक भाव को ही स्वीकार किया और वह द्रव्य स्वभावोन्मुख हुआ, वहाँ वर्तमान परिणाम में सम्यक्त्व का उत्पाद स्वतः हो जाता है। पूर्व के तीव्र पाप परिणाम वर्तमान परिणाम में बाधक नहीं होते, क्योंकि वर्तमान में उनका अभाव है। पूर्व के तीव्र पाप के परिणाम इस समय बाधक होंगे ह्न ऐसा जिसने माना, उसको यह विपरीत मान्यता बाधक होती है, किन्तु पूर्व के पाप तो उसको भी बाधक नहीं हैं। पूर्व के तीव्र पाप के परिणाम इस समय बाधक होंगे ह्न ऐसा जिसने माना, उसने द्रव्य को त्रिलक्षण नहीं जाना। यदि त्रिलक्षण द्रव्य को जाने तो उस त्रिलक्षण द्रव्य के वर्तमान उत्पाद परिणाम में पूर्व परिणाम का व्यय है, इसलिये पूर्व परिणाम बाधा देते हैं ह्न ऐसा वह न माने, किन्तु प्रतिसमय के वर्तमान परिणाम को स्वतंत्र सत् जाने तो उसकी दृष्टि, वे परिणाम जिसके हैं ह्न ऐसे द्रव्य पर जाये, इसलिये द्रव्यदृष्टि में उसे वीतरागता का ही उत्पाद होता जाये ह्न इसप्रकार इसमें मोक्षमार्ग आ जाता है।

वीतराग या राग, ज्ञान या अज्ञान, सिद्ध या निगोद किसी भी एकसमय के परिणाम को यदि निकाल दें तो द्रव्य का सत्पना ही सिद्ध नहीं होता; क्योंकि उस-उस समय के परिणाम में द्रव्य वर्त रहा है, इसलिये अपने क्रमबद्ध परिणामों के प्रवाह में वर्तमान वर्त रहे द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही आनंद से मानना।

स्वभाव में अवस्थित रहनेवाला द्रव्य सत् है ह्न यह बात सिद्ध करने के लिए प्रथम तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम कहकर स्वभाव सिद्ध किया और स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है ह्न ऐसा सिद्ध किया।

पहले परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने के लिए प्रदेशों का उदाहरण दिया था, अब द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को मोतियों के हार का दृष्टान्त देकर समझाते हैं।

निश्चित लम्बाईवाले लटकते हुए मोती के हार में, अपने-अपने स्थान में प्रकाशित समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट न होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता डोरा अवस्थित होने से हार में त्रिलक्षणपना है। उदाहरणार्थ १०८ मोतियों का लटकता हुआ हार लिया जाये तो उसमें सभी मोती अपने-अपने स्थान में प्रकाशित हैं और पीछे-पीछे के स्थान में पीछे-पीछे का मोती प्रकाशित होता है, इसलिये उन मोतियों की अपेक्षा से हार का उत्पाद है। तथा एक के बाद दूसरे मोती को लक्ष्य में लेने से पहले का मोती लक्ष्य में से छूट जाता है, इसलिये पहले का मोती दूसरे स्थान पर प्रकाशित नहीं होता, इस अपेक्षा से हार का व्यय है। और सभी मोतियों में परस्पर सम्बन्ध जोड़नेवाला अखण्ड डोरा होने से हार ध्रौव्यरूप है ह्न इसप्रकार हार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे लक्षणवाला निश्चित होता है।

हार का प्रत्येक मोती अपने-अपने स्थान में है, पहला मोती दूसरा नहीं होता, दूसरा मोती तीसरा नहीं होता। जो जहाँ है, वहाँ वही है। पहले स्थान में पहला मोती है, दूसरे स्थान में दूसरा मोती है और हार का अखण्ड डोरा सर्वत्र है। मोती की माला फेरते समय पीछे-पीछे का मोती

अंगुली के स्पर्श में आता जाता है, उस अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है।

दृष्टान्त में अमुक लम्बाईवाला हार था, सिद्धान्त में नित्यवृत्तिवाला द्रव्य है।

दृष्टान्त मे लटकता हार था, सिद्धान्त में परिणमन करता हुआ द्रव्य है।

दृष्टान्त में मोतियों का अपना-अपना स्थान था, सिद्धान्त में परिणामों का अपना-अपना अवसर है-स्वकाल है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाला सम्पूर्ण द्रव्य सत् है, उसमें कहीं फेरफार नहीं होता ह्न इसप्रकार सम्पूर्ण सत् लक्ष्य में आये बिना ज्ञान में धैर्य उत्पन्न नहीं होता। जिसे पर में कहीं फेरफार करने की बुद्धि है, उसका ज्ञान अधीर-आकुल-व्याकुल है और सत् जानने से कहीं भी फेरफार की बुद्धि नहीं रही; इसलिये ज्ञान धीर होकर अपने में स्थिर हुआ ह्न ज्ञातारूप से रह गया। ऐसा का ऐसा सम्पूर्ण द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव से सत्स्वरूप विद्यमान है ह्न इसप्रकार द्रव्य पर दृष्टि जाने से सम्यक्त्व का उत्पाद और मिथ्यात्व का व्यय हुआ और आगे भी उस द्रव्य की सन्मुखता से क्रमशः वीतरागता की वृद्धि होती जाती है। बस, यही धर्म प्रगट होने की रीति है।

प्रत्येक द्रव्य नित्य स्थायी है, नित्य स्थायी द्रव्य लटकते हुए हार की भाँति सदैव परिणमित होता है, उसके परिणाम अपने-अपने अवसर में प्रकाशित होते हैं। जिसप्रकार माला में मोतियों का निश्चित क्रम जमा हुआ है, माला फिरने से वह क्रम उलटा-सीधा नहीं होता; उसीप्रकार द्रव्य के तीन काल के परिणामों का निश्चित स्व-अवसर है, उस अवसर में ही वे होते हैं, आगे-पीछे नहीं होते। ऐसा निश्चय करते ही ज्ञान में वीतरागता होती है। यह निश्चित करने से अनंतवीर्य पर से विमुख होकर द्रव्योन्मुख हो जाता है, पर्यायमूढ़ता नष्ट हो जाती है और द्रव्य की सन्मुखता से वीतरागता की उत्पत्ति होने लगती है। सामनेवाले पदार्थ के परिणाम उसके अवसर के अनुसार और मेरे परिणाम मेरे अवसर के अनुसार

होते हैं। ऐसा निश्चित हुआ, इसलिये पर में या स्व में कहीं भी परिणाम के फेरफार की बुद्धि न रहने से जो ज्ञान, ज्ञान में ही एकाग्रता को प्राप्त हो जाता है, उसी को धर्म और मोक्षमार्ग कहते हैं।

एक ओर केवलज्ञान और दूसरी ओर सामने द्रव्य के तीन काल के स्व-स्व-अवसर में होनेवाले समस्त परिणाम, इनमें फेरफार होना सम्भव ही नहीं है; क्योंकि द्रव्य के परिणाम में फेरफार नहीं होता। ऐसी वस्तुस्थिति की प्रतीति करने से ही ज्ञान में धैर्य आ जाता है। और जहाँ ज्ञान धीर होकर स्वोन्मुख होने लगा, वहाँ मोक्ष पर्याय होते देर नहीं लगती। इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति में मोक्षमार्ग आ जाता है।

द्रव्य के समस्त परिणाम स्व-अवसर में प्रकाशित होते हैं, यह सामान्यरूप से बात की, अब उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को घटाते हैं। द्रव्य जब देखो, तब वर्तमान परिणाम में वर्तता है। जिस काल के जो परिणाम हैं, उस काल में वे ही प्रकाशित होते हैं ह्न उनके पहले के परिणाम उस समय प्रकाशित नहीं होते। पहले परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते समय वर्तमान परिणाम पूर्वपरिणाम के व्ययरूप है ह्न ऐसा कहा था और यहाँ द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने में कथनशैली में परिवर्तन करके ऐसा कहा कि वर्तमान परिणाम के समय पूर्व के परिणाम प्रगट नहीं होते, इसलिये उन पूर्व परिणामों की अपेक्षा से द्रव्य व्ययरूप है। जिस परिणाम में द्रव्य वर्त रहा हो, उस परिणाम की अपेक्षा द्रव्य उत्पादरूप है, उसके पूर्व के परिणाम (जो कि इस समय प्रगट नहीं है) की अपेक्षा से द्रव्य व्ययरूप है और समस्त परिणामों में अखण्ड बहते हुए द्रव्य के प्रवाह की अपेक्षा से वह ध्रौव्यरूप है ह्न इसप्रकार द्रव्य का त्रिलक्षणपना ज्ञान में निश्चित होता है। ज्ञेयों का निर्णय करनेवाला ज्ञान स्व में स्थिर होता है, इसी का नाम तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है।

मोतियों की माला लेकर जप करो तो उनमें पहले एक मोती अंगुली के स्पर्श में आता है और फिर वह छूटकर दूसरा मोती स्पर्श में आता है, उस समय पहला मोती स्पर्श में नहीं आता; इसलिये पहले मोती के स्पर्श

की अपेक्षा से माला का व्यय हुआ, दूसरे मोती के स्पर्श को अपेक्षा माला का उत्पाद हुआ और माला रूप से प्रवाह चालू रहा; इसलिये माला ध्रौव्य रही। इसप्रकार एक के पश्चात् एक क्रमशः होनेवाले परिणामों में वर्तनेवाले द्रव्य में भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य घटित हो जाता है।

कोई यदि ऐसा प्रश्न करे कि उत्पाद-व्यय तो पर्याय के होते हैं और द्रव्य ध्रौव्यरूप ही होता है, उसमें परिणमन नहीं होता! तो उसका समाधान यह है कि द्रव्य एकान्त नित्य नहीं है, किन्तु नित्य-अनित्यस्वरूप है; इसलिये परिणाम बदलने से उन परिणामों में वर्तनेवाला द्रव्य भी परिणमित होता है। परिणाम का उत्पाद-व्यय होने से द्रव्य भी उत्पाद-व्ययरूप परिणमित होता ही है। द्रव्य के परिणमन के बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय नहीं होंगे और द्रव्य की अखण्ड ध्रौव्यता भी निश्चित नहीं होगी, इसलिये द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। पर्याय में ही उत्पाद-व्यय हैं और द्रव्य तो ध्रौव्य ही रहता है, उसमें उत्पाद-व्यय होते ही नहीं ह्न ऐसा नहीं है। परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में प्रवर्तमान द्रव्य भी एक समय में त्रिलक्षणवाला है।

अहो! स्व या पर प्रत्येक द्रव्य के परिणाम अपने-अपने काल में होते हैं। परद्रव्य के परिणाम उस द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से होते हैं और मेरे परिणाम मेरे द्रव्य में से क्रमानुसार होते हैं ह्न ऐसा निश्चित करने से परद्रव्य के ऊपर से दृष्टि हट गई और स्वोन्मुख हुआ। अब स्व में भी पर्याय पर से दृष्टि हट गई, क्योंकि उस पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती; किन्तु द्रव्य में से पर्याय प्रगट होती है, इसलिये द्रव्य पर दृष्टि गई। उसे त्रिकाली सत् की प्रतीति हुई। ऐसी त्रिकाली सत् की प्रतीति होने से द्रव्य अपने परिणाम में स्वभाव की धारारूप बहता है और विभाव की धारा का नाश करता हुआ परिणमन करता है। इसलिये द्रव्य त्रिलक्षणरूप ही है।

पहले परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात की थी और यहाँ द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात की है।

द्रव्य की सत्ता अर्थात् द्रव्य का अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला

है। द्रव्य की सत्ता मात्र उत्पादरूप, व्ययरूप या ध्रौव्यरूप नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसी तीन लक्षणवाली ही द्रव्य की सत्ता है। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य ह्न ऐसी तीन पृथक्-पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं, किन्तु वे तीनों मिलकर एक सत्ता हैं।

पहले तो यह कहा था, जो परिणाम उत्पन्न हुए, वे अपनी अपेक्षा से उत्पादरूप, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप और अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्यरूप हैं ह्न और यहाँ तो अब अन्तिम योगफल निकालकर द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उतारते हुए ऐसा कहा है कि द्रव्य में पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं, इससे द्रव्य का उत्पाद है, पहले-पहले के परिणाम उत्पन्न नहीं होते; इसलिये द्रव्य व्ययरूप है और द्रव्य सर्वपरिणामों में अखण्डरूप से प्रवर्तमान होता है, इसकारण द्रव्य ही ध्रौव्य है। इसप्रकार द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना।

अहो! समस्त द्रव्य अपने वर्तमान परिणामरूप से उत्पन्न होते हैं, पूर्व के परिणाम वर्तमान में नहीं रहते, इसलिये पूर्व परिणामरूप से व्यय को प्राप्त हैं और अखण्डरूप से समस्त परिणामों के प्रवाह में द्रव्य ध्रुवरूप से वर्तते हैं। बस, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से वर्तते हुए द्रव्य टंकोत्कीर्ण सत् हैं। ऐसे सत् में कुछ भी आगे-पीछे नहीं होता। अपने ज्ञान में ऐसे टंकोत्कीर्ण सत् को स्वीकार करने से, फेरफार करने की बुद्धि तथा ऐसा क्यों? ह्न ऐसी विस्मयता दूर हुई, उसी में सम्यक्श्रद्धा और वीतरागता आ गई अर्थात् मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ।

यह वस्तुविज्ञान कहा जा रहा है। पदार्थ का जैसा स्वभाव है, वैसा ही उसका ज्ञान करना, सो पदार्थ-विज्ञान है। ऐसे पदार्थ-विज्ञान के निर्णय बिना कभी शान्ति नहीं होती।

जहाँ, प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव वाला है ह्न ऐसा जाना, वहाँ वस्तु के भिन्नत्व की बाड़ बँध गई। मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में पर का अभाव है और पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में मेरा अभाव है, मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय में मैं और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय में पर ह्न ऐसा निर्णय

करने से परद्रव्य का स्वामित्व छोड़कर स्व-द्रव्योन्मुख होने से स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का रक्षक हुआ अर्थात् ध्रौव्य के आश्रय से निर्मल पर्याय का उत्पाद होने लगा, वही धर्म है। पर को मैं बदल दूँ, जब ऐसा मानता था, तब पराश्रयबुद्धि से विकारभावों की ही उत्पत्ति होती थी और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की रक्षा नहीं करता था, इसलिये वह अधर्म था।

आचार्य भगवान ने इस गाथा में सत् को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त बतलाकर अद्भुत बात की है। यह बात वर्तमान समय के परिणाम की है; क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्य वर्तमान परिणाम में वर्त रहा है। आशय यह है कि परिणाम और द्रव्य दोनों साथ ही हैं। द्रव्य कभी भी परिणाम से रहित नहीं होता, परिणाम कभी भी द्रव्य से रहित नहीं होता। परिणाम वर्तमान में हो और द्रव्य गत-काल में रह जाये ह्न ऐसा नहीं होता तथा द्रव्य है, किन्तु परिणाम नहीं है ह्न ऐसा भी नहीं होता। इसलिये परिणाम और द्रव्य दोनों वर्तमान में साथ ही हैं ह्न ऐसा समझना। द्रव्य में अपने स्वकाल में सदैव वर्तमान परिणाम होते हैं। जब देखो, तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणाम में, ही वर्त रहा है, ऐसे वर्तमान में प्रवर्तमान द्रव्य की प्रतीति करना वीतरागता का मूल है।

परिणाम का स्व-अवसर ह्न ऐसा जो कहा, वहाँ परिणाम का जो वर्तन है, वही उसका अवसर है। अवसर और परिणाम दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। जिसका जो अवसर है, उस समय वही परिणाम वर्तता है, उस परिमाम में वर्तता हुआ द्रव्य उत्पादरूप है, उससे पूर्व के परिणाम में द्रव्य नहीं वर्तता, इससे वह व्ययरूप है और सर्वत्र अखण्डपने की अपेक्षा से द्रव्य ध्रौव्यरूप है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना सिद्ध होता है।

जीव और अजीव समस्त द्रव्य और उनके अनादि-अनंत परिणाम सत् हैं, वह सत् स्वयंसिद्ध है, उसका कोई दूसरा रचयिता या परिणमन करानेवाला नहीं है। जिसप्रकार कोई द्रव्य अपना स्वरूप छोड़कर अन्यरूप

नहीं होता, उसीप्रकार द्रव्य का कोई परिणाम भी आगे-पीछे नहीं होता। द्रव्य में अपने-अपने स्वकाल में परिणाम उत्पन्न होते हैं, पूर्व के परिणाम उत्पन्न नहीं होते और द्रव्य अखण्ड धारारूप बना रहता है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाववाले द्रव्य को जानने से अपने ज्ञायकस्वभाव की प्रतीति होती है और उस ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता से भगवान आत्मा स्वभावधारा में बहता है, विभावधारा से व्यय को प्राप्त होता है और उसप्रवाह में स्वयं अखण्डरूप से ध्रुव रहता है। इसप्रकार वीतरागता होकर केवलज्ञान और मुक्ति होती है।

अहो! मुक्ति के कारणभूत ऐसा लोकोत्तर वस्तुविज्ञान समझानेवाले संतों को शत-शत वन्दन हो।

गाथा ११ के भावार्थ पर प्रवचन

प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभाव में रहता है, इसलिये सत् है। स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। प्रत्येक वस्तु तीनों काल अपने स्वभाव में अर्थात् अपने परिणाम में रहती है। जिसप्रकार सुवर्ण अपने कुण्डल, हार आदि परिणामों में वर्तता है; उसीप्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने वर्तमान परिणामों में वर्तता है, अपने परिणाम से पृथक् कोई द्रव्य नहीं रहता। कोई भी पदार्थ अपने परिणामस्वभाव का उल्लंघन करके पर के परिणाम का स्पर्श नहीं करता और परवस्तु उसके परिणाम का उल्लंघन करके अपने को स्पर्श नहीं करती। प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न अपने-अपने परिणाम में ही रहती है। आत्मा अपने ज्ञान या रागादि परिणाम में स्थित है, किन्तु शरीर की अवस्था में आत्मा विद्यमान नहीं है। शरीर की अवस्था में पुद्गल विद्यमान है। शरीर के अनंत रजकणों में भी प्रत्येक रजकण भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी अवस्था में विद्यमान है। ऐसा वस्तुस्वभाव देखनेवाले को पर में कहीं भी एकत्वबुद्धि नहीं होती और पर्यायबुद्धि के राग-द्वेष नहीं होते।

आत्मा और अन्य सभी पदार्थ प्रतिसमय अपनी नयी अवस्थारूप उत्पन्न होते हैं, पुरानी अवस्थारूप से व्यय को प्राप्त होते हैं और अखण्ड

वस्तुरूप से ध्रौव्य रहते हैं। प्रत्येक समय के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हैं, ये परिणाम स्वभाव हैं और स्वभाववान हैं। स्वभाववान द्रव्य अपने परिणामस्वभाव में स्थित है। कोई भी वस्तु या द्रव्य अपना स्वभाव छोड़कर दूसरे के स्वभाव में वर्ते अथवा दूसरे के स्वभाव को करे ह्न ऐसा कभी नहीं होता। जो शरीर की अवस्थाएँ हैं, उनमें पुद्गल वर्तते हैं, आत्मा उनमें नहीं वर्तता, तथापि आत्मा उस शरीर की अवस्था में कुछ करता है ह्न ऐसा जिसने माना, उसकी मान्यता मिथ्या है।

जिसप्रकार अफीम की कड़वाहट आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम में अफीम ही विद्यमान है, उसमें कहीं गुड़ विद्यमान नहीं है और गुड़ के मिठास आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम में गुड़ ही विद्यमान है, उसमें अफीम विद्यमान नहीं है। उसीप्रकार आत्मा के ज्ञान आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामस्वभाव में आत्मा ही विद्यमान है, उनमें इन्द्रियाँ या शरीरादि विद्यमान नहीं है, इसलिये उनसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। और पुद्गल के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामस्वभाव में पुद्गल ही विद्यमान है, उनमें आत्मा विद्यमान नहीं है, इसलिये आत्मा शरीरादि की क्रिया नहीं करता। इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में ही विद्यमान है। बस, ऐसे पदार्थ के स्वभाव को जानना ही वीतरागी विज्ञान है, उसी से धर्म प्रगट होता है।

प्रत्येक पदार्थ की मर्यादा-सीमा अपने-अपने स्वभाव में रहने की है, अपने स्वभाव की सीमा से बाहर निकलकर पर में कुछ करने की किसी पदार्थ में शक्ति ही नहीं है ह्न ऐसी वस्तुस्थिति में ही प्रत्येक तत्त्व अपने स्वतंत्र अस्तित्व रूप से रह सकता है। यही बात अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्त से कही जाये तो प्रत्येक पदार्थ अपने स्व-चतुष्टय से (द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से) अस्तिरूप है और पर के चतुष्टय से नास्तिरूप है। इसप्रकार प्रत्येक तत्त्व भिन्न-भिन्न स्थित है ह्न ऐसा निश्चित करने से स्वतत्त्व को परतत्त्व से भिन्न जाना और अपने स्वभाव में प्रवर्तमान स्वभाववान द्रव्य की दृष्टि हुई, यही सम्यक्रुचि, सम्यग्ज्ञान और वीतरागता का कारण है।

जैसी वस्तु हो, उसे वैसा ही जानना सम्यग्ज्ञान है। जिसप्रकार लोक में गुड़ को गुड़ जाने और अफीम को अफीम जाने तो गुड़ और अफीम का सच्चा ज्ञान है, किन्तु यदि गुड़ को अफीम जाने या अफीम को गुड़ जाने तो वह मिथ्याज्ञान है। उसीप्रकार जगत के पदार्थों में जड़-चेतन सभी पदार्थ स्वतंत्र हैं। प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव से स्थित है ह्न ऐसा जानना, सो सम्यग्ज्ञान है और एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के कारण कुछ होता है ह्न ऐसा मानना मिथ्याज्ञान है; क्योंकि उसने पदार्थ के स्वभाव को जैसा है, वैसा नहीं जाना, किन्तु विपरीत माना है।

आत्मा का ज्ञायक स्वभाव है और पदार्थों का ज्ञेय स्वभाव है, पदार्थों में फेरफार (आगे-पीछे) हो ह्न ऐसा उनका स्वभाव नहीं है और उनके स्वभाव में कुछ फेरफार करे ह्न ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। जिसप्रकार आँख अफीम को अफीमरूप से और गुड़ को गुड़रूप से देखती है, किन्तु अफीम को बदलकर गुड़ नहीं बनाती और गुड़ को बदलकर अफीम नहीं बनाती और वह अफीम भी अपना स्वभाव छोड़कर गुड़रूप नहीं होता। उसीप्रकार आत्मा का ज्ञानस्वभाव समस्त स्व-पर ज्ञेयों को यथावत् जानता है, किन्तु उनमें कहीं कुछ भी फेरफार नहीं करता और ज्ञेय भी अपने स्वभाव को छोड़कर अन्यरूप नहीं होते। बस, ज्ञान और ज्ञेय के ऐसे स्वभाव की प्रतीति ही वीतरागी श्रद्धा है और ऐसा ही वीतरागी विज्ञान है।

ज्ञेयों को यथावत् स्वतंत्र जानना सम्यग्ज्ञान की क्रिया है। ज्ञान जानने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त वह कहीं फेरफार करने का कार्य नहीं करता। प्रत्येक पदार्थ स्वयंसिद्ध सत् है और उसमें पर्यायधर्म है, वे पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाली हैं अर्थात् पदार्थ में प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं, उनमें वह पदार्थ वर्त रहा है; क्योंकि सत् अपने परिणाम में वर्तता हुआ स्थित है। यदि वस्तु स्वयं स्थित रहने के लिए दूसरे के परिणाम का आश्रय माँगे तो वह वस्तु ही सत् नहीं रहती।

सत् का स्वभाव अपने ही परिणाम में प्रवर्तन करने का है। सत् स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। सत् के अपने परिणाम का उत्पाद यदि दूसरे से होता हो तो वह स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् ही नहीं रहता। इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है ह्न ऐसा मानते ही परिणाम की स्वतंत्रता की स्वीकृति तो आ ही गई तथा परिणाम परिणाम में से नहीं, किन्तु परिणामी (द्रव्य) में से आते हैं; इसलिये उसकी दृष्टि परिणामी पर गई और वह स्वद्रव्य के सन्मुख हुआ। स्व-द्रव्य की सन्मुखता में जो सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति होती है, वही मोक्ष का कारण है।

प्रश्न :ह्न सोना और ताँबा ह्न दोनों का मिश्रण होने पर तो वे एक-दूसरे में एकमेक हो जाते हैं न?

उत्तर :ह्न भाई! वस्तुस्थिति को समझो। सोना और ताँबा कभी एकमेक होते ही नहीं। संयोगदृष्टि से सोना और ताँबा एकमेक हुए ह्न ऐसा कहा जाता है, किन्तु पदार्थ के स्वभाव की दृष्टि से तो सोना और ताँबा कभी एकमेक हुए ही नहीं हैं; क्योंकि जो सोने के रजकण हैं, वे अपने सुवर्ण-परिणाम में ही वर्तते हैं और जो ताँबे के रजकण हैं वे अपने ताँबा - परिणाम में ही वर्तते हैं, एक रजकण दूसरे रजकण के परिणाम में नहीं वर्तता। सोने के दो रजकणों में से भी उसका एक रजकण दूसरे में नहीं वर्तता। यदि एक पदार्थ दूसरे में और दूसरा तीसरे में मिल जाये, तब तो जगत में कोई स्वतंत्र वस्तु ही न रहे। सोना और ताँबा मिश्र हुआ ह्न ऐसा कहने से भी उन दोनों की भिन्नता ही सिद्ध होती है; क्योंकि मिश्रण दो का होता है, एक में मिश्रण नहीं कहलाता। इसलिये मिश्रण कहते ही पदार्थों का भिन्न-भिन्न अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावरूप से सत् रहती है, दूसरा कोई विपरीत माने तो उससे कहीं वस्तु का स्वभाव बदल नहीं जाता। कोई अफीम को गुड़ माने तो इससे कहीं अफीम की कड़वाहट दूर नहीं हो जायेगी, अफीम को गुड़ मानकर खाये तो उसे कड़वाहट का ही अनुभव होगा। उसीप्रकार तत्त्व को जैसे का तैसा स्वतंत्र न मानकर पर के आधार से

स्थित माने तो वस्तु पराधीन नहीं हो जाती, किन्तु उसने सत् की विपरीत मान्यता की, इसलिये उसका ज्ञान ही मिथ्या होता है और उस मिथ्याज्ञान के फल में उसे चौरासी का अवतार होता है। कोई जीव पुण्य का शुभराग करके ऐसा माने कि मैं धर्म करता हूँ तो कहीं उसे राग से धर्म नहीं होगा, किन्तु उसने वस्तुस्वरूप को विपरीत जाना है; इसलिये उस अज्ञान के फल में उसे चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

परिणाम स्वभाव है और द्रव्य स्वभाववान है ह्न ऐसा जानकर स्वभाववान द्रव्य की रुचि होते ही उसीसमय सम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय और अखण्डरूप से आत्मा की ध्रुवता है।

प्रत्येक वस्तु सत् है, सत् त्रिकाल स्वयंसिद्ध है। यदि सत् त्रिकाली न हो तो वह असत् सिद्ध होगा। वस्तु कभी असत् नहीं होती। वस्तु त्रिकाल है, इसलिये उसका कोई कर्त्ता नहीं है; क्योंकि त्रिकाली का रचयिता नहीं होता। यदि रचयिता कहो तो उससे पूर्व वस्तु नहीं थी ह्न ऐसा सिद्ध होगा अर्थात् वस्तु का नित्यपना नहीं रहेगा। वस्तु त्रिकाल सत् है और वह वस्तु परिणाम स्वभाववाली है। त्रिकाली द्रव्य ही अपने तीनों काल के वर्तमान-परिणामों की रचना करता है। वे परिणाम भी स्व-अवसर में सत् हैं, इसलिये उन परिणामों का रचयिता भी दूसरा कोई नहीं है। जिसप्रकार त्रिकाली द्रव्य का कर्त्ता कोई ईश्वर आदि नहीं है, उसीप्रकार उस त्रिकाली द्रव्य के वर्तमान परिणाम का कर्त्ता भी कोई दूसरा निमित्त, कर्म आदि नहीं है। द्रव्य अपने प्रत्येक समय के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में स्थित रहता है, इसलिये सत् है। यदि द्रव्य दूसरे के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का अवलम्बन करे तो वह स्वयं सत् नहीं रह सकता। इसलिये जो जीव द्रव्य को यथार्थतया सत् जानता हो, वह द्रव्य का या द्रव्य की किसी पर्याय का कर्त्ता दूसरे को नहीं मानता, अन्यथा उसने वास्तव में सत् को नहीं जाना है।

अहो! इस जीव ने वस्तु के सत्स्वभाव को जाने बिना बाह्य क्रियाकाण्ड के लक्ष्य से अनंतकाल बिता दिया, किन्तु वस्तु का सत्स्वभाव नहीं जाना; इसलिये यह संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

वस्तु अपने परिणाम में परिणमन करती है, वह परिणाम से पृथक् नहीं रहती। प्रत्येक समय के परिणाम के समय सम्पूर्ण वस्तु साथ में वर्त रही है ह्न ऐसा जाने तो अपने को क्षणिक राग जितना न मानकर, उसी समय अन्तर के स्वभाव से पूर्ण रागरहित वस्तु का विश्वास करते ही राग की रुचि का बल टूटकर सम्पूर्ण वस्तु की ओर रुचि का बल ढल जाता है, राग और आत्मा का भेदज्ञान हो जाता है। मैं पर में नहीं वर्तता, मेरे परिणाम में परवस्तु नहीं वर्तती, किन्तु मैं अपने परिणाम में ही वर्तता हूँ ह्न इसप्रकार परिणाम और परिणामी की स्वतंत्रता जानने से रुचि पर में नहीं जाती, परिणाम पर भी नहीं रहती, किन्तु परिणामी द्रव्य में प्रविष्ट हो जाती है।

वस्तु परिणाम में वर्तती है ह्न ऐसा निश्चित करने में पर्यायबुद्धि दूर होकर द्रव्यदृष्टि हो जाती है, उसी में वीतरागता विद्यमान है। मेरी भविष्य की केवलज्ञान पर्याय में भी यह द्रव्य वर्तेगा, इसलिये भविष्य की केवलज्ञान पर्याय को देखना भी नहीं रहा। द्रव्य की सन्मुखता में अल्पकाल में केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

अहो! मैं अपने परिणामस्वभाव में हूँ, परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वरूप है, उसी में आत्मद्रव्य वर्तता है ह्न इसप्रकार स्व-वस्तु की दृष्टि होने से पर से लाभ-हानि मानने का मिथ्यात्व नहीं रहता। वहाँ सम्यग्ज्ञान पर्यायरूप से उत्पाद है, मिथ्याज्ञान पर्यायरूप से व्यय है और ज्ञान में अखण्ड परिणामरूप से ध्रौव्यता है। इसप्रकार इसमें धर्म आ जाता है।

परिणामी के परिणाम हैं ह्न ऐसा न मानकर जिसने पर के कारण परिणामों को माना, उसने परिणामी को दृष्टि में ही नहीं लिया, परन्तु अपने परिणाम का कर्त्ता परद्रव्य को माना अर्थात् स्व-पर को एक माना; इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है, किन्तु परिणाम अपने परिणामी के हैं ह्न इसप्रकार परिणाम और परिणामी की स्वतंत्रता की रुचि में स्वद्रव्य की सम्यक्रुचि उत्पन्न होकर मिथ्यारुचि का नाश हो जाता है।

देखो, यह वस्तुस्थिति का वर्णन है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय या

कल्पना नहीं है; किन्तु वस्तुएँ जैसे स्वभाव से हैं, वैसी सर्वज्ञ भगवान ने देखी हैं और वही जैनदर्शन में कहा है। जैनदर्शन कहो या वस्तु का स्वभाव कहो। उसका ज्ञान कर तो तेरा ज्ञान सच्चा होगा और भव का परिभ्रमण दूर होगा। यदि वस्तु के स्वभाव को विपरीत मानेगा तो असत् वस्तु की मान्यता से तेरा ज्ञान मिथ्या होगा और परिभ्रमण का अंत नहीं आयेगा, क्योंकि मिथ्यात्व ही सबसे महान पाप माना गया है, वही अनंत संसार का मूल है। जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम है, वह स्वभाव है और स्वभाव स्वभाववान के कारण है। इसप्रकार स्वभाव और स्वभाववान को दृष्टि में लेने से, मैं पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को करूँ या मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को पर करे ह्न यह बात नहीं रहती। इसलिये स्वयं अपने स्वभाववान की ओर उन्मुख होने से आत्मज्ञान उदित हो जाता है। यही तो धर्म की शुरुआत है। लोगों ने जो बाह्य आचरण में धर्म मान रखा है, वह तो इसका फल है।

वस्तु उसे कहते हैं; जो अपने गुण-पर्याय में वास करे, अपने गुण-पर्याय से बाहर वस्तु कुछ नहीं करती और न वस्तु के गुण-पर्याय को कोई दूसरा करता है। ऐसे भिन्न-भिन्न तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। पहले सम्यग्दर्शन होता है, तत्पश्चात् श्रावक और मुनि के व्रतादि होते हैं। आत्मा की प्रतीति हुए बिना कहाँ रहकर व्रतादि करेगा?

जिसप्रकार गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते को यह भ्रम रहता है कि गाड़ी मेरे कारण चल रही है, जबकि गाड़ी के परिणाम में गाड़ी का प्रत्येक परमाणु स्वतंत्र वर्त रहा है और कुत्ते के भ्रमरूप परिणामों में कुत्ता वर्त रहा है। गाड़ी और कुत्ता एक-दूसरे के परिणाम में नहीं वर्तते। उसीप्रकार परवस्तु के परिणाम स्वयं अपने-अपने से होते हैं, परन्तु अज्ञानी जीव व्यर्थ ही ऐसा मानता है कि पर के परिणाम मुझसे होते हैं। प्रत्येक द्रव्य के परिणाम सत् हैं, उसमें कोई दूसरा क्या करेगा? ऐसा स्वतंत्र वस्तु का स्वभाव है, वही सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान में देखा है। जैसा भगवान ने देखा है, वैसा वस्तु के स्वभाव को होना नहीं पड़ता और जैसा वस्तु का

स्वभाव है, वैसा ही भगवान को जानना पड़ेगा ह्न ऐसा भी नहीं है अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के आधीन नहीं और ज्ञेय ज्ञान के आधीन नहीं है। ज्ञेय वस्तु का स्वभाव स्वतंत्र सत् है और ज्ञान भी स्वतंत्र सत् है। प्रथम ऐसे सत्स्वभाव को समझो! जो ऐसे स्वभाव को समझ ले, उसी ने वस्तु को वस्तुरूप से जाना है ह्न ऐसा कहा जाता है।

कर्म के परिणाम में पुद्गल वर्तते हैं और आत्मा के परिणाम में आत्मा वर्तता है, कोई एक-दूसरे के परिणाम नहीं वर्तते, कर्म आत्मा का परिभ्रमण नहीं कराते। अपने स्वतंत्र परिणाम को न जानकर, कर्म मुझे परिभ्रमण कराते हैं ह्न इस विपरीत मान्यता से ही जीव भटक रहा है, कर्मों ने उसे नहीं भटकाया। प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होने का प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है ह्न यह समझे तो परिणामी द्रव्य पर दृष्टि जाती है और द्रव्यदृष्टि में सम्यक्त्व और वीतरागता का उत्पाद होता है, जिसे यथार्थ धर्म संज्ञा प्राप्त है।

यदि द्रव्य के एक समय का सत् दूसरे से हो तो उस द्रव्य का वर्तमान सत्पना नहीं रहता और वर्तमान सत् का नाश होने से त्रिकाली सत् का भी नाश हो जाता है अर्थात् वर्तमान परिणाम को स्वतंत्र सत् माने बिना त्रिकाली द्रव्य का सत्पना सिद्ध नहीं होता, इसलिये द्रव्य का वर्तमान दूसरे से या निमित्तों से होता है ह्न इस मान्यता में मिथ्यात्व होता है; क्योंकि उसमें सत् की स्वीकृति नहीं आती। सत् का तो नाश नहीं होता, किन्तु जिसने सत् को विपरीत माना है, उसकी मान्यता में सत् का अभाव होता है, त्रिकाली सत् स्वतंत्र किसी के बनाये बिना है। ऐसे स्वतंत्र सत् को पराधीन मानना ही मिथ्यात्व और अधर्म है। लोग काला बाजार आदि में तो अधर्म मानते हैं, किन्तु उन्हें विपरीत मान्यता के महापाप की खबर नहीं है। मिथ्यात्व तो धर्म के क्षेत्र का महान काला बाजार है, उस काले बाजार से चौरासी के अवतार की जेल होती है। सत् को जैसे का तैसा माने तो मिथ्यात्वरूपी काले बाजार का महान पाप दूर हो जाता है और सच्चा धर्म प्रगट होता है। इसलिये सर्वज्ञदेव कथित वस्तुस्वभाव को बराबर समझना चाहिए।

आत्मा का क्षेत्र असंख्यप्रदेशी एक है और उस क्षेत्र का छोटे से छोटा अंश प्रदेश है, उसीप्रकार सम्पूर्ण द्रव्य की प्रवाहधारा एक है और उस प्रवाहधारा का छोटे से छोटा अंश परिणाम है।

क्षेत्र अपेक्षा से द्रव्य का सूक्ष्म अंश प्रदेश है और काल अपेक्षा से द्रव्य का सूक्ष्म अंश परिणाम है।

परिणाम परिणामी में से आता है। जो ऐसे परिणामी द्रव्य की दृष्टि करता है, उसे परिणामी के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम उत्पन्न होता है, स्थिर रहता है और बढ़कर पूर्ण होता है।

प्रत्येक परिणाम अपने स्वकाल में उत्पन्न होता है, पूर्वपरिणाम से व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाह में ध्रौव्य है। केवलज्ञान परिणाम अपने स्व रूप की अपेक्षा में स्वकाल में उत्पादरूप है, पूर्व की अल्पज्ञ पर्याय की अपेक्षा व्ययरूप है और द्रव्य के अखण्ड प्रवाह में वह केवलज्ञान परिणाम ध्रुव है। इसप्रकार समस्त परिणाम अपने-अपने वर्तमान काल में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं और उन-उन वर्तमान परिणामों में वस्तु वर्त रही है अर्थात् वस्तु वर्तमान में ही पूर्ण है। ज्ञानी केवलज्ञान को नहीं ढूँढते, उस पर दृष्टि नहीं रखते; क्योंकि वह पर्याय इस समय तो सत् नहीं है, वह तो भविष्य में अपने स्वकाल में सत् है, इसलिये ज्ञानी तो वर्तमान में सत्स्वरूप ध्रुवद्रव्य को ही ढूँढते हैं, ध्रुव पर दृष्टि रखते हैं।

इस अपेक्षा से नियमसार से उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक इन चारों भावों को विभावभाव कहा है। जो पर्याय वर्तमान उत्पादरूप से वर्तती है, वह तो अंश है ही, केवलज्ञान पर्याय भी अंश है। वह केवलज्ञान पर्याय वर्तमान में प्रगट नहीं है, भविष्य में प्रगट होगी ह्न इसप्रकार परिणाम के काल पर ज्ञानी की दृष्टि नहीं रहती। इसमें वर्तमान परिणाम के समय ध्रुवरूप से वर्तते हुए द्रव्य की प्रतीति करने की बात है। द्रव्य की दृष्टि होने से वीतरागता होती है। शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है तथा वीतरागता स्वभाव की दृष्टि से होती है। अंतर में द्रव्यस्वभाव पर लक्ष्य रहने से वीतरागता स्वभाव की दृष्टि से होती है। अंतर में द्रव्यस्वभाव पर लक्ष्य

रहने से वीतरागता हो जाती है, इससे ध्रुव द्रव्यस्वभाव की दृष्टि ही सर्वस्व कार्यकारी हुई। पर्याय को ढूँढना नहीं रहा अर्थात् पर्याय की दृष्टि नहीं रही। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि रखकर पर्याय का ज्ञाता रहने से वीतरागता स्वतः होती जाती है।

यद्यपि वीतरागता ही एकमात्र प्रयोजनभूत है, किन्तु प्रश्न यह है कि वह वीतरागता कैसे हो? वीतरागपर्याय को शोधने से वीतरागता नहीं होती, किन्तु ध्रुवतत्त्व के आश्रय से पर्याय में वीतरागतारूप प्रयोजन फलित हो जाता है। इसलिये शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है ह्न ऐसा कहो या शास्त्र का तात्पर्य स्वभावदृष्टि है ह्न ऐसा कहो, दोनों एक ही है।

जैसा भगवान का आत्मा, वैसा ही अपना आत्मा, उसके स्वभाव में कोई भेद नहीं है। ऐसे स्वभाव का लक्ष्य करना ही शास्त्रों का सार है।

यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात चल रही है, उसमें से वीतरागी तात्पर्य किसप्रकार निकलता है, यह बतलाया है। परिणामों में ध्रौव्यता तो अखण्डप्रवाह अपेक्षा से है। अब, परिणामों का प्रवाह एकसाथ तो वर्तता नहीं है, इसलिये परिणामों की ध्रौव्यता निश्चित करते हुए ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि जाती है। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित नहीं हो सकते। परिणाम को ध्रौव्य कब कहा? परिणामों के संपूर्ण प्रवाह की अपेक्षा से उसे ध्रौव्य कहा है, सम्पूर्ण प्रवाह एक समय में प्रगट नहीं हो जाता; इसलिये परिणाम की ध्रौव्यता निश्चित करनेवाले की दृष्टि एक-एक परिणाम पर से हटकर ध्रुव द्रव्य पर जाती है। परिणाम की दृष्टि से (पर्यायदृष्टि से) परिणाम की ध्रौव्यता निश्चित नहीं होती। परिणामों का अखण्ड प्रवाह कहीं एक ही परिणाम में तो नहीं है, इसलिये अखण्ड त्रिकाली द्रव्य की ध्रुवस्वभाव की दृष्टि हुए बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी ख्याल में नहीं आ सकते।

वस्तु एक समय में पूर्ण है, उसके परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है ह्न ऐसा निश्चित करने से द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। वर्तमान परिणाम से

उत्पाद है, पूर्व परिणाम से व्यय है और अखण्डप्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्य है। इसलिये अखण्डप्रवाह की दृष्टि में ही ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि गई और तभी परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित हुए।

प्रश्न :ह्न इसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा?

उत्तर :ह्न ऐसा निश्चित किया, वहाँ पुरुषार्थ द्रव्य-सन्मुख ही कार्य करने लगा और वीतरागता भी होने लगी। परिणाम अपने स्वकाल में होते हैं, वे तो होते ही रहते हैं, किन्तु ऐसा वस्तुस्वरूप निश्चित करनेवाले की दृष्टि भी ध्रुव पर ही पड़ती है। द्रव्य-दृष्टि हुए बिना यह बात जम ही नहीं सकती।

इस ज्ञेय अधिकार में मात्र परप्रकाशक की बात नहीं है, परन्तु स्व सन्मुख स्वप्रकाशक सहित पर प्रकाशक की बात है। जहाँ अपने ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता में स्व-प्रकाशक हुआ, वहाँ सम्पूर्ण जगत के समस्त पदार्थ भी ऐसे ही हैं ह्न ऐसा परप्रकाशपना ज्ञान में विकसित हो ही जाता है। द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है, परन्तु उनका निर्णय कब होता है? ज्ञायक चैतन्यद्रव्य की रुचि तथा उस ओर उन्मुखता होने से सब निश्चित हो जाता है। जिसप्रकार स्व के ज्ञानसहित ही पर का सच्चा ज्ञान होता है, उसीप्रकार ध्रुव की दृष्टि से ही उत्पाद-व्यय का सच्चा ज्ञान होता है।

वस्तुस्वरूप ऐसा है कि कहीं पर के ऊपर तो देखना ही नहीं है और मात्र अपनी पर्यायसन्मुख भी देखना नहीं है; क्योंकि विकल्प को दूर करके निर्विकल्पता हो जाती है। इसलिये पर्याय के उत्पाद-व्यय के सन्मुख भी देखना नहीं है। जब देखो, तब द्रव्य वर्तमान में परिपूर्ण है, ऐसे द्रव्य की सन्मुखता होने से प्रवाहक्रम ऐसे का ऐसा रह जाता है और द्रव्यदृष्टि हो जाती है। उस द्रव्यदृष्टि में क्रमशः वीतरागी परिणामों का ही प्रवाह निकलता रहेगा; यह इस ९९वीं गाथा का सार है।

अहो! वस्तु अपार है, उसमें केवलज्ञान का खजाना भरा है। इसमें से जितना रहस्य निकालो, उतना निकल सकता है। भीतर दृष्टि करे तो पार

पा सकता है। भले ऐसा कहो कि सामान्य में से विशेष होता है अथवा वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है अथवा द्रव्य में से क्रमबद्धपर्याय की प्रवाहधारा बहती है, सब कथनों के निष्कर्ष में ध्रुवस्वभाव पर ही दृष्टि जाती है तथा ध्रुवस्वभाव की रुचि में ही सम्यक्त्व और वीतरागता होती है। यह तो अन्तर्दृष्टि की बात है, शास्त्रज्ञान पण्डिताई की चीज नहीं है।

यह वस्तु के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म बात है। कुम्हार घड़ा नहीं बनाता या कर्म जीव को विकार नहीं कराते ह्न यह बात तो ठीक, परन्तु यह तो उससे भी सूक्ष्म बात है। मिट्टी स्वयं पिण्डदशा को नाशरूप होकर घट पर्यायरूप उत्पन्न होती है और मिट्टीपने के प्रवाह की अपेक्षा वह ध्रौव्य है, उसीप्रकार समस्त पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाले हैं ह्न ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव समझ में आने पर पदार्थ हमारे लिए निरर्थक हो जाता है; क्योंकि पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को आत्मा स्वयं नहीं करता और अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर से नहीं होते, इसलिये अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के लिए कहीं पर-सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना ही रहता है। अब स्वयं अपने परिणामों को देखते हुए ज्ञान अन्तर में परिणामी स्वभाव की ओर उन्मुख होता है और उस परिणामी के आधार से वीतरागी परिणाम का प्रवाह निकलता रहता है। इसप्रकार ध्रुव के आश्रय से वीतरागी परिणाम का प्रवाह निकलता रहता है।

आत्मा दूसरे का कुछ नहीं कर सकता ह्न ऐसा कहते ही अन्य किसी के सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना होता है। अपने में अपने परिणाम अपने से होते हैं ह्न ऐसा निश्चित करने पर अंतर में जहाँ से परिणाम की धारा बहती है, उस ध्रुव द्रव्य के सन्मुख देखना मात्र रह जाता है और ध्रुव-सन्मुख देखते ही (ध्रुवस्वभाव की दृष्टि होते ही) सम्यक् पर्याय का उत्पाद होता है। यदि ध्रुवसन्मुख न देखें तो पर्यायदृष्टि में मिथ्यापर्याय का उत्पाद होता है। इसलिये वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव को समझने से ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से सम्यक् वीतरागी पर्यायों का उत्पाद हो ह्न यही सर्व कथन का तात्पर्य है। ●

प्रवचनसार गाथा १००

अब उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का परस्पर [1]अविनाभाव दृढ़ करते हैं ह्न

ण भवो भंगविहाणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण॥१००॥

(हरिगीत)

भंगबिन उत्पाद ना उत्पाद बिन ना भंग हो।
उत्पादव्यय हो नहीं सकते एक ध्रौव्यपदार्थ बिन॥१००॥

अन्वयार्थ :ह्न [भवः] उत्पाद [भङ्ग विहीनः] [2]भंग रहित [न] नहीं होता, [वा] और [भङ्गः] भंग [संभवविहीनः] बिना उत्पाद के [नास्ति] नहीं होता; [उत्पादः] उत्पाद [अपि च] तथा [भङ्गः] भंग [ध्रौव्येण अर्थेन विना] ध्रौव्य पदार्थ के बिना [न] नहीं होते।

टीका :ह्न वास्तव में [3]सर्ग [4]संहार के बिना नहीं होता और संहार सर्ग के बिना नहीं होता; [5]सृष्टि और संहार [6]स्थिति (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते, स्थिति सर्ग और संहार के बिना नहीं होती।

जो सर्ग है, वही संहार है; जो संहार है, वही सर्ग है; जो सर्ग और संहार है, वही स्थिति है; जो स्थिति है वही सर्ग और संहार है। वह इसप्रकार :ह्न जो कुम्भ का सर्ग है, वही [7]मृत्तिकापिण्ड का संहार है; क्योंकि भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से अवभासन है। अर्थात् भाव अन्य भाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है ह्न दिखाई देता है।) और जो

---

१. अविनाभाव = एक के बिना दूसरे का नहीं होना वह; एक-दूसरे बिना हो ही नहीं सके ह्न ऐसा भाव।
२. भंग = व्यय; नाश
३. सर्ग = उत्पाद, उत्पत्ति।
४. संहार = व्यय, नाश।
५. सृष्टि = उत्पत्ति।
६. स्थिति = स्थित रहना; ध्रुव रहना; ध्रौव्य।
७. मृत्तिकापिण्ड = मिट्टी का पिण्ड।

मृत्तिकापिण्ड का संहार है, वही कुम्भ का सर्ग है; क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से अवभासन है (अर्थात् नाश अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है।)

और जो कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, वही मृत्तिका की स्थिति है; क्योंकि [1]व्यतिरेक अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते और जो मृत्तिका की स्थिति है, वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है; क्योंकि व्यतिरेकों के द्वारा ही [2]अन्वय प्रकाशित होता है। और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया, तदनुसार) न माना जाये तो ऐसा सिद्ध होगा कि 'सर्ग अन्य है, संहार अन्य है, स्थिति अन्य है।' (अर्थात् तीनों पृथक् हैं ह्न ऐसा मानने का प्रसंग आ जायेगा।) ऐसा होने पर (क्या दोष आता है, सो समझाते हैं) :- केवल सर्ग-शोधक कुम्भ की (व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) [3]उत्पादन कारण का अभाव होने से उत्पत्ति ही नहीं होगी; अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। और वहाँ (१) यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति ही नहीं होगी। (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी, उसीप्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा ह्न यह दोष आयेगा); अथवा (२) यदि असत् का उत्पाद हो तो [4]व्योम-पुष्प इत्यादि का भी उत्पाद होगा (अर्थात् शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे ह्न यह दोष आयेगा।)

और केवल व्ययारम्भक (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने को उद्यत मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से संहार ही नहीं होगा; अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा। वहाँ, (१) यदि

१. व्यतिरेक = भेद; एक का दूसरे रूप न होना वह; 'यह वह नहीं है' ह्न ऐसे ज्ञान का निमित्तभूत भिन्नरूपत्व।
२. अन्वय = एकरूपता; सादृश्यता; 'यह वही है' ह्न ऐसे ज्ञान का कारणभूत एकरूपत्व।
३. उत्पादनकारण = उत्पत्ति का कारण।
४. व्योम पुष्प = आकाश के फूल।

मृत्तिकापिण्ड का व्यय न होगा तो समस्त ही भावों का संहार ही न होगा, (अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा, उसीप्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भाव का संहार ही नहीं होगा ह्न यह दोष आयेगा); अथवा (२) यदि सत् का उच्छेद होगा तो चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा, (अर्थात् समस्त द्रव्यों का सम्पूर्ण विनाश हो जायेगा; यह दोष आयेगा।)

और [1]केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का ह्न अन्वय का उसके अभाव होने से, स्थिति ही नहीं होगी; अथवा तो क्षणिक को ही नित्यत्व आ जायेगा। वहाँ (१) यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी, (अर्थात् यदि मिट्टी ध्रुव न रहे तो मिट्टी की ही भाँति विश्व का कोई भी द्रव्य ध्रुव ही नहीं रहेगा ह्न टिकेगा ही नहीं, यह दोष आयेगा।) अथवा (२) यदि क्षणिक का नित्यत्व हो तो चित्त के क्षणिक-भावों का भी नित्यत्व होगा; (अर्थात् मन का प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाये ह्न यह दोष आयेगा।

इसलिये द्रव्य को [2]उत्तर उत्तर व्यतिरेकों के सर्ग के साथ, पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ अविनाभाववाला, जिसको निर्विघ्न (अबाधित) त्रिलक्षणतारूप [3]लांछन प्रकाशमान है ह्न ऐसा अवश्य सम्मत करना।

गाथा १०० पर प्रवचन

वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न ये तीनों एक साथ ही होते हैं, यदि ऐसा न माना जाये और उत्पाद-व्यय-ध्रुव इन तीनों को एक-दूसरे के बिना भिन्न ही माना जाये तो उसमें जो दोष आते हैं, वे इसप्रकार हैं ह्न

१. केवल स्थिति = (उत्पाद और व्यय रहित) अकेला ध्रुवपना, केवल स्थितिपना; अकेला अवस्थान। (अन्वय-व्यतिरेकों सहित ही होता है, इसलिये ध्रौव्य उत्पाद-व्यय सहित ही होगा, अकेला नहीं हो सकता। जैसे उत्पाद (या व्यय) द्रव्य का अंश है ह्न समग्र द्रव्य नहीं, इसप्रकार ध्रौव्य भी द्रव्य का अंश है ह्न समग्र द्रव्य नहीं।
२. उत्तर-उत्तर = बाद बाद के।
३. लांछन = चिह्न।

मात्र उत्पाद को ही मानने से होनेवाले दोष

यदि व्यय और ध्रुव के बिना मात्र उत्पाद ही माना जाये तो एक तो उत्पादन कारण के बिना उत्पाद ही सिद्ध नहीं होगा अथवा असत् का ही उत्पाद होगा। मिथ्यात्व का व्यय सम्यक्त्व के उत्पाद का कारण है और आत्मा की ध्रुवता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना मात्र सम्यक्त्व के उत्पाद को ही ढूँढें तो वह नहीं मिलेगा। ध्रुव के आधार के बिना उत्पाद किसमें होगा? और मिथ्यात्व पर्याय का अभाव हुए बिना सम्यक्त्व पर्याय का उत्पाद कहाँ से होगा? नवीन पर्याय उत्पन्न होने का कारण पुरानी पर्याय का व्यय है और नवीन पर्याय उत्पन्न होने का आधार ध्रुव है। ध्रुव के आधार के बिना ही यदि उत्पाद हो, तब तो असत् का उत्पाद हो। यदि मिथ्यात्व का व्यय न हो तो सम्यक्त्व का उत्पाद ही न हो और आत्मा की ध्रुवता बिना ही यदि कोई सम्यक्त्व का उत्पाद माने तो उसे असत् की उत्पत्ति होने का प्रसंग आयेगा।

जिसप्रकार मिट्टी के पिण्ड के अभाव के बिना और मिट्टी की ध्रुवता के बिना घड़े का उत्पाद नहीं हो सकता, उसीप्रकार आत्मा में वस्तु की ध्रुवता और अधर्म के नाश के बिना धर्म का उत्पाद नहीं हो सकता। ध्रुव त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। यदि ध्रुव के आधार बिना ही उत्पत्ति हो तो असत् की उत्पत्ति होगी।

देखो, सुख चाहिए है न? तो वह सुख कहाँ ढूँढना? सुख का आधार ध्रुव आत्मा है और सुख का कारण दुःख का नाश है ह्न उसमें सुख ढूँढें तो सुख मिलेगा। घर या शरीर-स्त्री-सम्पत्ति के आधार से सुख नहीं मिलेगा, किन्तु आत्मा की ध्रुवता सुख के उत्पाद का आधार है और आकुलता का व्यय सुख की उत्पत्ति का कारण है। इन दोनों को न माने तो सुख की उत्पत्ति नहीं हो सकती। पर के आश्रय के व्यय से और अपनी ध्रुवता के आश्रय से सुख का उत्पाद होता है। इसलिए सुख के लिए ध्रुव की ही रुचि करना आवश्यक है।

यहाँ जो कई उदाहरण दिये गये, तदनुसार समस्त द्रव्यों में प्रतिसमय जो उत्पाद होता है, वह ध्रुव और व्यय के बिना नहीं होता ह्न ऐसा

समझना। भाई! यदि तुझे शांति प्रगट करना हो तो तू अपने ध्रुवतत्त्व में ढूँढ। ध्रुवतत्त्व के आधार से ही शान्ति की उत्पत्ति होगी। अशान्ति का अभाव शान्ति की उत्पत्ति का कारण कहा है, किन्तु उस अशान्ति का अभाव और शान्ति की उत्पत्ति ध्रुवतत्त्व की दृष्टि करने से होती है। इसप्रकार शान्ति के लिए भी ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करना आवश्यक है।

आत्मा और जड़ प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रुव हो रहे हैं। यदि वे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वतंत्र न हों और दूसरे के कारण हों तो वह पदार्थ ही स्वयंसिद्ध न रहे। प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने ही आधीन हैं, एक समय में ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव ह्न तीनों का होना वस्तु का स्वभाव है। ९९वीं गाथा में द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है ह्न यह सिद्ध किया गया था और इस १००वीं गाथा में अधिक स्पष्टता करके द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एक साथ बतलाते हैं। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एकसाथ ही न मानें तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होती और दोष आता है। यहाँ उसका वर्णन हो रहा है।

कोई मात्र उत्पाद को ही माने और उसके साथ ही व्यय तथा ध्रुव को न माने तो क्या होगा? उससे कहते हैं कि पिण्ड का अभाव घड़े का उत्पादन कारण है, उस उत्पादन कारण बिना घड़े की उत्पत्ति ही नहीं होगी। अथवा तो ध्रुव मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगेगा। आत्मा में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति चेतना की नित्यता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं हो सकती। परपदार्थ की रुचिरूप पूर्व की मिथ्याभ्रान्ति का नाश हुए बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति को ढूँढे तो वह नहीं मिलेगी और चैतन्यस्वरूप ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होगा।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति के साथ ही आत्मा की ध्रुवता और मिथ्यात्व का व्यय होता है। इन दोनों को माने बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। मिट्टी में मिट्टीपने की ध्रुवता और पिण्ड अवस्था के व्यय बिना घड़े

की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती और यदि जगत में घड़ेरूप में भाव की उत्पत्ति न हो तो जगत में सम्यक्त्व, सिद्धदशा आदि किन्हीं भावों की उत्पत्ति ही न हो। और यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा हो तो आकाश-कुसुम भी हो अर्थात् वस्तु के अस्तित्व बिना अधर से ही नवीन-नवीन भाव उत्पन्न होने लगे, आत्मा के बिना ही सम्यक्त्व उत्पन्न हो ह्न इसप्रकार महान दोष आता है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना कभी सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। पर से लाभ होगा ह्न ऐसी जो मिथ्या रुचि है, उस परसन्मुख रुचि के अभाव के बिना और स्वद्रव्य की ध्रुवता के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इसीप्रकार सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी ऐसा समझना कि ध्रुव ज्ञानानन्द आत्मा के अवलम्बन से और अज्ञान के व्यय से सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ध्रुव चैतन्य बिना और अज्ञान के व्यय के बिना सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति ढूँढे तो वह नहीं मिलेगी। तथा इसीप्रकार चारित्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में समझना कि बाह्य क्रिया में या शरीर की नग्न अवस्था में आत्मा का चारित्र नहीं है। चारित्र अर्थात् आत्मा की वीतराग पर्याय राग के अभाव से और ध्रुव चिदानन्द आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न होती है, महाव्रतादि के राग से उत्पन्न नहीं होती। ध्रुवता का अवलम्बन और राग का अभाव ह्न इन दोनों के बिना वीतराग भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इसीप्रकार केवलज्ञान की उत्पत्ति ध्रुव चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन बिना और पूर्व की अपूर्ण ज्ञानदशा के व्यय बिना नहीं होती। आत्मा की ध्रुवता रहकर अल्पज्ञता का व्यय होकर पूर्णज्ञान की उत्पत्ति होती है।

अन्तिम सिद्धदशा भी आत्मा की ध्रुवता और संसारदशा के व्यय सहित ही होती है।

इसमें ध्रुवता सद्भावसाधन है और व्यय अभावसाधन है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों के अनुसार जगत के जड़ या चेतन समस्त भावों के उत्पाद में समझना। किसी भी भाव का उत्पाद वस्तु की ध्रुवता के बिना और पूर्व भावों के व्यय बिना नहीं होता।

यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगे, तब तो आकाश-कुसुम की भाँति वस्तु के बिना ही जगत में अवस्थाएँ होने लगेंगी। जिसप्रकार आकाश के फूल नहीं हैं, उसीप्रकार ध्रुवस्वभाव के बिना पर्याय का उत्पाद नहीं हो सकता। जगत में यदि खरगोश के सींग हों, कछुए के बाल हों या आकाश के फूल हों तो ध्रुव के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व हो। ध्रुवतत्त्व के बिना मात्र शून्य में से ही किसी भाव की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उत्पाद के साथ ध्रुव और व्यय को भी मानना चाहिए। ऐसा ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तुस्वरूप है, सर्वज्ञदेव के ज्ञान में इसीप्रकार ज्ञात हुआ है, उनकी वाणी में इसीप्रकार आया है, सन्तों ने भी इसीप्रकार जानकर कहा है और शास्त्रों में भी यह कथन है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जो नहीं जानता, वह वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र को नहीं जानता।

देखो भाई! सत् सरल है, सहज है, सुगम है; किन्तु अज्ञानता से विषम मान लिया है, इसलिये कठिन लगता है। सत्समागम से शान्त होकर समझे तो सत् सरल है, सहज है। यह वस्तुस्वभाव समझे बिना किसीप्रकार कल्याण नहीं होता।

वस्तु एकसमय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वरूप है। विकार की रुचि के अभाव बिना और नित्य आत्मा के अवलम्बन के बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। वस्तु में यदि ध्रुव और व्यय न हो तो उत्पाद नहीं होता। इसप्रकार एक मात्र उत्पाद मानने में उत्पाद के भी अभाव का प्रसंग आता है, यह बतलाया। अब व्यय की बात करते हैं।

मात्र व्यय को ही मानने से होनेवाले दोष

ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय मानने में भी यही दोष आता है। ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय भी नहीं हो सकता।

कोई कहे कि मिट्टी में पिण्डपर्याय का नाश हुआ, किन्तु घटपर्याय की उत्पत्ति नहीं हुई और मिट्टी स्थायी नहीं रही ह्न तो ऐसा नहीं हो सकता। इसीप्रकार कोई कहे कि हमें परपदार्थों की रुचि का नाश तो हो

गया है, किन्तु स्वपदार्थ की रुचि उत्पन्न नहीं हुई और आत्मा का ध्रुवपना भासित नहीं हुआ तो उसकी बात भी मिथ्या है। जिस क्षण पर में सुखबुद्धि का नाश हुआ, उसी क्षण आत्मा की रुचि न हो और उसकी ध्रुवता का आधार भासित न हो ह्न ऐसा नहीं हो सकता। सम्यक्त्व का उत्पाद और आत्मा के ध्रुवता के बिना मिथ्यात्व का व्यय नहीं होता।

पिण्डदशा के नाश का कारण घड़े की उत्पत्ति है और घड़े में मिट्टीपना स्थायी रहकर पिण्ड का व्यय होता है, पिण्ड का व्यय होने पर भी मिट्टी ध्रुव रहती है। यदि वस्तु में नवीन भावों की उत्पत्ति और वस्तु की ध्रुवता न मानें तो जगत में कारण के अभाव में किन्हीं भावों का नाश ही नहीं होगा अथवा तो सत् का ही सर्वथा नाश हो जायेगा। स्व की रुचि के उत्पाद बिना और ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना ही यदि कोई मिथ्यारुचि का व्यय करना चाहे तो प्रथम तो व्यय हो ही नहीं सकता। यदि होना माने भी तो मिथ्यारुचि के नाश के साथ आत्मा का ही नाश हो जायेगा। इसलिए ध्रुव और उत्पाद ह्न इन दोनों भावों के बिना मात्र व्यय नहीं होता। ऐसा सभी भावों में समझना चाहिए।

सर्वज्ञदेव का देखा हुआ और कहा हुआ वस्तु का स्वरूप त्रिकाल सनातन यथावत् वर्त रहा है, उसमें कोई अन्यथा कल्पना करे तो उसकी कल्पना से वस्तुस्वरूप में तो कुछ फेरफार नहीं हो सकता, उसकी मान्यता में ही मिथ्यात्व होगा।

कोई कहे कि अपने को तो दूसरा कुछ समझने का काम नहीं है। बस, एक मात्र राग-द्वेष को दूर करना है। उससे पूछना चाहिए कि ऐसा कहनेवाला किस भाव में स्थिर रहकर राग-द्वेष को दूर करेगा? वीतराग भाव की उत्पत्ति और आत्मा की ध्रुवता को माने बिना अपने अस्तित्व को ही नहीं माना जा सकता और राग-द्वेष भी दूर नहीं हो सकते। यदि ध्रुवपना न माने तो चेतन की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश नहीं होगा। यदि ध्रुव बिना ही राग-द्वेष का नाश होना माने तो राग-द्वेष का नाश नहीं होगा। यदि ध्रुव बिना ही राग-द्वेष का नाश होना माने

तो राग-द्वेष का नाश होने से आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। और यदि वीतरागता का उत्पाद न माने तो राग-द्वेष का नाश ही नहीं होगा; क्योंकि दूसरे भाव की उत्पत्ति के बिना पहले भाव का नाश ही नहीं होता। राग का व्यय वीतरागता की उत्पत्ति है और उसमें चैतन्यपने की ध्रुवता है। ध्रुव के लक्ष्य से, वीतरागता की उत्पत्ति होने से, राग का व्यय होता है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों एक साथ हैं। वीतरागता के उत्पाद बिना राग का व्यय नहीं हो सकता और चेतन की ध्रुवता के बिना ही राग-द्वेष का नाश हो तो उस राग के साथ सत् आत्मा का भी नाश हो जायेगा। ध्रुव के बिना व्यय मानने से जगत के समस्त भावों के नाश का प्रसंग प्राप्त होगा। इसीलिए वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही हैं ह्न ऐसा वस्तुस्वरूप समझना चाहिए।

घड़े की उत्पत्ति में पिण्ड के व्ययरूप कारण न मानने से मिट्टी में से पिण्ड का व्यय नहीं होगा और यदि पिण्ड का व्यय नहीं होगा तो उसकी भाँति ही जगत में अज्ञान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि किसी भी भाव का व्यय नहीं होगा। अर्थात् किसी को भी संसार का अभाव ही नहीं होगा और मुक्ति की प्राप्ति भी नहीं होगी। और ध्रुवता के बिना राग-द्वेष का नाश होना माने तो उसकी श्रद्धा में आत्मा का नाश हो जाता है। यद्यपि वस्तुतः आत्मा का नाश नहीं होता, किन्तु जो आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना मानता है, उसकी मान्यता में आत्मा का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता अर्थात् आत्मा का अभाव हो जाता है।

कर्म पुद्‌गल की पर्याय है। उस पर्याय का नाश उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद बिना नहीं होता। कर्म का नाश आत्मा नहीं करता है। कर्म आत्मा को बाधक होते हैं, इसलिए उनका नाश करो ह्न ऐसा माननेवाले की समझ में भूल है। जो ध्रुवस्वभाव के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना माने, वह भी भूल में है। जड़कर्मों का नाश पुद्‌गल की ध्रुवता का और उसकी नवीन पर्याय के उत्पाद का अवलम्बन लेता है। आत्मा

के वीतराग भाव से पुद्गल में कर्मदशा का व्यय हुआ ह्न वास्तव में ऐसा नहीं है। हाँ, आत्मा में ध्रुव के आश्रय से वीतरागता की उत्पत्ति होने से राग का व्यय होता है। वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव का उस वस्तु के साथ ही संबंध है, किन्तु एक वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव का दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह तो सनातन सत्य वस्तुस्वरूप का महान नियम है। ईश्वर ने जीव को बनाया है ह्न इसप्रकार ईश्वर को कर्त्ता माने अथवा जैसा निमित्त आये, वैसी पर्याय होती है ह्न इसप्रकार दूसरी वस्तु को पर्याय की उत्पत्ति का कारण माने तो वे दोनों मान्यताएँ मिथ्या ही हैं, उनमें वस्तु की स्वतंत्रता नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु में प्रतिसमय स्वतंत्र अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव में कुछ नहीं करते। कोई ऐसा कहे कि सम्पूर्ण वस्तु को दूसरे ने बनाया है और दूसरा ऐसा कहे कि वस्तु की अवस्था को दूसरे ने बनाया है तो उन दोनों की मिथ्या मान्यता में परमार्थतः कोई अन्तर नहीं है।

जिसने एकसमय में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव को नहीं जाना, उसकी मान्यता में अवश्य कुछ न कुछ दोष आता है। यदि वस्तु में एक भाव का व्यय होने से उसीसमय नवीन भाव की उत्पत्ति न हो और वस्तु की ध्रुवता न रहे तो मात्र व्यय होने से सत् का ही नाश हो जायेगा, इसलिए जगत के समस्त पदार्थों का नाश हो जायेगा। चैतन्य की ध्रुवता रहकर और सम्यक्त्व भाव की उत्पत्ति होकर ही मिथ्यात्वभाव का व्यय होता है।

प्रत्येक समय का सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को एकसाथ न मानें तो सत् की सिद्धि ही नहीं होती। पर के कारण उत्पाद-व्यय-ध्रुव माने वह तो मिथ्या है ही, साथ ही अपने में भी उत्पाद-व्यय या ध्रुव को एक-दूसरे के बिना माने तो वह भी वस्तु को नहीं जानता है।

देव-गुरु के कारण अपने में सम्यक्त्व का उत्पाद होना माने तो उसे

सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता और अपने में मिथ्यात्व का व्यय तथा आत्मा की ध्रुवता ह्न इन दोनों के बिना भी सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। इसीप्रकार मिथ्यात्व का व्यय भी सम्यक्त्व के उत्पाद और चैतन्य की ध्रुवता के बिना सिद्ध नहीं होता।

पैसे खर्च करने से आत्मा को धर्म हो ह्न यह बात भी मिथ्या है; क्योंकि पैसे की एक पर्याय का व्यय उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद का कारण है, किन्तु वह आत्मा की धर्म पर्याय के उत्पाद का कारण नहीं है। पूर्व पर्याय का विनाश और उत्तर पर्याय की उत्पत्ति को आपस में एक-दूसरे का कारण कहा है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन से होनेवाला मिथ्यात्व का नाश सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है और सम्यक्त्व का उत्पाद हुए बिना तथा आत्मा की ध्रुवता रहे बिना ही यदि मिथ्यात्व का नाश हो जाये तो मिथ्यात्व का नाश होने से आत्मा का अस्तित्व ही कुछ नहीं रहेगा ह्न इसलिये मात्र व्यय की मान्यता में आत्मा का ही नाश होने का प्रसंग प्राप्त होता है और इसीप्रकार जगत के समस्त सत् पदार्थों का भी उसकी मान्यता में नाश हो जाता है अर्थात् उत्पाद और ध्रुवता के बिना मात्र व्यय को ही माननेवाला नास्तिक जैसा हो जाता है।

अहो! ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता से होनेवाली वीतरागता की उत्पत्ति के बिना यदि राग-द्वेष के नाश का प्रारम्भ करने जाये तो उसके कभी राग-द्वेष का नाश नहीं होगा। आत्मा की ध्रुवता को लक्ष्य में लिये बिना राग को घटाने से आत्मा का अभाव होने का ही प्रसंग आता है। अरे भाई राग को कम करने से लक्ष्य से राग कम नहीं होता, किन्तु जब ध्रुवता का अवलम्बन ले और वीतरागभाव की उत्पत्ति हो तब राग का व्यय होता है।

जगत के चेतन और जड़ सभी पदार्थों में प्रतिसमय उनके स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव हैं। यदि कोई मात्र उत्पाद को ही माने तो वह पदार्थों की नवीन उत्पत्ति ही मानता है और यदि कोई व्यय को ही माने तो वह भी पदार्थों का नाश ही मानता है ह्न ऐसा माननेवाला जीव सर्वज्ञ को, गुरु को, शास्त्र को या ज्ञेयों के स्वभाव को नहीं मानता और वह अपने

ज्ञानस्वभाव से आत्मा को भी नहीं मानता। देव-गुरु-शास्त्र भी ऐसी ही वस्तुस्थिति कहते हैं। ज्ञेय का स्वभाव भी ऐसा ही है और आत्मा का स्वभाव उन्हें जानने का है ह्न ऐसी जो वस्तुस्थिति है, वह समझने योग्य है। यह समझे, तभी ज्ञान में शान्ति और वीतरागता हो सकती है। यथार्थ वस्तुस्थिति को समझे बिना ज्ञान में कभी शांति या वीतरागता नहीं होती।

(१) उत्पाद-व्यय और ध्रुव के बिना नहीं होता।

(२) व्यय-उत्पाद और ध्रुव के बिना नहीं होता।

ये दो बातें सिद्ध कीं। उत्पाद और व्यय ह्न ये दोनों ध्रुव के बिना नहीं होते ह्न इस बात का भी उन दो बोलों में समावेश हो गया। अब, तीसरी बात सिद्ध करते हैं कि ह्न

(३) ध्रुव, उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता।

उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को मानने से जो दोष आता है, वह कहते हैं :ह्न

मात्र ध्रुव को मानने से होनेवाले दोष

यदि मात्र ध्रुव को ही माना जाये तो वह ध्रुवतत्त्व उत्पाद-व्यय का उल्लंघन कर गया। पिण्ड के नाश बिना और घड़े की उत्पत्ति बिना मिट्टी की ध्रुवता किसमें रहेगी? परिणाम के बिना परिणामी सिद्ध ही नहीं हो सकता। उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव को निश्चित कौन करेगा? ध्रुव स्वयं ध्रुव को निश्चित नहीं करता, किन्तु नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय के व्यय द्वारा ध्रुव निश्चित होता है।

आत्मा मात्र कूटस्थ ध्रुव है ह्न ऐसा कोई कहे, तो उसने भी पहले आत्मा को कूटस्थ नहीं माना था, किन्तु परिणामी माना था। उस मान्यता का नाश हुआ और आत्मा कूटस्थ है ह्न ऐसी मान्यता का उत्पाद हुआ। इसप्रकार कूटस्थ माननेवाले में ही उत्पाद-व्यय आ गये। इसप्रकार उत्पाद-व्यय के बिना कूटस्थ माननेवाला भी सिद्ध नहीं होगा।

वस्तु एकान्त नित्य नहीं है, किन्तु अनेकान्तस्वरूप है। वस्तु नित्य-

अनित्यरूप, एक-अनेकरूप ह्न ऐसे अनेकान्त स्वरूपवाली है। वस्तु में यदि नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय का व्यय न हो तो उसकी अनित्यता और अनेकता ही सिद्ध नहीं होगी अथवा क्षणिक उत्पाद-व्यय स्वयं ही ध्रुव हो जायेगा ह्न इसलिये प्रतिसमय का द्रव्य भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होगा और वस्तु को सर्वथा अनेकता ही हो जायेगी। ऐसा होने से वस्तु की अखण्ड अर्थात् एकता नित्यता सिद्ध नहीं होगी। इसलिये अनेकान्तमय वस्तु में नवीन भाव की उत्पत्ति सहित और पुराने भाव के नाश सहित ही ध्रुवता है ह्न ऐसा मानना चाहिए।

अगली पर्याय का उत्पाद, पीछे की पर्याय का व्यय और अखण्ड संबंध की अपेक्षा से ध्रुवता ह्न इन तीनों के साथ द्रव्य अविनाभावी है, ऐसा द्रव्य अबाधितरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप (त्रिलक्षणरूप) चिन्ह वाला है।

यहाँ उत्पाद में नवीन भाव की उत्पत्ति करना है, इसलिये उसमें सर्ग को शोधनेवाला ह्न ऐसी भाषा का उपयोग किया है। व्यय में वर्तमान भाव का नाश है, इसलिये उसमें संहार को आरम्भ करनेवाला ह्न ऐसी भाषा का उपयोग किया है। और ह्न ध्रुव में जो है, उसकी स्थिति की बात है; इसलिये स्थिति प्राप्त करने के लिए जाननेवाला ह्न ऐसी भाषा का उपयोग किया है ह्न इसप्रकार तीनों बोलों की शैली में अन्तर डाला है।

प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव हैं। यदि उन तीनों को एकसाथ न माना जाये तो उसमें दोष आता है। वह दोष बतलाकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभावीपना दृढ़ किया है।

यदि मात्र उत्पाद ही माना जाये तो पुरानी पर्याय के बिना नवीन पर्याय की उत्पत्ति नहीं होगी अथवा ध्रुव के आधार बिना असत् की उत्पत्ति नहीं होगी, इसलिये एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ हों, तभी उत्पाद होगा।

यदि मात्र व्यय ही माना जाये तो नवीन पर्याय के उत्पाद बिना पुरानी पर्याय का व्यय ही नहीं होगा। अथवा ध्रुवपना रहे बिना ही व्यय होगा तो

सत् का ही नाश हो जायेगा; इसलिये एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव ह्न तीनों साथ ही हों, तभी व्यय सिद्ध होगा।

उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को ही मानें तो उत्पाद-व्ययरूप व्यतिरेक के बिना ध्रुवपना ही नहीं रहेगा अथवा एक अंश ही सम्पूर्ण द्रव्य हो जायेगा। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक समय में साथ ही हों तभी ध्रुवपना रह सकेगा।

घड़ा आदि किसी भी एक पर्याय के उत्पाद बिना और पिण्ड आदि किसी एक पूर्वपर्याय के बिना मिट्टी में ध्रुवता ही नहीं रहेगी। और यदि मिट्टी की ध्रुवता न रहे तो मिट्टी की भाँति जगत के किन्हीं भी भावों की ध्रुवता नहीं रहेगी, सर्वनाश हो जायेगा।

अथवा जो क्षणिक है, वही ध्रुव हो जाये तो मन के विकल्प, राग-द्वेष-अज्ञान-कर्म ह्न ये सब ध्रुव हो जायेंगे। यदि उत्पाद-व्यय न हो तो अज्ञान का नाश करके सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, संसार का व्यय होकर सिद्धदशा की उत्पत्ति, क्रोधभाव दूर होकर क्षमाभाव की उत्पत्ति ह्न ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा।

इसलिए द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला एकसाथ ही मानना युक्तियुक्त है। सारांश यह है कि पूर्व-पूर्व परिणामों के व्यय के साथ, पीछे-पीछे के परिणामों के उत्पाद के साथ और अन्वय अपेक्षा से ध्रुव के साथ द्रव्य को अविनाभावीवाला मानना चाहिए। उत्पाद व्यय और ध्रुव ह्न ये तीनों एक साथ निर्विघ्नरूप से द्रव्य में हैं ह्न ऐसा संग करना, निःसन्देहरूप से निश्चित करना। मात्र उत्पाद, मात्र व्यय या मात्र ध्रुवता द्रव्य का लक्षण नही है; किन्तु उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न ये तीनों एकसाथ ही द्रव्य का लक्षण है ह्न ऐसा जानना।

इसप्रकार ज्ञेय अधिकार की इस १००वीं गाथा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभाव दृढ़ किया। आगे १०१वीं गाथा में उत्पादादि का द्रव्य से अर्थांतरपने का निषेध करेंगे। अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं, किन्तु सब एक द्रव्य ही हैं ह्न ऐसा सिद्ध करेंगे। ●

प्रवचनसार गाथा १०१

अब, उत्पादादि का द्रव्य से अर्थान्तरत्व को नष्ट करते हैं; (अर्थात् यह सिद्ध करते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं):ह्न

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वे हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं॥१०१॥

(हरिगीत)

पर्याय में उत्पादव्ययध्रुव द्रव्य में पर्यायें हैं।
बस इसलिए तो कहा है कि वे सभी इक द्रव्य हैं॥१०१॥

अन्वयार्थ :ह्न [उत्पादस्थितिभङ्गाः] उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय [पर्यायेषु] पर्यायों में [विद्यन्ते] वर्तते हैं; [पर्यायाः] पर्यायें [नियतं] नियम से [द्रव्ये हि सन्ति] द्रव्य में होती हैं, [तस्मात्] इसलिये [सर्वं] वह सब [द्रव्यं भवति] द्रव्य है।

टीका :ह्न उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन करते हैं और वे पर्यायें द्रव्य का आलंबन करती हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रय से हैं और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं; इसलिये यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यांतर नहीं।

प्रथम तो द्रव्य पर्यायों के द्वारा आलम्बित है (अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं), क्योंकि [1]समुदायी समुदायस्वरूप होता है; वृक्ष की भाँति। जैसे समुदायी वृक्ष स्कंध, मूल और शाखाओं का समुदायस्वरूप होने से स्कंध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित (दिखाई) होता है, इसीप्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है। (अर्थात् जैसे स्कंध, मूल शाखायें

१. समुदायी = समुदायवान समुदाय (समूह) का बना हुआ। (द्रव्य समुदायी है, क्योंकि पर्यायों के समुदायस्वरूप है।)

वृक्षाश्रित ही हैं ह्न वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं, उसीप्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं; द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं।

और पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं) क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं ([1]अंशी के नहीं); बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति। जैसे अंशीवृक्ष के बीज, अंकुर-वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश, व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं; उसीप्रकार अंशी-द्रव्य के, नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव, और अवस्थित रहनेवाला भाव; ह्न ये तीनों अंश व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों के द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं; किन्तु यदि (१) भंग, (२) उत्पाद और (३) ध्रौव्य को (अंशी का न मानकर) द्रव्य का ही माना जाये तो सारा [2]विप्लव को प्राप्त होगा।

यथा ह्न (१) पहले, यदि द्रव्य का ही भंग माना जाये तो [3]क्षणभंग से लक्षित समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से द्रव्यशून्यता आ जायेगी अथवा सत् का उच्छेद हो जायेगा। (२) यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो समय-समय पर होनेवाले उत्पाद के द्वारा चिह्नित ऐसे द्रव्यों को प्रत्येक को अनन्तता आ जायेगी। (अर्थात् समय-समय पर होनेवाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ह्न ऐसा प्रत्येक द्रव्य अनन्त द्रव्यत्व को प्राप्त हो जायेगा) अथवा असत् का उत्पाद हो जायेगा; (३) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाये तो क्रमशः होनेवाले भावों के अभाव के कारण द्रव्य का अभाव आयेगा अथवा क्षणिकपना होगा।

इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पर्यायें आलम्बित हों और पर्यायों द्वारा द्रव्य आलम्बित हो कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य है।

१. अंशी = अंशोंवाला; अंशों का बना हुआ। (द्रव्य अंशी है।)
२. विप्लव = अंधाधुंधी, उथल-पुथल; घोटाला; विरोध।
३. क्षण = विनाश जिनका लक्षण हो, ऐसे।

भावार्थ :ह्न बीज, अंकुर और वृक्षत्व ये वृक्ष के अंश हैं। बीज का नाश, अंकुर का उत्पाद और वृक्षत्व का ध्रौव्य ह्न तीनों एक ही साथ होते हैं। इसप्रकार नाश बीज के आश्रित है, उत्पाद अंकुर के आश्रित है और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित है; नाश, उत्पाद और ध्रौव्य बीज अंकुर और वृक्षत्व से भिन्न पदार्थरूप नहीं है। तथा बीज, अंकुर और वृक्षत्व भी वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिये यह सब एक वृक्ष ही हैं। इसीप्रकार नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और ध्रौव्य भाव ह्न सब द्रव्य के अंश हैं। नष्ट होते हुए भाव का नाश, उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद और स्थायी भाव का ध्रौव्य एक ही साथ है। इसप्रकार नाश नष्ट होते भाव के आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होते भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थायी भाव के आश्रित है। नाश, उत्पाद और ध्रौव्य उन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। और वे भाव भी द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिये ये सब, एक द्रव्य ही हैं।

गाथा १०१ पर प्रवचन

उत्पाद, स्थिति और भंग पर्यायों में वर्तते हैं, पर्यायें नियम से द्रव्य में होती हैं; इसलिये सब द्रव्य हैं।

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन लेते हैं और वे पर्यायें द्रव्य का अवलम्बन लेती हैं; इसलिये सब एक ही द्रव्य हैं, द्रव्यान्तर नहीं हैं।

अब उसका विस्तार से स्पष्टीकरण करते हैं :ह्न

प्रथम तो द्रव्य पर्यायों द्वारा आलम्बित होता है; क्योंकि समुदायी समुदायस्वरूप होता है।

द्रव्य का ही व्यय, द्रव्य का ही उत्पाद और द्रव्य की ही ध्रुवता होती हो ह्न ऐसा नहीं है, उस एक-एक में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आ जाता; किन्तु उत्पाद किसी पर्याय का है, व्यय भी किसी का पर्याय है और ध्रुवपना भी पर्याय का है अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न ये तीनों तीन पर्यायों के अवलम्बन से हैं और उन पर्यायों का समुदाय द्रव्य का अवलम्बन लेता

है। (यहाँ पर्याय का अर्थ द्रव्य का ही एक अंश समझना।) पर्याय अंश है और द्रव्य अंशी है। द्रव्य समुदायी है और वह पर्यायों के समुदाय से बना है।

जिसप्रकार समुदायी वृक्ष; स्कन्ध, मूल और शाखाओं के समुदायस्वरूप होने से स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित होता है; उसीप्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों के समुदायस्वरूप होने से पर्यायों द्वारा आलम्बित ही भासित होता है। जिसप्रकार तना, मूल और डालियाँ ह्न ये तीनों वृक्ष के अंश हैं और ये तीनों मिलकर पूरा वृक्ष है; उसीप्रकार पर्यायें वस्तु के अंश हैं, वे पर्यायें वस्तु के आश्रय से ही हैं। वस्तु के अंश वस्तु से पृथक् नहीं हैं।

पहले १00वीं गाथा में तो द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ परस्पर अविनाभावी हैं ह्न ऐसा सिद्ध किया। अब यहाँ यह सिद्ध करते हैं कि वे उत्पाद, व्यय और ध्रुव किसके हैं ह्न द्रव्य के या पर्याय के ? उत्पाद, व्यय और ध्रुव पर्यायों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं। और वे उत्पाद, व्यय, ध्रुववाली तीनों पर्यायें (अंश) द्रव्य के ही आश्रय से हैं और उन पर्यायों के अवलम्बन से उत्पाद, व्यय ध्रुव हैं।

पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा अवलम्बित होती हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रित हैं; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं। वस्तु में जो उत्पाद, व्यय और ध्रुव हैं; वे पर के कारण नहीं हैं, पर में नहीं हैं और पर के भी नहीं हैं, बल्कि वे अपनी पर्याय के ही हैं। उत्पाद पर्याय का है, व्यय भी पर्याय का है और ध्रुवता भी पर्याय की ही है। इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप वस्तु है। जिस समय सम्यग्दर्शन हुआ, उस समय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव इसप्रकार हैं :ह्न उस समय सम्यक्त्वपर्याय की अपेक्षा से उत्पाद है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ है; मिथ्यात्व पर्याय की अपेक्षा से व्यय है, कहीं संपूर्ण आत्मा व्यय को प्राप्त नहीं हुआ है और अखण्ड प्रवाह में वर्तते हुए ध्रुव अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है; कहीं सम्पूर्ण आत्मा ध्रुव नहीं है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव सम्पूर्ण द्रव्य

के नहीं हैं; किन्तु द्रव्य के एक-एक अंश के हैं और वे अंश द्रव्य के ही हैं; दूसरे की पर्याय के कारण या दूसरे की पर्याय में वे अंश नहीं हैं।

प्रश्न :ह्न विकार आत्मा का स्थायी स्वभाव नहीं है; इसलिये उस अंश का उत्पाद पर में होता होगा?

उत्तर :ह्न नहीं ! उस विकार का उत्पाद भी आत्मा की पर्याय के आश्रित ही है और वह पर्याय आत्मद्रव्य के आश्रय से बनी हुई है; कर्म के उदय के आश्रय से नहीं। विकारी पर्याय भी स्वज्ञेय का अंश है। विकारी अंश को यदि पर का अथवा पर के कारण हुआ कहा जाये तो सम्पूर्ण स्वज्ञेय सिद्ध नहीं होता। एक अंश को निकाल देने से आत्मा ही सिद्ध नहीं होगा। और यदि उस विकार के उत्पाद को अंश का (पर्याय का) न मानकर द्रव्य का ही माना जाये तो सम्पूर्ण द्रव्य ही विकारमय हो जायेगा; इसलिए जो विकाररहित स्वभाव है, वह स्वज्ञेयरूप से नहीं रहेगा और विकार दूर होकर अविकारीपना भी नहीं हो सकेगा।

उत्पाद, व्यय, ध्रुव पर्याय के होते हैं; पर्याय द्रव्य में होती है। इसप्रकार सबको एक द्रव्य में ही समा दिया है।

घट, पिण्ड और मिट्टीपना ह्न इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप मिट्टी है। इन तीनों अंशों के बिना मिट्टी सिद्ध नहीं हो सकती। उसमें उत्पाद घट के आश्रय से है और ध्रुवता मिट्टीपने के आश्रय से है तथा घट, पिण्ड और मिट्टीपना ह्न ये तीनों अंश मिट्टी के आश्रय से हैं। इसप्रकार एक मिट्टी में सब समा जाते हैं।

प्रश्न :ह्न जीव में जो रागादि उदयभाव होते हैं, वे किसके हैं? द्रव्य के, पर्याय के या पर के?

उत्तर :ह्न वे उदयभाव पर के नहीं हैं, द्रव्य के भी नहीं हैं; किन्तु वे आत्मा की उस समय की पर्याय के हैं। उदयभाव स्वज्ञेय की पर्याय है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव ह्न तीनों एकसाथ हैं; यह बात १00वीं गाथा में सिद्ध की है। यहाँ १0१वीं गाथा में यह कह रहे हैं कि उत्पाद, व्यय और

ध्रुव अंश (पर्याय) हैं और वे पर्यायें (अंश) द्रव्य की हैं। ऐसा कहकर उन तीनों को एक द्रव्य में ही समा दिया है।

किसी एक भाव का उत्पाद होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नवीन उत्पन्न नहीं होता, किन्तु वही पर्याय नवीन उत्पन्न होती है, वह पर्याय द्रव्य के आश्रित है।

किसी एक भाव का व्यय होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नाश को प्राप्त नहीं होता, किन्तु वही पर्याय नष्ट होती है और वह पर्याय द्रव्य के आश्रित है।

परिणामों के प्रवाह में ध्रुवतारूप से सम्पूर्ण द्रव्य ही ध्रुव नहीं है, किन्तु अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है, ध्रुवता भी द्रव्य का एक अंश है, सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है, किन्तु वह ध्रुव अंश द्रव्य के आश्रय से है।

इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंश के हैं और उन अंशों का समूह द्रव्य है। इसप्रकार द्रव्य में सब समा जाते हैं।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव द्रव्य के ही आश्रय से नहीं हैं अर्थात् द्रव्य के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव नहीं हैं, परन्तु पर्याय के हैं और वे पर्यायें द्रव्य की हैं। उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव में से किसी एक में ही सम्पूर्ण द्रव्य का समावेश नहीं हो जाता, किन्तु वे तो एक-एक पर्याय के हैं। उत्पाद सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता। इसप्रकार वे प्रत्येक एक-एक पर्याय को बतलाते हैं और उन तीनों पर्यायों का समूह द्रव्य को बतलाता है, द्रव्य पर्यायों के समूहरूप है।

किसी भी द्रव्य का कोई भी एक समय लो तो उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न तीनों एक साथ पर्यायों के आश्रय से हैं। मात्र उत्पाद में, व्यय में या ध्रुव में पूरा द्रव्य नहीं समा जाता; इसलिए वे द्रव्य के आश्रय से नहीं; किन्तु पर्यायों के आश्रय से हैं ह्न ऐसा कहा है। उत्पाद धर्म किसी पर्याय के आश्रय से है, व्ययधर्म भी किसी पर्याय के आश्रय से है और ध्रौव्यरूप धर्म भी किसी पर्याय के आश्रय से है; इसलिए उन्हें पर्याय का धर्म कहा है और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं; इसप्रकार अभेदरूप से द्रव्य में सब समा जाते हैं।

इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश द्रव्य का आलम्बन लेते हैं। उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है। उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु नहीं समा जाती, किन्तु अंशों के पिण्डरूप वस्तु है। वस्तु अंशी है और उत्पादादि से आलम्बित पर्यायें उसके अंश हैं। यह बात वृक्ष का उदाहरण देकर समझाते हैं ह्न जिसप्रकार अंशी वृक्ष के बीज, अंकुर और वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश निज धर्मों द्वारा आलंबित एक ही साथ भासित होते हैं; उसीप्रकार अंशी द्रव्य के नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित भाव ह्न ऐसे भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप तीन अंश निज धर्मों द्वारा आलंबित एक ही साथ भासित होते हैं।

वस्तु में उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है। उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं हो जाता अर्थात् द्रव्य की ही उत्पत्ति, द्रव्य का ही नाश या द्रव्य की ही ध्रुवता नहीं है। जिसप्रकार एक वृक्ष में बीज, अंकुर और वृक्षत्व ह्न अंश की ध्रुवता है, वे तीनों अंश मिलकर झाड़ का (वृक्ष का) अस्तित्व है; उसीप्रकार आत्मवस्तु में ह्न सम्यक्त्व अंश का उत्पाद, मिथ्यात्व अंश का व्यय और श्रद्धापने की ध्रुवता है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंशों के हैं, अंशी के नहीं हैं। द्रव्य की अपेक्षा से ही उत्पाद नहीं है, किन्तु द्रव्य में उत्पन्न होनेवाले भाव की अपेक्षा से उत्पाद है, द्रव्य की अपेक्षा से ही व्यय नहीं है, किन्तु पूर्व के नष्ट होनेवाले भाव की अपेक्षा से व्यय है और सम्पूर्ण द्रव्य की ही अपेक्षा से ध्रुवता नहीं है, किन्तु द्रव्य के अखण्ड स्थायीभाव की अपेक्षा से (द्रव्यत्व की अपेक्षा से) ध्रुवता है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव, प्रत्येक अंश के आश्रित हैं। जिस क्षण वस्तु नवीन भाव से उत्पन्न होती है; उसी क्षण पूर्व भाव से व्यय को प्राप्त होती है और उसी क्षण द्रव्यरूप से ध्रुव रहती है ह्न इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही अंशों के अवलम्बन से हैं, किन्तु अंशी के ही उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव नहीं हैं।

यहाँ ध्रुव को भी अंश की अपेक्षा से पर्याय कहा है; किन्तु उसमें द्रव्य का सामान्य भाग है। मात्र उस ध्रुव में ही सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं होता। इसलिए उसे भी अंश कहा है और अंश होने से पर्याय कहा है। इस अपेक्षा से ध्रुवता भी पर्याय के आश्रित कही गई है।

यदि अंशी-वस्तु के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव माने जायें तो उसमें क्या दोष आता है ह्न यह बात विस्तार से समझाते हैं :ह्न

यदि सम्पूर्ण द्रव्य का ही व्यय माना जाये तो

यदि पूर्व के अंश का व्यय न मानकर द्रव्य का ही व्यय माना जाये तो समस्त द्रव्य एक क्षण में नाश को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् सत् का ही नाश हो जायेगा।

यदि मिथ्यात्वपर्याय का नाश न मानकर आत्मद्रव्य का ही नाश माना जाये तो आत्मा एक क्षण में ही नाश को प्राप्त हो जायेगा, पहले क्षण का सत् दूसरे क्षण ही नाश हो जायेगा। अंश का नाश होता है, उसके बदले अंशी का ही नाश मानने में एक क्षण में ही समस्त द्रव्यों का अभाव हो जायेगा अथवा सत् पदार्थों का ही नाश हो जायेगा।

द्रव्य का ही व्यय मानने से प्रथम तो द्रव्यों का सर्वथा अभाव सिद्ध होगा, यह दोष आता है और भाव का अभाव हो जायेगा, यह दूसरा दोष आता है; इसलिये द्रव्य का व्यय नहीं है, किन्तु मात्र द्रव्य के अंश का व्यय है। और वह व्यय अंश अंशी पदार्थ से आश्रित है, किन्तु किसी द्रव्य का कोई अंश दूसरे द्रव्य के आश्रित नहीं है और विकारी या निर्विकारी किसी भी भाव का उत्पाद-व्यय भी दूसरे के आश्रित नहीं है, किन्तु उस-उस पर्याय के ही आश्रित है। राग का उत्पाद कर्म के आश्रय से नहीं है, किन्तु उससमय की पर्याय के आश्रित है। इस जीव के मिथ्यात्व का व्यय देव-गुरु के आश्रित नहीं है, किन्तु पूर्वपर्याय के आश्रित ही है। इसप्रकार पर्यायें स्वयं ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव का आश्रय हैं।

यदि सम्पूर्ण द्रव्य का उत्पाद माना जाये तो

यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाये तो क्षणिक पर्याय ही द्रव्य हो

जायेगी और प्रतिक्षण नवीन-नवीन द्रव्य ही उत्पन्न होने लगेगा। द्रव्य की अनन्त पर्यायों में से प्रत्येक पर्याय स्वयं द्रव्य हो जायेगी; इसलिए एक द्रव्य को ही अनन्त द्रव्यपना हो जायेगा अथवा वस्तु के बिना असत् का ही उत्पाद होने लगेगा।

मिट्टी में घट अवस्था उत्पन्न होती है, किन्तु मिट्टी स्वयं उत्पन्न नहीं होती। एक अंश के उत्पाद को ही द्रव्य माना जाये तो एक पर्याय स्वयं ही सम्पूर्ण द्रव्य हो जायेगी, इसलिये द्रव्य की अनन्त पर्यायें ही अनंत द्रव्य हो जायेंगे। इसप्रकार एक द्रव्य को ही अनंत द्रव्यपना हो जायेगा ह्न यह दोष आता है। हाँ, एक द्रव्य में अनंत गुण होते हैं और एक द्रव्य की अनंत पर्यायें भी होती हैं, किन्तु एक द्रव्य के अनंत द्रव्य नहीं होते। द्रव्य की पर्याय नवीन उत्पन्न होती है, किन्तु स्वयं द्रव्य नवीन उत्पन्न नहीं होता। यदि द्रव्य स्वयं उत्पन्न हो तो असत् की ही उत्पत्ति होगी। इसप्रकार द्रव्य का ही उत्पाद मानने में दो दोष आते हैं। प्रथम तो, एक ही द्रव्य अनन्त द्रव्यरूप हो जायेगा और दूसरे, असत् की ही उत्पत्ति होगी। इसलिये उत्पाद सम्पूर्ण द्रव्य का ही नहीं है, किन्तु उत्पन्न होनेवाले भाव का है और वह उत्पन्न होनेवाले भावरूप अंश द्रव्य का है।

यदि सम्पूर्ण द्रव्य को ही ध्रुव माना जाये तो

यदि सम्पूर्ण द्रव्य को ही ध्रुव मान लिया जाये तो क्रमश: होनेवाले उत्पाद-व्यय भावों के बिना द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा अथवा द्रव्य को क्षणिकपना हो जायेगा। वस्तु मात्र ध्रुवरूप नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, उसके बदले मात्र ध्रुव अंश को ही वस्तु मान लिया और अंशी को नहीं माना जाये तो द्रव्य क्षणिक हो जायेगा। इसलिये वस्तु ही ध्रुव नहीं है, किन्तु वस्तु का अंश ध्रुव है।

एक ही समय में उत्पाद-व्यय होते हैं, किन्तु वे उत्पाद-व्यय एक ही समय की पर्याय के नहीं हैं। एक समय में उत्पाद वर्तमान पर्याय का है और व्यय पूर्व पर्याय का है। एक ही समय में जिसका व्यय है उसका

उत्पाद नहीं है और जिसका उत्पाद है, उसका व्यय नहीं है। उत्पाद से आलम्बित पृथक् पर्याय है और व्यय से आलम्बित पृथक् पर्याय है, किन्तु उन उत्पाद-व्यय दोनों का काल एक ही है। जिससमय जिस पर्याय का व्यय है, उससमय उस पर्याय का उत्पाद नहीं है। एक का व्यय और दूसरी का उत्पाद, दूसरी का व्यय और तीसरी का उत्पाद ह्न इसप्रकार वे क्रमशः होनेवाले भाव हैं।

जब बीज का व्यय हो, तब अंकुर का उत्पाद होता है, इसलिये बीज और अंकुर क्रमशः होनेवाले भाव हैं, उनके बिना वृक्ष की ध्रुवता नहीं रहती। उत्पाद-व्यय के बिना क्रमशः होनेवाले भाव नहीं बन सकते और क्रमशः होनेवाले भावों के बिना द्रव्य का अस्तित्व नहीं रह सकता। जिसने मात्र द्रव्य को ही ध्रुव मान लिया है, उसके द्रव्य में पूर्वपर्याय का व्यय और पीछे की पर्याय का उत्पाद ह्न ऐसे क्रमशः होनेवाले भाव नहीं रहते। पूर्व का व्यय और पीछे का उत्पाद ह्न ऐसे क्रमशः होनेवाले भावों के बिना उसका ध्रुवतत्त्व कहाँ स्थिर रहेगा? इसलिये उसे ध्रुव द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा अथवा उसके मत में द्रव्य क्षणिक ही हो जायेगा। इसप्रकार द्रव्य को ही ध्रुव मानने में भी दोष आता है। ध्रुवता द्रव्य की ही नहीं है, किन्तु द्रव्य के स्थायी अंश की है।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न यह तीनों एकसाथ हैं, किन्तु वे अंशों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न इन तीनों को एक साथ न मानकर मात्र उत्पाद को, व्यय को या ध्रुव को ही मानें तो कौन से दोष आते हैं, वह बात १००वीं गाथा में बतलाई थी।

यहाँ, द्रव्य का ही उत्पाद, द्रव्य का ही व्यय और द्रव्य की ही ध्रुवता मानें तो कौन से दोष आते हैं ह्न यह बतलाया गया है।

इस गाथा में आचार्यदेव को यह सिद्ध करना है कि उत्पाद, व्यय और ध्रुव ये द्रव्य से पृथक् कोई पदार्थ नहीं हैं; किन्तु द्रव्य में ही इन सबका समावेश हो जाता है।

(१) यदि द्रव्य का ही उत्पाद मान लिया जाये तो व्यय और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा। (२) यदि द्रव्य का ही व्यय मान लिया जाये तो उत्पाद और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा। (३) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य मान लिया जाये तो उत्पाद और व्यय का समावेश द्रव्य में नहीं होगा। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा पर्याय आलम्बित हो, जिससे यह सब एक ही द्रव्य हो।

आचार्यदेव ने न्याय और युक्तिपूर्वक वस्तुस्वरूप सिद्ध किया है। द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न नहीं होता, स्वयं ही नाश को प्राप्त नहीं होता और स्वयं ही ध्रुव नहीं रहता; किन्तु उसके अंश का उत्पाद है, अंश का व्यय है और अंश की ध्रुवता है। इसलिये वे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अंशों के (पर्यायों के) हैं और वे पर्यायें द्रव्य की ही हैं। इससे सब एक ही द्रव्य है।

गाथा १०१ के भावार्थ पर प्रवचन

आत्मा और परमाणु ज्ञेय हैं और एक ज्ञेय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों होकर के सम्पूर्ण द्रव्य है।

बीज, अंकुर और वृक्षत्व ह्न ये वृक्ष के अंश हैं। बीज का नाश अंकुर का उत्पाद और वृक्ष का ध्रुवत्व तीनों होकर वृक्ष हैं। एक समय में सम्पूर्ण वृक्ष है। नाश बीज के आश्रित है, उत्पाद अंकुर के आश्रित है और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित है। नाश होना, उत्पन्न होना और ध्रुवत्व रहना बीज, अंकुर और वृक्षत्व से पृथक् पदार्थरूप नहीं है; इसीलिए ये सभी एक वृक्ष ही हैं।

आत्मा में मिथ्याभाव का नाश होना, सम्यक्भाव का उत्पाद होना और आत्मा का ध्रुवरूप बने रहना ह्न ये आत्मा के अंश हैं; ये तीनों होकर सम्पूर्ण आत्मा है। अनंत गुणों की पूर्व अवस्था का नाश, वर्तमान अवस्था का उत्पाद और गुणों का ध्रुवत्व ह्न ये तीनों होकर सम्पूर्ण आत्मा है। तीनों अंश पर के कारण नहीं हैं। आत्मा के कारण कर्म के परमाणु का

उत्पाद नहीं और कर्म के परमाणु के कारण आत्मा की अवस्था में राग नहीं है; अपितु स्वयं की योग्यता के कारण राग का उत्पाद, पूर्व के राग का व्यय और आत्मा का ध्रुव रहना ह्न इसप्रकार तीनों होकर के द्रव्य है।

अंगुली टेढ़ी थी, उसमें से सीधी हुई तो यहाँ टेढ़ेपने का व्यय, सीधेपने का उत्पाद और अंगुली द्रव्य का ध्रुव रहना, इसप्रकार तीन होकर के द्रव्य है; किन्तु आत्मा अथवा राग के कारण अंगुली सीधी नहीं हुई है। टेढ़ापना मिटा नहीं है और ध्रुवत्व रूप नहीं रही है। यदि पर के कारण व्यय अथवा उत्पाद माना जाये तो सम्पूर्ण द्रव्य सिद्ध नहीं होता।

यदि व्यय जितना ही द्रव्य माना जाये तो द्रव्य का नाश होता है। यदि उत्पाद जितना ही द्रव्य माना जाये तो द्रव्य अनेकरूप हो जाता है। क्रमशः होनेवाले भावों के बिना ही ध्रुव माना जाये तो अकेले ध्रुव के ही रहने पर द्रव्य को क्षणिकता का प्रसंग आता है।

अतः एक ही समय में तीनों होकर के द्रव्य पूर्ण होता है। कर्म के कारण आत्मा की अवस्था में राग-द्वेष होते हैं ह्न ऐसा माना जाये तो आत्मा का उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध नहीं होता अर्थात् आत्मद्रव्य ही नहीं रहता और आत्मा के राग-द्वेष के कारण कर्म को बँधना पड़ा ह्न ऐसा माना जाये तो कर्म के उत्पाद-व्यय बिना कर्म द्रव्य भी सिद्ध नहीं होता।

अतः तीनों ही अंश अपने में सिद्ध करे तो ही प्रत्येक द्रव्य सिद्ध होता है।

राग का व्यय राग के नाश होनेवाले भाव के आधीन है, वीतरागता का उत्पाद उत्पन्न होनेवाले भाव के आधीन है और आत्मा का ध्रुवत्व स्थायीभाव के आधीन है। जैसे व्यय पर के कारण नहीं है, वैसे ही अकेले व्यय में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आता। जैसे उत्पाद पर के कारण नहीं है, वैसे ही अकेले उत्पाद में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आता। जैसे ध्रुव पर के कारण नहीं है, वैसे ही अकेले ध्रुव में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आता।

इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव ह्न ये तीनों ही अंश स्वतंत्र हैं और तीनों होकर के सम्पूर्ण द्रव्य हैं; किन्तु अज्ञानी जीव कर्म के कारण राग

होना अथवा अंश से धर्म का होना मानता है, जो अज्ञान भाव है।

किसी भी एक अंश को पर के कारण माने अथवा अंश जितना ही सम्पूर्ण द्रव्य माने तो भी मिथ्यात्व है।

तीनों ही अंश स्वतंत्र हैं और तीनों होकर के एक सम्पूर्ण द्रव्य है, किन्तु वे कोई तीन द्रव्य नहीं हैं।

भाषा का उत्पाद परमाणु के उत्पाद के कारण है, किन्तु होंठ अथवा जीव की इच्छा के कारण नहीं।

राग का व्यय नष्ट होनेवाले भाव के कारण है, किन्तु कर्म के कारण नहीं।

जो जीव स्वतंत्र स्वभाव को नहीं समझता और समझे बिना ही व्रत-तप करता है तो वहाँ यदि मंदकषाय हो तो पुण्य होता है, किन्तु धर्म नहीं होता।

एक समय के सत् को स्वीकार न करे तो सत् नहीं रहता, ज्ञेय के यथार्थ नहीं रहने पर ज्ञान भी यथार्थ नहीं रहता और ज्ञान के यथार्थ न रहने पर श्रद्धा भी यथार्थ नहीं रहती।

अल्पज्ञान भी सम्यक् हो तो वह भव का अंत लाता है, किन्तु बहुत अधिक क्षयोपशम होने पर भी यदि वह ज्ञान मिथ्या है तो संसार चालू (चलता) रहता है; इसीलिये सम्यग्ज्ञान करना चाहिए।

उत्पाद पर के कारण तो नहीं, किन्तु व्यय के कारण भी नहीं है; व्यय पर के कारण तो नहीं, किन्तु उत्पाद के कारण भी नहीं है।

ध्रुव भी पर के कारण तो नहीं, किन्तु ध्रुव उत्पाद-व्यय के कारण भी नहीं है।

एक-एक (प्रत्येक) पर्याय सत् है और तीनों होकर के सम्पूर्ण द्रव्य है। एक तो सत् है ह्न ऐसा कहना और फिर वह दूसरे से है ह्न ऐसा कहा जाये तो द्रव्य ही नहीं रहता। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों अंश सत् हैं ह्न ऐसा स्वीकार करके सम्पूर्ण द्रव्य एक है ह्न ऐसा ज्ञान में समझना चाहिए।

उत्पाद, उत्पाद के आश्रय से है; व्यय, व्यय के आश्रय से है; ध्रुव, ध्रुव के आश्रय से है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव इन भावों से पदार्थ पृथक् नहीं है तथा ये भाव भी द्रव्य से पृथक् पदार्थरूप नहीं हैं, इसीलिये ये सभी एक ही द्रव्य हैं।

इसप्रकार ज्ञेय का यथार्थ ज्ञान करना चाहिए। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन से सम्यक् श्रद्धा कराते हैं।

उत्पाद को ध्रुव तथा व्यय अंतरंग निमित्त कारण हैं।
व्यय को उत्पाद तथा ध्रुव अंतरंग निमित्त कारण हैं।
ध्रुव को उत्पाद तथा व्यय अंतरंग निमित्त कारण हैं।
एक गुण की पर्याय को दूसरे गुण की पर्याय अंतरंग निमित्त कारण है।

●

आत्मानभूति-प्राप्ति के लिए सन्नद्ध पुरुष प्रथम तो श्रुतज्ञान के अवलम्बन से आत्मा का विकल्पात्मक सम्यक् निर्णय करता है। तत्पश्चात् आत्मा की प्रकट-प्रसिद्धि के लिए, पर-प्रसिद्धि की कारणभूत इन्द्रियों से मतिज्ञानत्व को समेट कर आत्माभिमुख करता है तथा अनेक प्रकार के पक्षों का अवलम्बन करने वाले विकल्पों से आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की बुद्धि को भी गौण कर उसे भी आत्माभिमुख करता हुआ विकल्पानुभवों को पार कर स्वानुभव दशा को प्राप्त हो जाता है।

ह्न मैं कौन हूँ ?, पृष्ठ-२२५

प्रवचनसार गाथा १०२

अब, उत्पादादि का क्षणभेद [१]निरस्त करके वे द्रव्य हैं, यह समझाते हैं :ह्न

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।
एक्कम्मि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं॥१०२॥

(हरिगीत)

उत्पादव्ययथिति द्रव्य में समवेत हों प्रत्येक पल।
बस इसलिए तो कहा है इन तीनमय हैं द्रव्य सब॥१०२॥

अन्वयार्थ :ह्न [द्रव्यं] द्रव्य [एकस्मिन् च एव समये] एक ही समय में [संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः] उत्पाद, स्थिति और नाश नामक [२]अर्थों के साथ [खलु] वास्तव में [समवेतं] [३]समवेत (एकमेक) है; [तस्मात्] इसलिये [तत् त्रितयं] यह [४]त्रितय [खलु] वास्तव में [द्रव्यं] द्रव्य है।

टीका :ह्न (प्रथम शंका उपस्थित की जाती है :-) यहाँ (विश्व में) वस्तु का जो जन्मक्षण है, वह जन्म से ही व्याप्त होने से स्थितिक्षण और नाशक्षण नहीं है, (वह पृथक् ही होता है); जो स्थितिक्षण हो, वह दोनों के अन्तराल में (उत्पादक्षण और नाशक्षण के बीच) दृढ़तया रहता है, इसलिये (वह) जन्मक्षण और नाशक्षण नहीं है; और जो नाशक्षण है, वह ह्न वस्तु उत्पन्न होकर और स्थिर रहकर फिर नाश को प्राप्त होती है, इसलिये ह्न जन्मक्षण और स्थितिक्षण नहीं है ह्न इसप्रकार तर्कपूर्वक विचार करने पर उत्पादादि का क्षणभेद हृदयभूमि में उतरता है (अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समय भिन्न-भिन्न होता है, एक नहीं होता ह्न ऐसी बात हृदय में जमती है।)

१. निरस्त करके = दूर करके; नष्ट करके; खण्डित करके; निराकृत करके।
२. अर्थ = पदार्थ (८७वीं गाथा में समझाया गया है, तदनुसार पर्याय भी अर्थ है।)
३. समवेत = समवायवाला, तादात्म्यसहित जुड़ा हुआ, एकमेक।
४. त्रितय=तीन का समुदाय। (उत्पाद,व्यय और ध्रौव्य ह्न इन तीनों का समुदाय वास्तव में द्रव्य ही है।)

यहाँ उपर्युक्त शंका का समाधान किया जाता है :ह्न इसप्रकार उत्पादादि का क्षणभेद हृदयभूमि में तभी उतर सकता है; जब यह माना जाये कि द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही ध्रुव रहता है और स्वयं ही नाश को प्राप्त होता है ! किन्तु ऐसा तो माना नहीं गया है; (क्योंकि यह स्वीकार और सिद्ध किया गया है कि) पर्यायों के ही उत्पादादि हैं; (तब फिर) वहाँ क्षणभेद कहाँ से हो सकता है? यह समझाते हैं :ह्न

जैसे कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार की उपस्थिति में जो रामपात्र का जन्मक्षण होता है, वही मृत्तिकापिण्ड का नाशक्षण होता है और वही दोनों [1]कोटियों में रहनेवाले मिट्टीपन का स्थितिक्षण होता है; इसीप्रकार अन्तरंग और बहिरंग साधनों द्वारा किये जानेवाले संस्कारों की उपस्थिति में, जो उत्तर-पर्याय का जन्मक्षण होता है, वही पूर्व पर्याय का नाशक्षण होता है और वही दोनों कोटियों में रहनेवाले द्रव्यत्व का स्थितिक्षण होता है।

और जैसे रामपात्र में, मृत्तिकापिण्ड में और मिट्टीपन में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येक रूप में (प्रत्येक पृथक्-पृथक्) वर्तते होने पर भी [2]त्रिस्वभावस्पर्शी मृत्तिका में वे सम्पूर्णतया (सभी एकसाथ) एक समय में ही देखे जाते हैं; इसीप्रकार उत्तर पर्याय में, पूर्वपर्याय में और द्रव्यत्व में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येकतया (एक-एक) प्रवर्तमान होने पर भी त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य में वे सम्पूर्णतया (तीनों एकसाथ) एक समय में ही देखे जाते हैं।

और जैसे रामपात्र, मृत्तिकापिण्ड तथा मिट्टीपन में प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मिट्टी ही हैं, अन्य वस्तु नहीं; उसीप्रकार उत्तर पर्याय, पूर्व पर्याय और द्रव्यत्व में प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य द्रव्य ही हैं, अन्य पदार्थ नहीं।

१. कोटि = प्रकार (मिट्टीपन तो पिंडरूप तथा रामपात्ररूप ह्न दोनों प्रकारों में विद्यमान है।)
२. त्रिस्वभावस्पर्शी ह्न तीनों स्वभावों को स्पर्श करनेवाला। (द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ह्न इन तीनों स्वभावों को धारण करता है।)

गाथा १०२ पर प्रवचन

गाथा १०० में ऐसा कहा था कि प्रत्येक द्रव्य में भावभेद नहीं है; उत्पाद, व्यय बिना नहीं होता; व्यय, उत्पाद बिना नहीं होता तथा उत्पाद-व्यय, ध्रुव बिना नहीं होते; इसप्रकार भावभेद नहीं ह्न ऐसा वहाँ बताया था। इसके बाद उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों में वर्तते हैं और पर्यायें द्रव्य में होती हैं, इसकारण वे सभी भाव होकर के द्रव्य हैं ह्न ऐसा १०१ वीं गाथा में कहा था। अब तीनों को कालभेद नहीं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक ही समय में हैं ह्न ऐसा १०२वीं गाथा में कहते हैं।

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ह्न ये तीनों द्रव्य के अंश हैं और अंश के रूप में समान होने पर भी अंश की सामर्थ्य की ओर से देखा जाये तो तीनों समान नहीं हैं; क्योंकि उत्पाद और व्यय की अपेक्षा ध्रौव्य अंश अधिक सामर्थ्यवाला है।

द्रव्य अनंत गुणों का पिण्ड है, उसमें ध्रुव वह अनंत गुणों का ध्रुव रहा है। श्रद्धा गुण का ध्रुव वह सम्पूर्ण ध्रुव में आ जाता है और सादृश्य ध्रुव पदार्थ की रुचि और यथार्थ ज्ञान होने पर उत्पाद-व्यय का भी यथार्थ ज्ञान होता है।

ध्रुव पदार्थ जो शुद्ध है, उसकी सामर्थ्य का ज्ञान होने पर जीव को पर की ह्न विकल्प की महिमा नहीं आती। अपने सामान्य ध्रुव तरफ एकाकार होने पर धर्म की पर्याय का उत्पाद होता है और अधर्म की पर्याय का नाश होता है।

परपदार्थ अथवा निमित्त के कारण उत्पाद-व्यय होता है, इस मान्यता में तो स्थूल भूल है, किन्तु अनन्त सामर्थ्यवान ध्रुव की रुचि और ज्ञान के बिना उत्पाद-व्यय का यथार्थ ज्ञान व्यवहार से भी नहीं कहलाता।

द्रव्य के तीनों अंशों को भेद करके लक्ष्य में लेना पर्यायार्थिकनय का विषय है और तीनों अंश होकर के सम्पूर्ण द्रव्य-स्वज्ञेय को, ख्याल (ज्ञान) में लेना प्रमाण का विषय है।

जब तीनों को स्वतंत्र बताना हो, तब तीनों सत् हैं। प्रत्येक अंश

स्वयं से सत् है अर्थात् उत्पाद, उत्पाद के कारण; व्यय, व्यय के कारण और ध्रुव, ध्रुव के कारण है ह्न इसप्रकार एक अंश दूसरे अंश से स्वतंत्र है, यह बताया गया है; किन्तु जब भविष्य का उत्पाद किसके आश्रय से होगा ह्न यह बताना हो, तब यह कहा जाता है कि ध्रुव के आश्रय से उत्पाद होता है, किन्तु पर के आश्रय से नहीं। उत्पाद, उत्पाद के कारण व्यय, व्यय के कारण और ध्रुव, ध्रुव के कारण ह्न इस प्रकार तीनों अंशों को स्वतंत्र बताया गया है।

शरीर-मन-वाणी परज्ञेय ह्न परवस्तु है। उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों ही अंश उसी द्रव्य में हैं। उनके अंशों के कारण आत्मा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव नहीं होते अर्थात् पर के अंशों के कारण आत्मा में धर्म की उत्पत्ति नहीं होती, आत्मा में अधर्म का नाश नहीं होता और आत्मा स्थिर नहीं रहता।

मेरा लाभ-नुकसान, पर की दया अथवा पर की हिंसा के कारण नहीं है, अपितु मेरा लाभ तो मेरी ध्रुव श्रद्धा के अवलम्बन से है ह्न ऐसा निर्णय करने पर शुद्ध दशा की उत्पत्ति होती है, अशुद्धता का नाश होता है और स्वयं ध्रुवरूप स्थिर रहता है ह्न ऐसा यथार्थ निर्णय होता है। इसप्रकार प्रत्येक भाव स्वयं में एक-दूसरे के बिना ही वर्तन कर रहा है।

एक समय के सत् की सामर्थ्य के स्वीकार बिना सम्पूर्ण द्रव्य की सामर्थ्य का स्वीकार नहीं होता। अब, तीनों ही अंश एक ही समय में हैं, उनमें क्षणभेद नहीं है, यह बात यहाँ इस गाथा में कहते हैं।

द्रव्य एक ही समय में उत्पाद, स्थिति और नाश नाम के अर्थों के साथ वास्तव में एकमेक है; इसीलिए इन तीनों का समुदाय वास्तव में द्रव्य ही है। सम्यग्दर्शन का उत्पन्न होना, आत्मा का ध्रुव रहना और मिथ्यादर्शन का व्यय होना ह्न ये एक ही समय में है। इच्छा का होना, आत्मा का ध्रुव रहना और पूर्व की इच्छा का व्यय होना, एक ही समय में है।

आत्मा ने इच्छा की और अंगुली ऊँची हुई ह्न इन दोनों का समय एक है; इसीलिये एक-दूसरे ने एक-दूसरे का कुछ किया हो ह्न ऐसा नहीं

है; अपितु दोनों का स्वकाल एक ही समय में होने पर भी वे एक-दूसरे के कारण नहीं हैं। वास्तव में तो अंगुली का उत्पाद-व्यय-ध्रुव अंगुली के पुद्‌गल द्रव्य में उसके एक ही समय में है और आत्मा का उत्पाद-व्यय-ध्रुव आत्मा में एक ही समय में है।

अब समय की स्पष्टता के लिए शंकाकार शंका उत्पन्न करते हैं कि वस्तु का जो जन्मक्षण है, वह जन्म से ही व्याप्त होने से स्थितिक्षण और नाशक्षण नहीं हो सकता; अपितु पृथक् ही होगा; जो स्थितिक्षण है, वह जन्मक्षण और नाशक्षण दोनों के बीच का क्षण होने से जन्मक्षण और नाशक्षण नहीं हो सकता और जो नाशक्षण है, वह वस्तु उत्पन्न होकर और स्थिर रहकर फिर नाश को प्राप्त होती है; इसीलिये वह जन्मक्षण और स्थितिक्षण नहीं हो सकता; इसप्रकार तर्कपूर्वक विचार करने पर उत्पाद, ध्रुव और व्यय का एक ही समय होना हमें नहीं लगता, अपितु पृथक्-पृथक् लगता है।

इस तर्क में उत्पाद तथा व्यय कर्म से अथवा संयोग से होते हैं, यह बात तो की ही नहीं है, किन्तु तीनों ही के बीच कालभेद है ह्न ऐसा जो अज्ञानी को लगता है, उसका निषेध किया गया है।

कोई भी वस्तु बनती है, वहाँ वह उत्पन्न होती है, पश्चात् थोड़े समय टिकती है और बाद में नाश को प्राप्त होती है। जैसे बालक जन्मता है, कुछ वर्ष जीता है अर्थात् टिकता है और पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होता है; इसप्रकार उत्पाद-ध्रुव-व्यय का समय पृथक्-पृथक् है ह्न ऐसा अज्ञानी कहता है।

खोटी (मिथ्या) श्रद्धा तो नाश हुई है, किन्तु उस समय सम्यग्दर्शन हुआ है अथवा नहीं, इसकी खबर नहीं पड़ती। खोटी श्रद्धा का नाश होने के समय के पश्चात् धर्म होगा और बीच में आत्मा रहता है ह्न अज्ञानी ऐसा तर्क करता है। जिस समय सम्यग्दर्शन होता है, उसी समय मिथ्यादर्शन का नाश होता है और उसी समय आत्मा स्थित रहता है ह्न ऐसा हमें नहीं लगता, अपितु इनमें कालभेद होगा ह्न ऐसा लगता है।

अज्ञानी की ऐसी दलील (तर्क) का कारण यह है कि उसकी दृष्टि संयोगी वस्तुओं के ऊपर है। संयोग आते हैं, टिकते हैं और बिखर जाते हैं; उसके ऊपर उसकी नजर है, किन्तु प्रत्येक आत्मा और परमाणु स्वतंत्र है ह्र ऐसी स्वभावदृष्टि पर उसकी नजर नहीं है; इसीलिये वह भूल करता है।

अब उपरोक्त शंका का समाधान करते हुए अज्ञानी को कहा जाता है कि यदि उत्पाद होने के समय सम्पूर्ण द्रव्य उत्पन्न होता हो तो तथा व्यय होने के समय सम्पूर्ण द्रव्य का नाश होता हो तो और ध्रुव रहने के समय सम्पूर्ण द्रव्य केवल ध्रुवत्व ही हो तो तुम्हारा तर्क उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व के समय भेद की बात सही ठहरे।

धर्म के उत्पाद होने के साथ सम्पूर्ण आत्मा धर्मरूप होता हो और मिथ्यात्व के व्यय के साथ सम्पूर्ण आत्मा का व्यय होता हो। तुम्हारे द्वारा कही हुई समयभेद की बात मानी जा सकती है; किन्तु वैसा कभी नहीं होता; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों ही द्रव्य के अंश हैं। द्रव्य ध्रुव रहकर उसमें उत्पाद-व्यय हुआ करते हैं। आत्मा आत्मारूप ध्रुव रहकर मिथ्यादर्शन का व्यय होता है और सम्यग्दर्शन का उत्पाद होता है, इसीलिये अज्ञानी का क्षणभेद का तर्क असत्य है। अगली गाथा में निश्चित किया गया है कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव ये तीनों ही पर्यायें अर्थात् अंश हैं और तीनों होकर के सम्पूर्ण द्रव्य है; इसीलिये तीनों में समयभेद नहीं है।

अज्ञानी जीव संयोग को देखता है और मानता है कि आत्मा के कारण अंगुली चली, अंगुली के कारण घड़ा बना, फिर वह ध्रुव रहा और बाद में उसका नाश हुआ ह्र इसतरह उत्पाद-व्यय-ध्रुव में समयभेद है। जबकि मिट्टी का उत्पाद-व्यय-ध्रुव मिट्टी में है। कोई किसी के कारण नहीं है और समयभेद भी नहीं है।

यदि सम्पूर्ण द्रव्य एक अंश में आ जाता हो तो अज्ञानी की उक्त बात बराबर है; किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्य अकेले उत्पाद में अथवा अकेले व्यय में अथवा अकेले ध्रुव में नहीं आता, अपितु तीनों एक होकर एक द्रव्य हैं, इसीलिए उनमें समय-भेद नहीं है। इसीतरह

आत्मा में भी सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, मिथ्यादर्शन का व्यय और आत्मा का ध्रुवत्व एक ही समय में है, इनमें समयभेद नहीं है। इसतरह प्रत्येक आत्मा और परमाणु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक ही समय में हैं।

आत्मा और परमाणु वस्तु है। उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक ही समय में होते हैं। नई अवस्था का उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का नाश होना और सदृशरूप ध्रुव का बना रहना एक समय में है।

यहाँ अज्ञानी शंका करता है कि पहले घड़ा बनता है, फिर वह टिकता है और पश्चात् वह नाश को प्राप्त होता है; इसीतरह पुस्तक भी पहले नई बनती है, थोड़े समय टिकती है और बाद में फट जाती है। बालक भी जन्म लेता है, थोड़े वर्ष जीवित रहता है और उसके बाद मर जाता है। इसीतरह लड्डू बनाया, वह थोड़े समय रहा और फिर उसे खा लिया अर्थात् उसका नाश हुआ, इसप्रकार तीनों एक ही साथ होते हुए हमें दिखाई नहीं देते। चाहे किसी भी दृष्टांत को लो (देखो) तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों के समय में भेद लगता है, किन्तु कोई वस्तु का बनने के साथ ही तुरंत ही नाश हो जाये ह्र ऐसा नहीं होता; अपितु वस्तु पहले बने, फिर टिके और पश्चात् उसका नाश हो। इसीलिये उत्पन्न होना, ध्रुव रहना और नाश को प्राप्त होना ह्र इन तीनों में समयभेद लगता है ह्र ऐसा अज्ञानी का तर्क है।

अभी धर्म हो, पश्चात् आत्मा लक्ष्य में आवे, फिर ज्ञान होने के बाद तपश्चर्या करे तो फिर अज्ञान का नाश हो; किन्तु तुरन्त ही विशेष ज्ञान प्रगट हो जाये ह्र ऐसा नहीं होता; इसतरह धर्म प्रगट होने का क्षण आत्मा के टिके (बने) रहने का क्षण और अधर्म के नाश होने के क्षण में कालभेद लगता है ह्र ऐसा तर्क अज्ञानी करता है।

यहाँ आचार्य भगवान कहते हैं कि भाई! तेरी यह बात सही नहीं है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव में समयभेद नहीं हो सकता। समय-समय नई अवस्था उत्पन्न होती है, पूर्व की अवस्था का व्यय होता है और आत्मा ध्रुव बना रहता है, इसप्रकार तीनों ही अंश एक साथ हैं ह्र ऐसा समझकर ध्रुव ह्र

कायमी चीज की रुचि होने पर एक ही समय में मिथ्यात्व का नाश होता है, सम्यक्त्व का उत्पाद होता है और स्वयं आत्मरूप ध्रुव बना रहता है। इसप्रकार जड़ और चेतन समय-समय (पर्याय-पर्याय) में स्वतंत्र हैं ह्न ऐसा निश्चित करना यही उत्पाद-व्यय-ध्रुव का मर्म है।

प्रवचनसार, गाथा ९३-९४ में अकेली पर्याय को ही माननेवाला परसमय है और पर्याय द्रव्य की है, इसप्रकार द्रव्य-पर्याय का यथार्थ ज्ञान करके जो आत्मस्वभाव में स्थिर है, वह स्व-समय है ह्न ऐसा कहा था।

गाथा ९५ में प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव को छोड़े बिना उत्पाद-व्यय-ध्रुव से और गुण-पर्याय से लक्षित होता है ह्न इसप्रकार समय-समय के स्वतंत्र परिणमन से द्रव्य को सिद्ध करके निमित्त का ज्ञान कराया था तथा इसी गाथा की टीका में अमृतचंद्राचार्य महाराज ने कहा कि उचित बहिरंग साधनों के सान्निध्य के सद्भाव में द्रव्य अनेक प्रकार की अवस्थाओं को करता है। वहाँ उन पर्यायों को स्वतंत्र निरपेक्ष सिद्ध करके सापेक्षता बताई है।

गाथा ९६ में 'सव्वकालं' शब्द से आचार्य भगवान ने प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से परिणमित हो रही है; किन्तु पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणमित नहीं होती ह्न ऐसा बताया है। प्रत्येक वस्तु के परिणाम स्वयं से और अपने स्व-काल में होते हैं, किन्तु निमित्त से और उलटे-सीधे समय (अकाल) में नहीं होते।

१. स्वयं त्रिकाली रहनेवाला पदार्थ द्रव्य है और अपने भाव अर्थात् शक्तियाँ ध्रुव हैं। इसकी रुचि और प्रतीति के बिना समय-समय के परिणाम की - स्वकाल की यथार्थ समझ नहीं होती। स्व-द्रव्य तथा स्वभाव की रुचि तथा ज्ञान होने पर स्व के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का सही ज्ञान होता है।

२. द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में भी द्रव्य-गुण की रुचि के बिना पर्याय का सही ज्ञान नहीं होता अर्थात् द्रव्य-गुण की रुचि तथा ज्ञान होने पर प्रत्येक पर्याय का सही ज्ञान होता है।

३. उत्पाद-व्यय-ध्रुव के स्वरूप में ध्रुव की रुचि तथा ज्ञान के बिना उत्पाद-व्यय का सच्चा ज्ञान नहीं होता। ध्रुव की रुचि तथा ज्ञान होने पर ही उत्पाद-व्यय का सही ज्ञान होता है।

ऐसा निर्णय होने पर कि मैं स्वयं कायम रहनेवाला ध्रुव पदार्थ हूँ और मुझमें त्रिकाली अनंत शक्तियाँ हैं, सही समझ और रुचिपूर्वक सम्यग्ज्ञान होता है।

निगोद से लेकर सिद्ध तक प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा अपने-अपने में परिणमित हो रहे हैं। उनमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव का कालभेद नहीं है।

गाथा ९५ में उत्पादादि सिद्ध करके निमित्त की बात रखी है ह्न स्वभाव का स्थापन करके संयोग की बात रखी है। स्वचतुष्टय प्रत्येक समय-समय है। प्रत्येक वस्तु अपने चतुष्टय से है और पर के चतुष्टय से नहीं। इसप्रकार द्रव्य और भाव की रुचि होने पर काल का (पर्याय का) सही ज्ञान होता है। द्रव्य और भाव वह ध्रुव और काल वह उत्पाद-व्यय, इन सभी का समय एक ही है अर्थात् ये सभी एक ही समय में एक साथ होते हैं। शक्तिमान और शक्ति का भान होने पर अवस्था का भान होता है, वह अपने से होता है ह्न ऐसा सिद्ध करके गाथा ९५ और १०२ में निमित्त का ज्ञान कराया गया है।

उत्पाद-व्यय कहो, पर्याय कहो, स्व-काल कहो ह्न ये सभी एकार्थवाचक हैं। यहाँ तो परपदार्थ से उत्पाद-व्यय (पर्याय) होते हैं ह्न यह बात लेना ही नहीं है। संयोग बुद्धिवाले की नजर संयोग के ऊपर जाती है; जहाँ जो बात सिद्ध करना हो, उसे नहीं देखता।

जितनी आयु है, तब तक शरीर टिका रहेगा ह्न ऐसा माननेवाले ने स्कंध को स्थूलरूप से देखा है; इस स्थूल संयोग, किन्तु रजकण के तथा आत्मा के स्वचतुष्टय अपने-अपने में हैं, किन्तु पर में नहीं। ऐसे स्वभाव पर अज्ञानी की नजर नहीं जाती।

गाथा ९५ में निमित्त का ज्ञान कराया था, किन्तु वहाँ शंका नहीं की थी; गाथा ९३ से लेकर गाथा १०१ तक सभी गाथाओं में द्रव्य-गुण-

पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव, छह लक्षणों द्वारा द्रव्य की सिद्धि की है। इस प्रकार नौ गाथाओं में स्वभाव की सिद्धि करके, यहाँ गाथा १०२ में निमित्त का ज्ञान कराते हैं।

यहाँ एक-एक पर्याय के सत् स्वभाव की बात करने पर उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों में काल-भेद नहीं है ह्न यह बात चलती है। इस स्वभाव दृष्टि की बात को छोड़कर शंकाकार संयोग के ऊपर कैसी-कैसी दृष्टि डालता है ह्न यह बात भी बताते हैं। बहुत पुरुषार्थ से संयोग-दृष्टि का आग्रह छूटता है और संयोगी-दृष्टि का आग्रह छूटे तो ही धर्म होता है ह्न ऐसा भी बताते हैं।

विकार से, पर्याय से, गुण-पर्याय से, उत्पाद-व्यय-ध्रुव से अथवा स्व चतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) आदि से, चाहे किसी भी एक लक्षण से स्वभाव को देखनेवाला स्वभाव को देखता है। जैसे ह्न विकार हुआ तो वह किसका? ह्न अपने द्रव्य में अपने कारण से विकार हुआ, किन्तु पर में और पर के कारण विकार नहीं हुआ है ह्न ऐसा निर्णय करने पर अपने द्रव्य और चारित्र आदि त्रिकाली गुणों की तरफ दृष्टि जाने पर द्रव्य-गुण तो शुद्ध है ह्न ऐसी स्वभावदृष्टि होती है और आनन्द का उत्पाद अर्थात् धर्म भी उसी समय होता है।

ऐसा अतीन्द्रिय वस्तुस्वभाव श्रवण करने पर भी संयोगी-दृष्टिवाला कालभेद मानकर भूल करता है, यहाँ वह बताते हैं।

वस्त्र नया होता है और थोड़े समय टिकता है और फिर फट जाता है। इसीतरह शरीर जन्मता है, जितनी आयु है, उतने समय तक टिकता है और फिर नाश को प्राप्त होता है ह्न इसप्रकार अज्ञानी स्कंध को ही सम्पूर्ण वस्तु (मूल वस्तु) मानकर इन्द्रियगम्य स्थूल स्कंध में उत्पाद-व्यय-ध्रुव मान रहा है, किन्तु अपने सत्ता स्वभाव को छोड़े बिना प्रत्येक द्रव्य में समय-समय उत्पाद-व्यय-ध्रुव हो रहा है, उसे अतीन्द्रिय स्वभाव से नहीं देखता; इसीलिये उसे शंका उत्पन्न हुई है।

स्वयं कायम रहनेवाला ध्रुव पदार्थ है ह्न ऐसा यथार्थ ज्ञान करे तो

उत्पाद-व्यय का सही ज्ञान होता है; इसीतरह स्वभाव का यथार्थ ज्ञान करे तो संयोग का सही ज्ञान होता है, किन्तु संयोग और निमित्त के ज्ञान से स्वभाव का सही ज्ञान नहीं होता।

ध्रुव ज्ञान शक्ति थी तो इस ध्रुव के आश्रय से अल्पज्ञान का व्यय होकर विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है, किन्तु अज्ञानी ऐसा नहीं मानता; अपितु संयोग और वाणी आवे तो ज्ञान होता व टिकता है और यदि संयोग और वाणी का वियोग हो जावे तो याद नहीं रहता ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है। यह जीव कालभेद को ही मान रहा है, किन्तु मैं ध्रुव ज्ञान स्वरूप हूँ तथा इसी समय पूर्व की ज्ञान की अवस्था का व्यय और नई ज्ञान की अवस्था का उत्पाद होता ही है ह्न यह स्वभाव उसे स्वीकृत नहीं होता।

ठंड में जबतक सिगड़ी पास में होती है, तब तक तो गर्मी लगती है और यदि सिगड़ी अलग कर दो तो ठंडी लगने लगती है; इसीतरह यदि अग्नि हो तो पानी गरम होता है और अग्नि को हटाया तो पानी ठंडा होता है ह्न इसतरह अज्ञानी संयोग से देखता है, किन्तु पानी की उष्ण होने की शक्ति थी तो उष्ण हुआ है ह्न ऐसी स्वभाव की बात उसे स्वीकृत नहीं होती।

आचार्य भगवान कहते हैं कि यदि उत्पादादि एक अंश में सम्पूर्ण द्रव्य आ जाता हो तो तेरी बात सही है, किन्तु ऐसा नहीं होता; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य स्वयं सत् रहकर उसके तीनों ही अंश समय-समय एक साथ स्वतंत्र परिणमित हो रहे हैं।

इसप्रकार अनारोपित (निरपेक्ष) वस्तु का ज्ञान कराकर उस समय आरोपित दूसरी वस्तु कौन-सी थी, उसका ज्ञान कराया है।

कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार की उपस्थिति में जो रामपात्र का जन्मक्षण होता है, वही मृत्तिका पिण्ड का व्यय (नाश) क्षण होता है और वही दोनों प्रकार में रहनेवाले मिट्टीपने का स्थितिक्षण है। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों का समय एक

ही है, अन्य नहीं।

अज्ञानी बाह्य संयोगों को देखता है, किन्तु उस समय ज्ञानस्वभावी वस्तु-निरपेक्ष वस्तु क्या है? उसे नहीं देखता। वास्तव में कुम्हार के कारण घड़ा नहीं हुआ और घड़ा होना था; इसीलिये कुम्हार को आना पड़ा ह्न ऐसा भी नहीं है। तथा घड़ा हुआ; फिर अमुक काल के पश्चात् मिट्टी-पिण्ड का व्यय होता है ह्न ऐसा कालभेद भी नहीं है। उन-उन पर्यायों के काल में मिट्टी में से रामपात्र हुआ है, किन्तु आगे-पीछे के समय में नहीं।

प्रश्न :ह्न यदि ऐसा है तो रामपात्र बनने के समय से पहले ही वह (रामपात्र) क्यों नहीं हुआ?

समाधान :ह्न रामपात्र होने से पहले किसी दूसरी पर्याय का उत्पत्ति काल था। दूसरा स्व-काल था, इसीलिये यह अभी क्यों हुआ और आगे-पीछे क्यों नहीं हुआ ह्न ऐसा प्रश्न ही नहीं रहता। इसतरह जब घड़ा होता है, तब कुम्हार आदि बाह्य निमित्त होते हैं ह्न इसप्रकार यहाँ अस्ति में अस्ति का ज्ञान कराया है। यदि कुम्हार नहीं आया होता तो घड़ा नहीं होता अथवा कुम्हार आया था तो घड़ा हुआ ह्न ऐसा प्रश्न अस्ति में रहता ही नहीं। जहाँ उपादान है, वहाँ निमित्त है ह्न ऐसा ज्ञान कराया है। जहाँ निरपेक्ष वस्तु निमित्त है, वहाँ आरोपित वस्तु भी होती है।

रोटी के दृष्टांत में रोटी का उत्पत्ति काल, लोई का व्यय काल और परमाणु के ध्रुव रहने का काल एक ही है; उस समय बाई, बेलन आदि निमित्त होते हैं ह्न इसप्रकार स्वकाल का यथार्थ ज्ञान होने पर वस्तु का ह्न निमित्त का ज्ञान कराया है।

इसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य में अंतरंग और बहिरंग साधनों द्वारा आरोपित संस्कार की उपस्थिति में उत्पाद का जो क्षण है, वही पूर्व की पर्याय का व्यय क्षण है और वही दोनों में रहे हुए ध्रुव का क्षण है। आत्मा में सम्यग्दर्शन का उत्पाद, मिथ्यादर्शन का व्यय और आत्मा के ध्रुवरूप टिके रहने का काल एक ही है, कालभेद नहीं।

''अंतरंग साधन और बहिरंग साधनों द्वारा आरोपित संस्कार की उपस्थिति में'' ह्न इस वाक्य में बहुत रहस्य है, वह यहाँ बताते हैं।

प्रत्येक वस्तु स्वतंत्ररूप से काम कर रही है और उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक ही साथ है; यह बात तो पहले सिद्ध की। अब जब उत्पाद, व्यय, ध्रुव होते हैं; तब दो आरोपित साधन होते हैं, उनका ज्ञान कराते हैं।

आत्मा में सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद होता है, तब आत्मा सम्यग्दर्शन का कर्त्ता है और आत्मा उसका साधन है और उसका आधार भी आत्मा है; इसप्रकार कर्त्ता-करण-आधार आदि भेद करना अंतरंग आरोपित साधन है और सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद हुआ, वह निश्चय कार्य है।

जो उत्पाद सत् है, उसका कर्त्ता-करण-आधार ध्रुव आत्मा नहीं हो सकता। इसप्रकार उत्पाद में निरपेक्षता को स्वीकार करके, आत्मा में सम्यग्दर्शन का कर्त्ता, करण और आधार आदि भेद, आरोपित अंतरंग साधन है और सत् देव-गुरु-शास्त्र आदि सम्यग्दर्शन के बहिरंग साधन हैं। इसप्रकार प्रत्येक विकारी-अविकारी पर्याय में समझना चाहिए। उस समय की पर्याय वह निश्चय और निरपेक्ष है और द्रव्य उसका व्यवहार अंतरंग साधन है तथा बाह्य वस्तुएँ देव-गुरु आदि उसके बाह्य आरोपित साधन हैं।

अब, इसी बात को उत्पाद-व्यय-ध्रुव में घटित करते हैं।

प्रत्येक आत्मा और परमाणु की पर्याय का उत्पाद सत् है अर्थात् उत्पाद का ही आलम्बन लेता है ह्न ऐसा कहना निश्चय है और निरपेक्ष है। ध्रुव के कारण उत्पाद हुआ अथवा पूर्व की पर्याय का व्यय हुआ; इसीलिए उत्पाद हुआ ह्न ऐसा कहना, वह व्यवहार और आरोपित अंतरंग साधन है तथा बाह्य पदार्थ आरोपित बाह्य साधन है।

प्रत्येक आत्मा और परमाणु की पर्याय का व्यय सत् है। व्यय का ही आलम्बन लेता है ह्न ऐसा कहना निश्चय और निरपेक्ष है, किन्तु आगे की पर्याय के उत्पाद के कारण और ध्रुव के कारण वर्तमान पर्याय का व्यय

हुआ ह्व ऐसा कहना, वह व्यवहार और आरोपित अंतरंग साधन है तथा बाह्य पदार्थ वे आरोपित बाह्य साधन हैं।

प्रत्येक आत्मा और परमाणु में ध्रुव सत् है। ध्रुव, ध्रुव का ही अवलम्बन लेता है ह्व ऐसा कहना निश्चय और निरपेक्ष है। उत्पाद-व्यय के कारण ध्रुव है ह्व ऐसा कहना व्यवहार और आरोपित अंतरंग साधन है तथा बाह्य पदार्थ आरोपित बाह्य साधन है।

राग, राग के उत्पाद के कारण है; किन्तु पूर्व की राग पर्याय के व्यय के कारण अथवा ध्रुव आत्मा के कारण नहीं तथा स्त्री-कुटुम्ब के कारण भी नहीं है। फिर भी आत्मा से ह्व ध्रुव से राग हुआ ह्व ऐसा कहना अंतरंग आरोपित साधन है और स्त्री-कुटुम्ब आदि राग में बाह्य आरोपित साधन है।

पर्यायें अथवा अंश निरपेक्ष हैं ह्व ऐसा सिद्ध करके वस्तु के अंशों को व्यवहार कहा है। यह ज्ञायकवाद अथवा केवलज्ञानवाद है, इसप्रकार यह वस्तु स्वभाववाद सिद्ध किया है।

रोटी के परमाणु आत्मा के निकट क्षेत्र में आये तो इन परमाणुओं का दूसरी जगह से हटकर पेट में आने का उत्पाद है ह्व ऐसा कहना निश्चय है। परमाणु की पूर्व अवस्था का व्यय और ध्रुव परमाणु ये अंतरंग आरोपित कारण हैं और आत्मा की इच्छा तथा हाथ आदि बहिरंग आरोपित कारण है।

प्रश्न :ह्व सादृश्य में से विसादृश्य कैसे उत्पन्न होगा? अर्थात् ध्रुव सादृश्य है और उत्पाद-व्यय विसादृश्य हैं; अतः ध्रुव में से उत्पाद किस तरह होगा?

समाधान :ह्व जब अभेद विवक्षा की जाती है, तब ऐसा है कि उत्पाद ध्रुव में से आता है। जो प्रगट है, वह तो उत्पादरूप है; किन्तु भविष्य की पर्यायें कहाँ से आती हैं और कहाँ समा जाती हैं? तो कहा कि वे ध्रुव द्रव्य में से आती हैं और उसी में जाती हैं। जब त्रिकाली ध्रुव को बताना हो, तब ऐसा कथन है; निरपेक्ष कथन में तीनों अंश सत् हैं, वहाँ सादृश्य में से

विसादृश्य आता है ह्व ऐसा कथन लागू नहीं पड़ता। जो वर्तमान है, सत् है, उसे सादृश्य और विसादृश्य लागू पड़ता ही नहीं।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों सत् हैं। प्रत्येक समय है, है और है; इसीलिये 'है' (अस्ति) को सादृश्यता और विसादृश्यता लागू नहीं पड़ती। तीनों में एक-दूसरे की अपेक्षा से सादृश्यता और विसादृश्यता लागू पड़ती है। ध्रुव अंश ऐसे का ऐसा है, इसीलिये सादृश्य कहलाता है और उत्पाद-व्यय उत्पन्न होता है और व्यय होता है; इसीलिए विसादृश्य कहलाता है। इसीतरह पहले समय की पर्याय को दूसरे समय की पर्याय की तारतम्यता की अपेक्षा से भी एक पर्याय से दूसरी पर्याय को विसादृश्य कहा जाता है।

उत्पादस्वभाव और ध्रुवस्वभाव में विरोध है ह्व व्ययस्वभाव और ध्रुवस्वभाव में विरोध है; इसलिए इनमें विसादृश्यता है। ध्रुवस्वभाव और उत्पाद-व्यय स्वभाव में विरोध है। इसीतरह एक समय की अवस्था और दूसरे समय की अवस्था में तारतम्यता है, इसीलिये वह विसादृश्य है; तीनों अंश निरपेक्ष हैं। जो है, उसे कोई अपेक्षा लागू नहीं है, निरपेक्ष सिद्ध अकेली पर्याय में अपेक्षा लगायें तो सत् नहीं रहता।

रामपात्र के जन्म में निश्चय कारण वह स्वयं ही है; मिट्टी उसका अंतरंग आरोपित साधन है और कुम्हार बहिरंग आरोपित कारण कहा जाता है।

सम्यग्दर्शन के उत्पाद का निश्चय कारण वह स्वयं ही है। उसमें ध्रुव आत्मा-अंतरंग आरोपित साधन है और कर्म का उपशम आदि उसके बहिरंग आरोपित साधन हैं।

वास्तव में तीनों ही अंश सत् हैं, तीनों ही निरपेक्ष हैं। निरपेक्ष समझने पर ही सापेक्ष यथार्थ समझ में आता है और निरपेक्ष साधन समझने पर ही आरोपित साधन समझ में आता है।

उत्पाद तथा ध्रुव के कारण व्यय नहीं है, ध्रुव तथा व्यय के कारण उत्पाद नहीं है और उत्पाद तथा व्यय के कारण ध्रुव नहीं है ह्व इसप्रकार तीनों सत् एक ही समय में स्वयं अपने से स्वतंत्र हैं ह्व ऐसा समझना चाहिए।

शंका :ह्न एक समय में अमुक प्रकार के राग का व्यय होता है और दूसरे समय में दूसरे राग का व्यय होता है ह्न इसका क्या कारण है?

समाधान :ह्न वह स्वयं उसका कारण है, अन्य कोई कारण नहीं है। उस समय का व्यय सत् ही उसका कारण है।

शंका :ह्न सिद्ध भगवंत में सादि अनंतकाल समय-समय केवलज्ञान की अवस्था का उत्पाद होता है, इसीलिये सिद्ध के ध्रुव में कुछ घट (कम हो) जाता होगा? और नित्य निगोद के जीव की अनादिकाल से समय-समय मति-श्रुतज्ञान की कम से कम दशा का उत्पाद होता है, इसीलिये निगोद का ध्रुव सिद्ध के ध्रुव की अपेक्षा कुछ अधिक होगा?

समाधान :ह्न नहीं! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य का ध्रुवस्वभाव समान है। उत्पाद अधिक हुआ अथवा कम हुआ, वह तो उत्पाद के उस समय के सत् में जाता है, उसका ध्रुव के साथ सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान के उत्पाद की हीनाधिकता के कारण ध्रुव में हीनाधिकता नहीं होती। ध्रुव तो अनादि-अनंत एक ही समान सभी में रहता है। उत्पाद का कारण ध्रुव को कहना तो व्यवहार है, निश्चय नहीं; इसीलिये उत्पाद जो कि विद्यमान पदार्थ है, ध्रुव तथा व्यय उसके वे अपने से आरोपित अंतरंग साधन हैं।

निमित्त कारण उनकी योग्यता से क्षेत्रांतर होकर आते हैं, वे स्वयं क्षेत्रांतर होने की पर्याय के काल में उपस्थित होते हैं, किन्तु पराधीन होकर नहीं आते, नैमित्तिक पर्याय का स्वकाल होता है, तब निमित्त की उपस्थिति होती है ह्न ऐसा यहाँ ज्ञान कराया है।

आत्मा में होनेवाली एक समय की पर्याय के उत्पाद का निश्चय कारण ध्रुव आत्मा नहीं है, अपितु वह ध्रुव आत्मा आरोपित अंतरंग कारण है तो फिर बाहर के पदार्थों के कारण अर्थात् निमित्तों के कारण राग हुआ अथवा सम्यक्त्व हुआ अथवा निमित्त को आना पड़ा ह्न ऐसी मान्यता तो स्थूल अज्ञान है।

देखो! यह ज्ञेयतत्त्व-अधिकार है। इसमें यहाँ एक-एक अंश निरपेक्ष-अनारोपित सत् है ह्न ऐसा ज्ञान कराकर अखण्ड आत्मा स्वतंत्र है ह्न ऐसी

श्रद्धा कराते हैं। इसमें ज्ञानप्रधान कथन से सम्यग्दर्शन का अधिकार है।

मिट्टी में से रामपात्र होने का जो काल है, वही मिट्टी के पिण्ड के नाश का काल है और वही मिट्टीपने की स्थिति का काल है। मिट्टी में से रामपात्र हुआ, उसमें मिट्टी की पूर्व अवस्था का व्यय और ध्रुव मिट्टीपना अंतरंग साधन है और कुम्हार, चक्र आदि बहिरंग साधन हैं।

सम्यग्दर्शन के उत्पाद का निश्चय कारण उत्पाद स्वयं है, मिथ्यात्व के व्यय में आत्मा का ध्रुवपना अंतरंग आरोपित साधन है और देव-गुरु-शास्त्र बहिरंग आरोपित साधन हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव ह्न ये तीनों अंश स्वतंत्र अपने कारण से हैं और एक अंश में दूसरे अंशों के निमित्त होने की योग्यता है। निमित्त होने की योग्यता अन्य दो अंशों में है। यथा :ह्न उत्पाद को निमित्त होने की योग्यता व्यय तथा ध्रुव में है। व्यय को निमित्त होने की योग्यता उत्पाद तथा ध्रुव में है। ध्रुव को निमित्त होने की योग्यता उत्पाद तथा व्यय में है।

पर्याय की उत्पत्ति का काल, अंतरंग में व्यय और ध्रुव को निमित्त होने की योग्यता का काल और बाहर के संयोग को निमित्त होने का काल एक ही है, पृथक्-पृथक् नहीं। एक समय में भाग नहीं होते, किन्तु एक समय में तीनों ही अंश साथ में वर्तते हैं।

बाह्य निमित्त भी अनेक प्रकार के होते हैं; आत्मा के परिणमन में काल द्रव्य बाह्य निमित्त है; सम्यक्श्रद्धा में देव-गुरु-शास्त्र, कर्म के क्षयादि बाह्य निमित्त हैं; बाह्य निमित्त एक से लेकर अधिक भी होते हैं।

उत्पाद, उत्पाद के काल में है; व्यय, व्यय के काल में है और ध्रुव, ध्रुव के काल में है, किन्तु उलटे-सीधे नहीं होते। वे विद्यमान पदार्थ हैं; जब ये होते हैं, तब वस्तु के अंश एक-दूसरे को निमित्तरूप होते हैं और वहाँ बाह्य पदार्थ भी उपस्थित होते हैं।

जो हैं, उसमें 'न हो तो?' यह प्रश्न ही नहीं होता। अतः देव-गुरु-शास्त्र नहीं हो तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा ह्न यह प्रश्न ही नहीं है; अथवा जो जीव निमित्त कारण को मानता ही नहीं, उसे यथार्थ निमित्त का ज्ञान

कराने के लिए कहा जाता है कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है, किन्तु यहाँ तो उपादान सत् सिद्ध करना है; अतः यहाँ निमित्त न हो तो कार्य न हो, यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। उत्पादरूप पर्याय के काल में अंतरंग में ध्रुव तथा पूर्व पर्याय का व्यय निमित्त है और बाह्य निमित्त देव-गुरु-शास्त्र हैं। यहाँ तो विद्यमान पदार्थों के अस्तित्व का ज्ञान कराया है।

जब ज्ञान का उत्पाद काल है, तब ध्रुव आत्मा और पूर्व पर्याय का व्यय है। यहाँ एक ही समय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव की बात है, किन्तु एक समय पूर्व के व्ययों की अथवा त्रिकाली ध्रुव की बात नहीं, अपितु एक समय में अनंत गुणों का ध्रुव तथा समुच्चय सम्पूर्ण द्रव्य का वर्तमान ध्रुव, उस एक समय की बात है और व्यय में भी पूर्व समय की अवस्था के व्यय की बात है, किन्तु उससे पहले के व्यय की बात नहीं है। तीनों (उत्पाद-व्यय-ध्रुव) एक समय में साथ ही वर्त रहे हैं।

यह ज्ञेय-अधिकार है, अपनी वर्तमान पर्याय का उत्पाद स्वज्ञेय है, तब व्यय और ध्रुव अंतरंग साधनरूप स्वज्ञेय हैं और परपदार्थ अर्थात् बाह्य साधन-परज्ञेय हैं।

अब ध्रुव को एक समय का कहने का आशय स्पष्ट करते हैं :ह्न

जब समस्त पर्यायों की व्यक्तता को समझाना हो, तब ध्रुव को त्रिकाली कहने में आता है और भविष्य की पर्यायें किसके आधार से होती हैं और भूत की पर्यायें व्यय होकर कहाँ समाती हैं ह्न यह बताना हो, तब त्रिकाली ध्रुव के आधार से उत्पाद होता है और पर्यायें व्यय होकर ध्रुव में समाती हैं ह्न ऐसा कहा जाता है। अनन्त उत्पाद होने की ताकत तो एक ध्रुव में समाती है ह्न ऐसा कहा जाता है। अनन्त उत्पाद होने की ताकत तो एक ध्रुव में ही है, यह बताने के लिए त्रिकाली ध्रुव कहा जाता है; किन्तु जो त्रिकाली ध्रुव है, वह वर्तमान में वर्तता है, किन्तु कोई भी ध्रुव भूत अथवा भविष्य में नहीं वर्तता, अपितु जब-जब वर्तता है, तब वर्तमान में वर्तता है; इसीलिये एक समय का ध्रुव है ह्न ऐसा कहा है।

एक-एक गुण का ध्रुव स्वतंत्र है और ऐसे अनंत गुणों का ध्रुव एक द्रव्य का ध्रुव है। जब एक गुण की बात चलती हो, तब एक गुण के ध्रुव की बात समझना और जब सम्पूर्ण द्रव्य की बात चलती हो, तब सम्पूर्ण द्रव्य अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड समझना।

अँगुली टेढ़ी होने में उसके सीधेपने का व्यय और अंगुली के परमाणु का ध्रुवत्व अंतरंग साधन है और जीव की इच्छा बहिरंग साधन है। इसीतरह केवली भगवान के शरीर के गति करने रूप उत्पाद का निश्चय कारण उत्पाद स्वयं है और स्थिर रहने की पूर्व पर्याय का व्यय और शरीर के परमाणु का ध्रुवत्व अंतरंग निमित्त है तथा आत्मा के योग का कम्पन और धर्मास्तिकाय आदि बहिरंग साधन (निमित्त) है।

प्रत्येक अंश निरपेक्ष वस्तु है; उसे अन्य अंश के लक्षणों से पहिचानना व्यवहार है।

नई अवस्था का उत्पन्न होना उत्पाद का लक्षण है, पूर्व अवस्था का नाश होना व्यय का लक्षण है और वस्तु का टिके रहना ध्रुव का लक्षण है; तीनों अंशों के लक्षण पृथक् हैं।

जो उत्पाद का लक्षण है, वह व्यय तथा ध्रुव का लक्षण नहीं है।

जो व्यय का लक्षण है, वह उत्पाद तथा ध्रुव का लक्षण नहीं है।

जो ध्रुव का लक्षण है, वह उत्पाद तथा व्यय का लक्षण नहीं है।

लक्षण पृथक्-पृथक् हैं, इसीलिए लक्ष्य भी पृथक्-पृथक् हैं। यदि तीनों का एक लक्षण हो तो तीनों एक हो जायेंगे, किन्तु ऐसा नहीं है। एक लक्षणवाले को दूसरे के लक्षण से पहिचानना उपचार कथन है।

तीनों अंश पृथक्-पृथक् लक्षणवाले हैं, फिर भी पर्याय के अथवा समय के अंश नहीं होते। उनमें एक-दूसरे को निमित्त होने की योग्यता भी है; यदि निमित्त होने की योग्यता न हो तो वैसा आरोप भी नहीं आ सकता। यहाँ संस्कार का अर्थ प्रभाव नहीं समझना, अपितु निमित्त होने की योग्यता शक्ति अर्थात् संस्कार की उपस्थिति ह्न ऐसा समझना चाहिए।

जैसे एक गुण की पर्याय के उत्पाद को उसके व्यय तथा ध्रुव अंतरंग

निमित्त कहलाते हैं, वैसे ही एक गुण की पर्याय को दूसरे गुण की पर्याय भी अंतरंग निमित्त कारण कहलाती है, यह भी यथायोग्य समझना चाहिए।

जब सम्यग्दर्शन की उत्पादरूप पर्याय में ध्रुव और व्यय का भी संस्कार अथवा प्रभाव नहीं पड़ता तो फिर बाह्य देव-गुरु-शास्त्र का प्रभाव तथा संस्कार का प्रभाव सम्यक्त्व की पर्याय में पड़ता है ह्न ऐसा मानना तो स्थूल अज्ञान है।

जो-जो भी पदार्थ विद्यमान हैं, यहाँ उनका ज्ञान कराते हैं।

(१) आरोपित शक्ति होती ही नहीं है ह्न यदि कोई ऐसा माने तो वह निमित्त को यथायोग्य नहीं मानता तथा

(२) आरोपित शक्ति उपादान में संस्कार देती है ह्न ऐसा माने तो वह उपादान की स्वतंत्रता को नहीं मानता।

जैसे रामपात्र में मिट्टी के पिण्ड में और मिट्टीपने में उत्पाद, व्यय और ध्रुव प्रत्येक (ही) स्वतंत्र होने पर भी त्रिस्वभाव स्पर्शी द्रव्य में ये तीनों एक साथ, एक समय में ही दिखाई देते हैं; इसीतरह उत्तर पर्याय में, पूर्व पर्याय में और ध्रुवत्व में उत्पाद, व्यय और ध्रुव मिट्टी ही है, अन्य वस्तु नहीं; इसीतरह उत्तर पर्याय, पूर्व पर्याय और द्रव्यत्व में वर्तन करनेवाले उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य द्रव्य ही है, अन्य पदार्थ नहीं।

इसमें से दो न्याय निकलते हैं ह्न

१. उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व का क्षणभेद दूर किया है अर्थात् तीनों का एक ही समय है।

२. तीनों एक होकर एक द्रव्य हैं, अन्य द्रव्य नहीं।

उत्पाद स्वभाव, व्यय स्वभाव, ध्रुव स्वभाव ह्न तीनों पृथक्-पृथक् स्वभाव स्वतंत्र हैं, पर के कारण नहीं। इसीतरह एक स्वभाव दूसरे स्वभाव से नहीं है तथा सभी एक ही समय में हैं, उनमें समयभेद नहीं है। तीनों स्वभाव पृथक्-पृथक् होने पर भी तीनों होकर एक द्रव्य है।

सिद्ध पर्याय का उत्पाद, संसार पर्याय का नाश और अनंत सामर्थ्य वाला ध्रुव अंश ह्न तीनों एक-एक वर्तते हैं। तीनों पृथक्-पृथक् होने पर भी तीनों होकर एक द्रव्य है।

इस गाथा में द्रव्य शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है :ह्न

तीनों अंशों में जो ध्रुव अंश है, उस सामान्य अंश को भी द्रव्य कहा गया है और तीनों अंशों को मिलाकर द्रव्य कहना हो, तब ध्रुव वह सामान्य और उत्पाद-व्यय वह विशेष ह्न ऐसा सामान्य-विशेष के समुदाय को भी द्रव्य कहा गया है; अतः जहाँ जो अर्थ घटित हो, वह लगाना चाहिए।

ज्ञान की पर्याय का उत्पाद विद्यमान पदार्थ है, वह वस्तु स्वयं है; किन्तु पूर्व के संस्कार के कारण अथवा वाणी के कारण वह उत्पाद नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ का वर्तमान काल वर्तता है, किन्तु किसी का भी भूत-भविष्य काल वर्तमान में नहीं वर्तता। पूर्व पर्याय वह वर्तमान नहीं, किन्तु पूर्व पर्याय का व्यय, वह वर्तमान है। उत्पादादि तीनों के लक्षण पृथक्-पृथक् होने पर भी तीनों एक-दूसरे का निमित्त हैं।

व्यय स्वयं सत् है; यहाँ पूर्व पर्याय की बात नहीं, अपितु पूर्व पर्याय के व्यय की बात है। व्यय कोई खरगोश के सींग की तरह तुच्छ अभावरूप नहीं है। यहाँ एक ही समय के पहले की पर्याय के व्यय की बात चलती है, किन्तु इससे पहले की पर्याय के व्यय की बात नहीं है; यदि उससे पहले की पर्याय के व्यय की बात लोगे तो एक समय का ध्रुव नहीं रहेगा। अतः यहाँ एक समय पूर्व की पर्याय के व्यय की बात है।

इसीप्रकार यहाँ एक समय के उत्पाद की बात है और सम्पूर्ण अंश के सिवाय जो ध्रुव है, वह ध्रुव तीसरा अंश है। इसप्रकार तीनों अंश वर्तमान में वर्त रहे हैं ह्न सत् हैं। इसप्रकार तीनों होकर के एक द्रव्य है।

प्रश्न :ह्न व्यय में तो अपेक्षा रहती है न?

उत्तर :ह्न नहीं; क्योंकि व्यय भी निरपेक्ष सत् है। व्यय के काल में तो पूर्व पर्याय का अभाव है; इसीलिये व्यय भी निरपेक्ष है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों ही निरपेक्ष हैं। इसप्रकार :ह्न

(१) तीनों के स्वभाव पृथक्-पृथक् हैं, किन्तु तीनों के तीन समय नहीं हैं, अपितु एक ही समय है, पृथक्-पृथक् समय नहीं है।

(२) तीनों के स्वभाव पृथक्-पृथक् होने पर भी तीन के तीन द्रव्य नहीं, अपितु तीनों होकर के एक द्रव्य है। प्रत्येक अंश पृथक् स्वभावस्पर्शी है अर्थात् तीन स्वभाव हैं, किन्तु तीनों एक स्वभावी नहीं हैं।

(३) जो उत्पाद स्वभावी उत्पाद है, वह उत्पाद ही है, व्यय स्वभावी व्यय है, वह व्यय ही है और ध्रुव स्वभावी ध्रुव, वह ध्रुव ही है।

(४) सभी द्रव्य त्रिस्वभावस्पर्शी हैं। त्रिस्वभावस्पर्शी होकर सम्पूर्ण द्रव्य एक है, किन्तु त्रिस्वभावस्पर्शी होकर तीन द्रव्य नहीं हैं।

उत्पत्ति स्वभाव वह प्रगट भाव है, व्यय स्वभाव वह अभाव भाव है और जो सदृश्यता का अंश दिखाई देता है, वह ध्रुव स्वभाव है। प्रत्येक के स्वभाव और लक्षण पृथक्-पृथक् हैं और तीन स्वभावी एक द्रव्य हैं।

तीन स्वभावी एक द्रव्य है, वह तीन नहीं है और तीन स्वभावी एक द्रव्य हैं जो अन्य-अन्य नहीं, वही द्रव्य है। ये तीनों अंश हैं, वे तीन स्वभाव हैं, किन्तु एक स्वभाव नहीं। द्रव्य में ये तीन स्वभाव होने पर भी तीनों होकर के एक द्रव्य है, अन्य नहीं।

छहों द्रव्यों में वीर्य है, इसी तरह प्रत्येक पर्याय में वीर्य है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव में भी वीर्य है।

उत्पाद के वीर्य में व्यय और ध्रुव का वीर्य निमित्त है।

व्यय के वीर्य में व्यय और उत्पाद का वीर्य निमित्त है।

ध्रुव के वीर्य में व्यय और उत्पाद का वीर्य निमित्त है।

इसप्रकार इस गाथा में एक अंश को अन्य दो अंशों में अंतरंग निमित्त कहा है। उन दो अंशों को बाह्य पदार्थों से पृथक् करने के लिए अंतरंग निमित्त कहा है तो भी प्रत्येक अंश की अपेक्षा से अन्य अंश बाह्य ही है।

ऐसी सूक्ष्म बात वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य जगह व्यवहार से भी नहीं मिलती, इसीलिये निरपेक्ष वस्तु का रहस्य वस्तुस्वरूप जैसा है, वैसा अपने ज्ञान में समझना चाहिए। ●

प्रवचनसार गाथा १०३

अब, द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को [1]अनेकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं :ह्र

पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो।
दव्वस्स तं पि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं॥१०३॥

(हरिगीत)

उत्पन्न होती अन्य एवं नष्ट होती अन्य ही।
पर्याय किन्तु द्रव्य ना उत्पन्न हो ना नष्ट हो॥१०३॥

अन्वयार्थ :ह्र [द्रव्यस्य] द्रव्य की [अन्यः पर्यायः] अन्य पर्याय [प्रादुर्भवति] उत्पन्न होती है [च] और [अन्यः पर्यायः] कोई अन्य पर्याय [व्येति] नष्ट होती है; [तदपि] फिर भी [द्रव्यं] द्रव्य [प्रणष्टं न एव] न तो नष्ट है, [उत्पन्नं न] न उत्पन्न है (वह ध्रुव है।)

टीका :ह्र यहाँ (विश्व में) जैसे एक त्रि-अणुक समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी [2]चतुरणुक (समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है; परन्तु वे तीन या चार पुद्‌गल (परमाणु) तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं (ध्रुव हैं); इसीप्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती हैं और उत्पन्न होती हैं, किन्तु समानजातीय [3]द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं।

इसप्रकार अपने से (द्रव्यरूप से) ध्रुव और द्रव्यपर्यायों द्वारा उत्पाद-व्ययरूप ऐसे द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं।

---

१. अनेकद्रव्यपर्याय = एक से अधिक द्रव्यों के संयोग से होनेवाली पर्याय।
२. चतुरणुक = चार अणुओं का (परमाणुओं का) बना हुआ स्कंध।
३. 'द्रव्य' शब्द मुख्यतया दो अर्थों में प्रयुक्त होता है; (१) एक तो सामान्य ह्र विशेष के पिण्ड को अर्थात् वस्तु को द्रव्य कहा जाता है; जैसे ह्र द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; (२) दूसरे ह्र वस्तु के सामान्य अंश को भी द्रव्य कहा जाता है; जैसे द्रव्यार्थिक नय अर्थात् सामान्यांशग्राही नय। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना चाहिए।

गाथा १०३ पर प्रवचन

गाथा १०२ में कहा था कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन स्वभावी पर्यायें तीन हैं, किन्तु तीन स्वभावी द्रव्य एक है। मिथ्यात्व का नाश, सम्यक्त्व का उत्पाद और ध्रुव का ध्रुवत्व (टिका रहना) ह्न ये तीनों स्वभाव पृथक्-पृथक् हैं। प्रत्येक द्रव्य तीन स्वभावी हैं, किन्तु त्रिस्वभावी द्रव्य तीन नहीं, अपितु एक है।

जो उत्पाद स्वभाव है, वह पर से तो नहीं, किन्तु पहले समय के उत्पाद के कारण दूसरे समय का उत्पाद भी नहीं है; इसीतरह वह आगे-पीछे भी नहीं होता अर्थात् जिस समय जो उत्पाद होनेवाला होता है, वह उसी समय होता है, किन्तु उल्टा-सीधा आगे-पीछे नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान को सूक्ष्म और स्वतंत्र करे तो उसने आत्मा का योग किया ह्न ऐसा कहा जाता है। ऐसे भान बिना आत्मयोगी नहीं हो सकता। ऐसी प्रतीति और ज्ञान करना शान्ति और धर्म का कारण है।

शंका :- संयोगी वस्तु है, इसीलिये संयोग में से पर्याय आती है। लड्डू का चूरा (पूर्व अवस्था) था, उसमें से लड्डू हुआ है। चलो! पर के कारण नहीं, किन्तु पूर्व संयोगी अवस्था थी, उसमें से तो नई संयोगी अवस्था होती है न?

समाधान :ह्न नहीं। यह बात असत्य है; क्योंकि प्रत्येक अवस्था द्रव्य में से आती है, किन्तु पूर्व की पर्याय में से नई पर्याय नहीं आती, अपितु द्रव्य में से नई अवस्था आती है; इस विषय को गाथा १०२ में विशेष रूप से स्पष्ट किया है।

जो एक तीन रजकण का बना हुआ स्कंध है, वह पुद्‌गल ह्न पुद्‌गल का बन्ध होने से उसे समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय कहा जाता है। जब तीन रजकण के साथ में दूसरा कोई एक रजकण आए, तब तीन परमाणु के स्कंध की अवस्था का व्यय होता है, चार परमाणु की अवस्था का उत्पाद होता है और परमाणु ध्रुव रहते हैं।

प्रश्न :ह्न क्या पर्याय में से पर्याय होती है?

उत्तर :ह्न नहीं! यहाँ कोई तर्क करता है कि पहले दस परमाणु का स्कंध था; फिर उसमें पाँच परमाणु मिले तो वह पन्द्रह परमाणुओं का स्कंध हुआ; इसीलिए पर्याय में से पर्याय हुई है। उसकी यह बात असत्य है; क्योंकि दस परमाणुओं की पूर्व की स्कंधरूप अवस्था का व्यय हुआ है, पाँच परमाणुओं के मिलने पर पन्द्रह परमाणुओं की नयी स्कंधरूप अवस्था का उत्पाद हुआ और परमाणु द्रव्य में से नयी पर्याय आई है, किन्तु पूर्व की पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आई है।''

कर्म के रजकण जो कार्माण वर्गणारूप थे, उनकी उस अवस्था का व्यय हुआ, नई कर्मरूप अवस्था का उत्पाद हुआ और परमाणु ध्रुव रहे। आत्मा के राग के कारण कर्म के स्कंधों को मिलना पड़ा ह्न यह बात तो है ही नहीं, किन्तु पूर्व के कर्म थे; इसलिए नये कर्म बँधे और वे मिले ह्न ऐसा भी नहीं है।

पहले आटे की बिखरी हुई अवस्था थी, फिर उसमें पानी डाला और पिण्डरूप अवस्था हुई; इसमें पूर्व अवस्था का व्यय हुआ, नई अवस्था का उत्पाद हुआ और परमाणु ध्रुव रहे। इसमें राँधनेवाली बाई (महिला) ने उसकी अवस्था को नहीं बदला है। इसीतरह पानी के कारण भी अवस्था नहीं बदली तथा पहले आटे की अवस्था थी; इसीलिए उस अवस्था में से पिण्डरूप अवस्था हुई है ह्न ऐसा भी नहीं है।

ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख की अपूर्ण पर्याय का व्यय और केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख ह्न इस तरह अनंत चतुष्टय का उत्पाद तथा आत्मा ध्रुव ह्न इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों स्वतंत्र हैं। अनंत चतुष्टय का उत्पाद कर्म के हटने के कारण तो नहीं हुआ है, किन्तु वह अपूर्ण निर्मल पर्याय के कारण भी नहीं हुआ है ह्न ऐसा सभी स्कंधों में समझना चाहिए।

संयोगी पर्यायों में किसी अन्य ने (किसी में) कुछ भी नहीं किया है, इसकी पूर्व पर्याय रही नहीं (व्यय हो गई) और पर्याय में से पर्याय नहीं आती। इसके अपने पूर्व पर्यायरूप अंश में से नये पर्यायरूप अंश नहीं

आते तो फिर दूसरे पदार्थ के अंश के कारण इस वस्तु के अंश आयें और प्रगट हों ह्न यह बात तो बिलकुल ही असत्य है।

इसप्रकार कार्माणवर्गणा, तैजसवर्गणा, औदारिक शरीर के स्कंध, भाषा के स्कंध, इसी तरह महास्कंध को भी किसी ने बनाया नहीं है। कोई भी जीव स्कंध को पलट नहीं सकता तथा पूर्व की अवस्था में से नया स्कंध नहीं होता।

एक पचास परमाणु का दो गुण चिकास (स्निग्धता) वाला स्कंध है, वह चार गुण चिकासवाले परमाणु के स्कंध में मिला तो वहाँ सभी परमाणुओं की चार गुण चिकासवाली अवस्था हुई।

प्रश्न :ह्न क्या दूसरे चार गुण स्निग्धता (चिकास) वाले परमाणु पहले दो गुण स्निग्धतावाले परमाणु को बदलते हैं? तथा दूसरे चार गुण स्निग्धतावाले जो परमाणु हैं, वे वैसे के वैसे रहते हैं?

उत्तर :ह्न वास्तव में कोई किसी को बदलता नहीं है; इसी तरह दूसरे जो चार गुण स्निग्धतावाले परमाणु आये हैं, वे पूर्व की चार गुण स्निग्धतावाली पर्यायरूप नहीं रहे हैं। जो पहले दो गुण स्निग्धतावाले का व्यय और उनका चार गुणरूप उत्पाद हुआ है, वह चार गुणवाले परमाणुओं के आने से नहीं हुआ है तथा चार गुणवाले परमाणुओं में भी पूर्व की चार गुणवाली पर्याय नहीं रही, अपितु वह पर्याय बदलकर नई चार गुणवाली पर्याय हो गई है। स्कंध के अंदर की पर्यायें भी एक-दूसरे को मदद नहीं करतीं तो फिर आत्मा की इच्छा के कारण परमाणु बदल गये ह्न ऐसा कहना तो बहुत ही स्थूल अज्ञान की बात है।

तथा एक मनुष्य पर्याय ह्न असमानजातीय द्रव्य पर्याय नाश होती है और दूसरी असमानजातीय देव पर्याय उत्पन्न होती है, परन्तु उसमें जीव और पुद्‌गल तो ध्रुव रहते हैं।

यहाँ कुंदकुंदाचार्य भगवान को मुनि का देह है, आत्मा का भान है, वे देव होनेवाले हैं; इसीलिये उन्होंने देव की बात कही है।

मनुष्य शरीर की अवस्था का व्यय होता है, देव के शरीर का उत्पाद

होता है और परमाणु ध्रुव रहते हैं। मनुष्यरूप आत्मा की अवस्था का व्यय होता है, देवरूप आत्मा का उत्पाद होता है और जीव ध्रुव रहता है। इसमें :ह्न

ह्न जीव ने मनुष्य शरीर का व्यय नहीं किया है, अपितु उसके नाश के काल में उसका नाश हुआ है।

ह्न कर्म का व्यय हुआ, इसलिये शरीर नहीं बदलता; अपितु वह उसके बदलने के समय में बदलता है।

ह्न शरीर और आत्मा एक क्षेत्र में मिले हैं, किन्तु फिर भी कोई किसी के कारण नहीं बदलते।

प्रश्न :ह्न कर्म का अभाव हो, तभी सिद्धगति होती है न?

उत्तर :ह्न सिद्धगति का उत्पाद कर्म के अभाव के कारण तो नहीं हुआ, किन्तु अपनी पूर्व अवस्था के कारण भी वह नहीं हुआ है।

यहाँ कोई तर्क करता है कि यदि जीव नहीं होता तो किसका उत्पाद होता? और परमाणु नहीं होता तो शरीर का उत्पाद किस तरह होता? तो उससे कहते हैं कि यह नहीं होता तो? ह्न ऐसा प्रश्न ही नहीं रहता (क्योंकि वह है)।

असमानजातीय द्रव्यपर्यायों में एकेन्द्रिय-निगोद से लेकर सर्वार्थसिद्धि के देवों के आत्मा तथा शरीर में पूर्व अवस्था का व्यय होता है, नई अवस्था का उत्पाद होता है और जीव व परमाणु ध्रुव रहते हैं।

जीव के साथ शरीर एक क्षेत्रावगाह रहता है, इसीलिये अज्ञान हुआ है अथवा वे एक-दूसरे में कुछ कर देते होंगे? ह्न ऐसा नहीं है; अपितु अपने अज्ञान के कारण अज्ञानी इसप्रकार की उल्टी (विपरीत) मान्यता करता है।

तीर्थंकरों के कारण तीन लोक में प्रकाश हो जाता है ह्न ऐसा जो कथन आता है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिए कहा है। वास्तव में तो प्रकाश की पर्याय का उत्पाद तो रजकणों के अपने कारण है, वहाँ तीर्थंकर निमित्त कहलाते हैं।

नरक की आयु बाँधी, इसीलिये कर्म उस असमानजातीय द्रव्यपर्याय

में जीव को खींच कर ले गया हो ह्र ऐसा नहीं है; क्योंकि सभी अपने-अपने कारण से क्षेत्रांतर करते हैं।

योगगुण के कम्पन के कारण जीव संसारदशा में जड़ कर्म को ग्रहण करता है ह्र ऐसा व्यवहार का कथन निमित्त बताने के लिए कहा जाता है, किन्तु आत्मा का योग गुण जड़ परमाणु को कभी भी ग्रहण नहीं करता; जड़ परमाणु तो स्वयं उनके अपने कारण आते हैं।

एक्सीडेंट के कारण आदमी नहीं मरते, पैट्रोल के अभाव होने के कारण मोटर बंद नहीं होती, दवा से रोग नहीं मिटता; क्योंकि प्रत्येक समानजातीय द्रव्यपर्यायों और असमानजातीय द्रव्यपर्यायों में द्रव्य तो ध्रुव है और वह पूर्व अवस्था से व्यय होता है और नई अवस्थारूप से उत्पन्न होता है ह्र इसप्रकार सभी द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वरूप हैं।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध यह बताता है कि दो पदार्थ पृथक्-पृथक् हैं। वे दोनों क्षेत्र में भिन्न-भिन्न काम कर रहे हैं ह्र ऐसा जानना निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का सही ज्ञान है, किन्तु निमित्त से कार्य हुआ है ह्र ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ नहीं है।

निगोद के एक शरीर में अनंत जीवों के कार्माण और तैजस शरीर होते हैं, ऐसा होने पर भी सभी की अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार प्रत्येक के कार्माण शरीर सभी जीवों को अपने-अपने निमित्त होते हैं, किन्तु किसी में किसी की मिलावट नहीं होती।

इसतरह समानजातीय अथवा असमानजातीय द्रव्यपर्यायें हैं। पूर्व पर्याय से नई पर्यायें नहीं होतीं, अपितु द्रव्य से होती हैं ह्र ऐसा यथार्थ ज्ञान करना धर्म का कारण है। ●

प्रवचनसार, गाथा १०४

अब, द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं:ह्र

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं।
तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेव त्ति॥१०४॥

(हरिगीत)

गुण से गुणान्तर परिणमें द्रव्य स्वयं सत्ता अपेक्षा।
इसलिए गुणपर्याय ही हैं द्रव्य जिनवर ने कहा॥१०४॥

अन्वयार्थ :ह्र [सदविशिष्टं] सत्तापेक्षा से अविशिष्टरूप से [द्रव्यं स्वयं] द्रव्य स्वयं ही [गुणतः च गुणान्तरं] गुण से गुणान्तररूप [परिणमते] परिणमित होता है, (अर्थात् द्रव्य स्वयं ही एक गुणपर्याय में से अन्य गुणपर्यायरूप परिणमित होता है और उसकी सत्ता गुणपर्यायों की सत्ता के साथ अविशिष्ट-अभिन्न-एक ही रहती है) [तस्मात् पुनः] और उससे [गुणपर्यायाः] गुणपर्यायें [द्रव्यम् एव इति भणिताः] द्रव्य ही कही गई हैं।

टीका :ह्र गुणपर्यायें एकद्रव्यपर्यायें हैं; क्योंकि गुणपर्यायों को एक द्रव्यपना है, (अर्थात् गुणपर्यायें एकद्रव्य की पर्यायें हैं, क्योंकि वे एक ही द्रव्य हैं, भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं।) उनका एकद्रव्यत्व आम्रफल की भाँति है। जैसे ह्र आम्रफल स्वयं ही हरितभाव में से पीतभावरूप परिणमित होता हुआ, प्रथम और पश्चात् प्रवर्तमान हरितभाव और पीतभाव के द्वारा अपनी सत्ता का अनुभव करता है, इसलिये हरितभाव और पीतभाव के साथ [1]अविशिष्ट सत्तावाला होने से एक ही वस्तु है, अन्य वस्तु नहीं; इसीप्रकार द्रव्य स्वयं ही पूर्व अवस्था में अवस्थित गुणों में से उत्तर अवस्था में अवस्थित गुणरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर

१. अविशिष्ट सत्तावाला = अभिन्न सत्तावाला; एक सत्तावाला; (आम की सत्ता हरे और पीले भाव की सत्ता से अभिन्न है, इसलिये आम और हरितभाव तथा पीतभाव एक ही वस्तु हैं, भिन्न नहीं।)

अवस्था में अवस्थित उन गुणों के द्वारा अपनी सत्ता का अनुभव करता है, इसलिये पूर्व और उत्तर अवस्था में अवस्थित गुणों के साथ अविशिष्ट सत्तावाला होने से एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।

(आम के दृष्टान्त की भाँति, द्रव्य स्वयं ही गुण की पूर्व पर्याय में से उत्तरपर्यायरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के द्वारा अपने अस्तित्व का अनुभव करता है, इसलिये पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के साथ अभिन्न अस्तित्व होने से एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं; अर्थात् वे वे गुणपर्यायें और द्रव्य एक ही द्रव्यरूप हैं, भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं हैं।)

और, जैसे पीतभाव से उत्पन्न होता हरितभाव से नष्ट होता हुआ और आम्रफलरूप से स्थिर रहता होने से आम्रफल एक वस्तु की पर्यायों द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है, उसीप्रकार उत्तर अवस्था में अवस्थित गुण से उत्पन्न, पूर्व अवस्था में अवस्थित गुण से नष्ट और द्रव्यत्व गुण से स्थिर होने से, द्रव्य एकद्रव्यपर्याय के द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

भावार्थ :ह्न इससे पूर्व की गाथा में द्रव्यपर्याय के द्वारा (अनेक द्रव्यपर्यायों के द्वारा) द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये थे। इस गाथा में गुणपर्याय के द्वारा (एकद्रव्यपर्याय के द्वारा) द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये हैं।

गाथा १०४ पर प्रवचन

यहाँ कहते हैं कि द्रव्य स्वयं ही एक गुण-पर्याय में से अन्य गुण-पर्याय रूप परिणमित होता है और उसकी सत्ता गुण-पर्यायों की सत्ता के साथ अविशिष्ट ह्न अभिन्न, एक ही रहती है। ऐसा कभी नहीं होता कि गुण पृथक् परिणमित हो और द्रव्य पृथक् परिणमित हो। द्रव्य का परिणमन होने पर सभी गुणों का परिणमन होता है। जो गुणों की सत्ता है, वही द्रव्य की सत्ता है, किन्तु एक-एक गुण की भिन्न-भिन्न सत्ता है; इसीलिये द्रव्य भी उनसे भिन्न है ह्न ऐसा नहीं है।

''गुणपर्यायें एकद्रव्यपर्यायें हैं; क्योंकि गुणपर्यायों को एकद्रव्यपना है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अनेक गुणों की पर्यायें हैं; इसीलिए द्रव्य

पृथक्-पृथक् है ह्न ऐसा नहीं है। परमाणु की लाल, हरी आदि भिन्न-भिन्न वर्णवाली तथा भिन्न-भिन्न रसवाली अवस्था होती है; इसीलिए परमाणु अनेक हो जाते हैं ह्न ऐसा नहीं है; किन्तु लाल, हरी आदि अवस्थायें पदार्थ के ही अंश हैं; इसलिए वे अनेक द्रव्य नहीं होते।

एक आत्मा और परमाणु में अनन्त गुण हैं। द्रव्य पूर्व-उत्तर गुण अवस्थारूप से परिणमित होता हुआ उस अवस्था के साथ अभिन्न सत्ता के कारण एक ही है, किन्तु अनेक नहीं हो जाता। गुण-पर्यायों की सत्ता और द्रव्य की सत्ता पृथक् नहीं है।

साधक दशा में आत्मा की पर्यायों में ज्ञान कम हो, श्रद्धा पूर्ण हो, सम्यक् हो, वीर्य कम हो ह्न ऐसे अनेक प्रकार के गुणों की अनेक प्रकार की अवस्था हो तो भी द्रव्य की सत्ता एकरूप है।

शक्ति अनेक हैं, इसीलिए शक्तिमान अनेक नहीं होते। शक्तिमान एकरूप रहकर अनेकरूप परिणमित होता है।

प्रत्येक द्रव्य सत् है और अपने गुण की अवस्थारूप परिणमित होता है। द्रव्य स्वयं अपनी अवस्था को रखकर परिणमित होता है कोई अन्य द्रव्य नहीं। अनेक गुणों का परिणमित होना, वह द्रव्य का ही परिणमन है।

गाथा १०२ में उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वतंत्र बताया था। गाथा १०३ में समानजातीय अथवा असमानजातीय जो द्रव्यपर्यायें होती हैं, वे पूर्व की पर्याय के कारण नहीं होतीं; अपितु द्रव्य में से आती हैं ह्न ऐसा कहा था।

गुणों का परिणमन अनेकरूप होने पर भी द्रव्य एकरूप रहता है और वह परिणमन द्रव्य की ही अवस्था है ह्न यह गाथा १०४ में बताया गया है।

आम हरी अवस्था में से पीली अवस्थारूप होता है, उसमें वह अपनी सत्ता का ही अनुभव करता है; इसीलिए हरेपन और पीलेपन के साथ अभिन्न सत्तावाला द्रव्य एक ही वस्तु है, अन्य वस्तु नहीं।

पहले समय हरी अवस्था थी, वह दूसरे समय एकदम पीली कहाँ से आयी? अन्य सत्ता होगी? सत्ता बदले तो पीली हो ह्न ऐसा अज्ञानी को

भ्रम होता है, किन्तु सत्ता आम के साथ अभिन्न रहकर हरे में से पीली होती है। पहले घड़ा कच्चा था, फिर बाद में पक्का हुआ, तब परमाणु भी बदल गये ह्न ऐसा अज्ञानी जीव मानते हैं, किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है।

१. प्रत्येक पुद्‌गल में जितने भी गुणांश होते हैं, वे उतने ही रहते हैं उनमें घट-बढ़ नहीं होती। जैसे कि स्पर्श और गंध दो गुण हों तो उतने ही रहते हैं, उनमें घट-बढ़ नहीं होती ह्न ऐसा अज्ञानी मानते हैं।

२. कोई भी पुद्‌गल का रंग हरा हो तो अनन्त गुण हरा हो सके, किन्तु हरे में से काला नहीं होता अथवा काले में से हरा नहीं होता ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है।

३. गुणों की अवस्था बदलने पर पुद्‌गल द्रव्य अन्य हो जाता है ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है।

ऊपर की तीनों मान्यताएँ भ्रमपूर्ण हैं, क्योंकि द्रव्य अन्यरूप कभी नहीं होता, वह अपनी सत्ता रखकर अवस्था में फेर-फार करता है। पुद्‌गलों की रंग अवस्था एक समय हरी होती है और दूसरे समय पीली हो जाती है, वैसे ही स्पर्श-रस आदि में भी घट-बढ़ हुआ ही करती है।

जीव में श्रुतज्ञान की पर्याय का व्यय होकर केवलज्ञान होता है। अवधिदर्शन अथवा चक्षु-अचक्षुदर्शन का व्यय होकर केवलदर्शन होता है तो उसमें द्रव्य अन्य नहीं हो जाता, किन्तु अपनी सत्ता रखकर उत्पाद-व्यय होता है।

एक समय पहले जीव को अल्पज्ञान हो और दूसरे समय केवलज्ञान हो जाये। उत्पाद में इतना फेर? पहले समय ज्ञान की जघन्य अवस्था थी और दूसरे समय एकदम परिपूर्ण अवस्था? यदि एक द्रव्य है तो उत्पाद में इतना अधिक अन्तर क्यों? क्या द्रव्य दूसरा आया है? ह्न ऐसा अज्ञानी को प्रश्न उत्पन्न होता है। उसका समाधान है कि अपनी सत्ता रखकर प्रत्येक द्रव्य का परिणमन हुआ करता है। एक उत्पाद पर्याय की दूसरी उत्पाद पर्याय के साथ इतनी तारतम्यता दिखाई देती है तो वह उत्पाद की योग्यता है और द्रव्य स्वयं ही अभिन्न रहकर परिणमित हुआ है ह्न

द्रव्यान्तर हुआ नहीं।

उत्पाद विचित्र भावित होता है, इस कारण वह द्रव्यान्तर नहीं है। द्रव्य स्वयं ही पूर्व अवस्था में से उत्तर अवस्थारूप होता है, वहाँ वह स्वयं अपनी सत्ता का अनुभव करता है। अपने गुणों की सत्ता और अपनी सत्ता एक ही होने के कारण गुण और द्रव्य एक ही हैं, द्रव्यान्तर नहीं। गुणपर्यायें और द्रव्य एक ही द्रव्यरूप हैं, किन्तु पृथक्-पृथक् द्रव्य नहीं हैं।

शरीर की अवस्था परिणमित हो, उष्ण में से ठण्डी हो तो उसकी सत्ता नहीं पलटती, अपितु परमाणु द्रव्य का अपनी सत्ता में एकमेक रहकर परिणमन हुआ है।

प्रश्न :ह्न शरीर में रोग होने पर शरीर काँपने लगता है तो डॉक्टर को बुलाने के लिए दौड़ते क्यों हैं?

उत्तर :ह्न शरीर में रोग के कारण कंपन नहीं होता, किन्तु अपने कारण कंपन होता है। अपने में पहले इतना भय नहीं था, किन्तु बाद में भय का विशेष परिणमन हुआ है। वह चारित्रगुण का विकारी परिणमन हुआ। आत्मा स्वयं उस गुण की अवस्थारूप परिणमित हुआ है, किन्तु द्रव्य अन्यरूप नहीं हुआ।

जैसे आम की पीली अवस्था उत्पन्न हुई है, हरी अवस्था का नाश हुआ है और आम आमरूप रहा है; वैसे ही द्रव्य उत्तर अवस्थारूप उत्पन्न होता है ह्न पूर्व अवस्थारूप से नाश हुआ है और ध्रुवत्व से टिका रहता है। ऐसा होने से द्रव्य एक द्रव्यपर्याय द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है।

ध्रुव वह गुण है और उत्पाद-व्यय वे पर्यायें हैं। गुणपर्यायरूप होकर अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रुव होकर द्रव्य है। तीनों अंश द्रव्य के हैं ह्न पृथक् नहीं।

भावार्थ पर प्रवचन :ह्न गाथा १०३ में समानजातीय और असमानजातीय द्रव्यपर्याय द्वारा द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को बताया था और स्कंध में से स्कंधरूप अवस्था नहीं होती ह्न ऐसा कहा था। इस गाथा में गुणपर्याय द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को बताया है। ●

प्रवचनसार गाथा १०५

अब, सत्ता और द्रव्य अर्थान्तर (भिन्न पदार्थ, अन्य पदार्थ) नहीं होने के सम्बन्ध में युक्ति उपस्थित करते हैं :ह्न

ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुव्वं हवदि तं कहं दव्वं।
हवदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता॥१०५॥

(हरिगीत)

यदि द्रव्य न हो स्वयं सत् तो असत् होगा नियम से।
किम होय सत्ता से पृथक् जब द्रव्य सत्ता है स्वयं॥१०५॥

अन्वयार्थ :ह्न **[यदि]** यदि **[द्रव्यं]** द्रव्य **[सत् न भवति]** (स्वरूप से ही) सत् न हो तो ह्न (१) **[ध्रुवं असत् भवति]** निश्चय से वह असत् होगा; **[तत् कथं द्रव्यं]** (जो असत् होगा) वह द्रव्य कैसे हो सकता है? **[पुनः वा]** अथवा (यदि असत् न हो) तो (२) **[अन्यत् भवति]** वह सत्ता से अन्य (पृथक्) हो! (सो भी कैसे हो सकता है?) **[तस्मात्]** इसलिये **[द्रव्यं स्वयं]** द्रव्य स्वयं ही **[सत्ता]** है।

टीका :ह्न यदि द्रव्य स्वरूप से ही [1]सत् न हो तो दूसरी गति यह हो कि वह (१) [2]असत् होगा अथवा (२) सत्ता से पृथक् होगा। वहाँ, (१) यदि वह असत् होगा तो ध्रौव्य के असंभव के कारण स्वयं स्थिर न होता हुआ द्रव्य का ही [3]अस्त हो जायेगा; और (२) यदि सत्ता से पृथक् हो तो सत्ता के बिना भी स्वयं रहता हुआ, इतना ही मात्र जिसका प्रयोजन है ह्न ऐसी [4]सत्ता को ही अस्त कर देगा।

किन्तु यदि द्रव्य स्वरूप से ही सत् हो तो ह्न (१) ध्रौव्य के सद्भाव

१. सत् = मौजूद। २. असत् = नहीं मौजूद ऐसा।

३. अस्त = नष्ट। (जो असत् हो, उसका टिकना ह्न मौजूद रहना कैसा? इसलिये द्रव्य को असत् मानने से द्रव्य के अभाव का प्रसंग आता है अर्थात् द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता।)

४. सत्ता का कार्य इतना ही है कि वह द्रव्य को विद्यमान रखे। यदि द्रव्य सत्ता से भिन्न रहकर भी स्थिर रहे तो फिर सत्ता का प्रयोजन ही नहीं रहता अर्थात् सत्ता के अभाव का प्रसंग आ जायेगा।

के कारण स्वयं स्थिर रहता हुआ, द्रव्य उदित होता है (अर्थात् सिद्ध होता है); और (२) सत्ता से अपृथक् रहकर स्वयं स्थिर (विद्यमान) रहता हुआ, इतना ही मात्र जिसका प्रयोजन है ह्न ऐसी सत्ता को उदित (सिद्ध) करता है।

इसलिये द्रव्य स्वयं ही सत्त्व (सत्ता) है ह्न ऐसा स्वीकार करना चाहिए; क्योंकि भाव और [1]भाववान् का अपृथक्त्व द्वारा अनन्यत्व है।

गाथा १०५ पर प्रवचन

अब, सत्ता और द्रव्य भिन्न पदार्थ नहीं ह्न यह बात इस गाथा में कहते हैं :-

यदि गुण-गुणी भिन्न हैं ह्न ऐसा माना जावे तो गुणी का ही नाश होगा। अतः जब से वस्तु है, तभी से सत्ता है। इस जीव को अथवा किसी भी पदार्थ को किसी ने उत्पन्न नहीं किया है अर्थात् किसी की सत्ता से अपनी सत्ता नहीं है और कोई भी द्रव्य अपनी सत्ता से स्वयं भिन्न नहीं है।

गुण और गुणी में नाम, संख्या तथा लक्षणभेद है; किन्तु प्रदेशभेद नहीं है, प्रदेश-अभेद हैं। अपना द्रव्य जो सत्तावान है, उसके ऊपर नजर करने से धर्म होता है।

१. यदि द्रव्य स्वयं से ही सत् न हो तो ध्रुवत्व के असंभव होने के कारण द्रव्य स्वयं ही नाश को प्राप्त होता है, वस्तु ही नहीं रहती।

२. यदि द्रव्य अपने सत्ता गुण से भिन्न हो तो सत्ता गुण का प्रयोजन नहीं रहता; क्योंकि सत्ता का कार्य तो द्रव्य के अस्तित्व को रखना है। यदि द्रव्य उसके सत्ता गुण से भिन्न रहकर रहे तो सत्ता गुण का प्रयोजन नहीं रहता और इससे सत्ता गुण के अभाव का प्रसंग आता है।

१. भाववान् = भाववाला। (द्रव्य भाववाला है और सत्ता उसका भाव है। वे अपृथक् हैं, इस अपेक्षा से अनन्य हैं। पृथक्त्व और अन्यत्व का भेद जिस अपेक्षा से है, उस अपेक्षा को लेकर उनके विशेषार्थ आगामी गाथा में कहेंगे, उन्हें यहाँ नहीं लगाना चाहिए, किन्तु यहाँ अनन्यत्व को अपृथक्त्व के अर्थ में ही समझना चाहिए।)

(१) यदि द्रव्य स्वरूप से ही सत् हो तो ध्रुव के सद्भाव के कारण द्रव्य स्थिर रहता है और तभी द्रव्य सिद्ध होता है। सत्तागुण गुणी को सिद्ध करता है।

(२) और द्रव्य सत्तागुण के साथ रहकर स्थिर होने से सत्तागुण को भी सिद्ध करता है। गुणी द्रव्य सत्तागुण को सिद्ध करता है।

प्रश्न :ह्न क्या स्वप्न की पर्याय भी सत्तावाली होगी?

उत्तर :ह्न हाँ, वह पर्याय भी सत्तावाली है। ज्ञान की पर्याय में अस्तित्व का बिलकुल अभाव नहीं होता। अपनी ज्ञान की पर्याय में राग की पर्याय तथा अन्य पदार्थ जो स्वप्न में भासित होते हैं, वे जानने में आते हैं; इसीलिये वह अस्तित्ववाली पर्याय है। स्वप्न बिलकुल भ्रम नहीं ह्न अवस्तु नहीं; यह भी एक वस्तु है। जीव के क्षायोपशमिक ज्ञान की पर्याय की उस समय की योग्यता है, तब वह स्वप्न देखता है।

इस गाथा में गुण-गुणी अभेद हैं ह्न ऐसा सिद्ध किया है। द्रव्य और सत्ता का प्रदेशभेद नहीं है ह्न ऐसा कहा है।

प्रत्येक आत्मा शक्तिमान है; यदि ऐसा न माने तो शक्तिमान का नाश होता है और गुण भिन्न है ह्न ऐसा माने तो शक्ति का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। शक्तिमान शक्ति के बिना नहीं होता। स्वभाववान स्वभाव के बिना नहीं होता। आत्मा ज्ञान-दर्शन आदि गुणों के बिना नहीं होता।

यहाँ अस्तित्व गुण की बात कही है; किन्तु सभी गुणों की सत्ता से द्रव्य अभेद है ह्न ऐसा समझ लेना चाहिए। आनंदवान, ज्ञानवान, चारित्रवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन, चारित्र, सत्ता आदि के साथ ही रहता है, पृथक् नहीं रहता।

गुण-गुणी अभेद की मान्यता निश्चित करने से अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख अपने में से आते हैं ह्न ऐसा निर्णय होता है और ज्ञान, सुख आदि पर में से आते हैं ह्न ऐसी अनादि की मिथ्यामान्यता का नाश होता है; गुणी ऐसे आत्मा की तरफ दृष्टि होती है ह्न यही धर्म है। यदि आनंद अथवा ज्ञानादि परजीवों में से अथवा पुद्गलों में से आते हों तो स्वभाववान

का नाश होता है, किन्तु ऐसा नहीं है। जो जीव ऐसा मानता है कि ज्ञान, श्रद्धा आदि पर के कारण आते हैं तो वह गुण-गुणी को एक नहीं मानता किन्तु पृथक् मानता है, यह उसकी मिथ्या मान्यता है। यदि पैसा, मेवा, मावा, मोटर में से अपना आनंद आता हो तो आत्मा आनंद रहित ठहरा। अज्ञानी द्रव्य के ऊपर नजर नहीं करता, किन्तु पर के ऊपर नजर करता है।

प्रश्न :ह्न केवलज्ञान पुस्तक में से अथवा मनन की पर्याय में से आता होगा?

उत्तर :ह्न नहीं, केवलज्ञान गुणी ऐसे आत्मा में से आता है। इस गाथा में गुण-गुणी की एकता बताते हैं।

तेरी रुचि गुण-गुणी के ऊपर है अथवा परपदार्थों के ऊपर? तेरी आनंद सत्ता, ज्ञान सत्ता, श्रद्धा सत्ता, चारित्र सत्ता तेरे गुणी आत्मा से पृथक् नहीं है।

जो जीव ऐसा मानता है कि परपदार्थ मिले तो खुशी हुई, तो वह जीव द्रव्य को, गुण को और पर्याय को नहीं मानता। दूसरे की सत्ता से अपनी सत्ता है ह्न ऐसा माननेवाला सत्ता गुण और सत्तावान द्रव्य को भिन्न-भिन्न मानता है।

शास्त्र और गुरु के पास से ज्ञान आता है ह्न ऐसा माननेवाला जीव गुण और गुणी को पृथक् मानता है, किन्तु एक नहीं मानता।

भाव तथा भाववान पृथक् नहीं है, शक्ति तथा शक्तिवान पृथक् नहीं, स्वभाव व स्वभाववान पृथक नहीं है। इसीलिए द्रव्य स्वयं ही सत्ता है ह्न ऐसा निर्णय करना चाहिए अथवा गुण-गुणी अभेद हैं, उनमें पृथकत्व नहीं है ह्न ऐसा निर्णय करना चाहिए।

●

प्रवचनसार गाथा १०६

अब, पृथक्त्व का और अन्यत्व का लक्षण स्पष्ट करते हैं :ह्न

पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स।
अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं होदि कधमेगं॥१०६॥

(हरिगीत)

जिनवीर के उपदेश में पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता।
अतद्भाव ही अन्यत्व है तो अतत् कैसे एक हों॥१०६॥

अन्वयार्थ :ह्न [प्रविभक्तप्रदेशत्वं] विभक्तप्रदेशत्व वह [पृथक्त्वं] पृथक्त्व है, [इति हि] ऐसा [वीरस्य शासनं] वीर का उपदेश है। [अतद्भावः] अतद्‌भाव (उस रूप न होना) वह [अन्यत्व] अन्यत्व है। [न तत् भवत्] जो उस रूप न हो [कथम् एकं भवति] वह एक कैसे हो सकता है? (कथंचित् सत्ता द्रव्यरूप नहीं है और द्रव्य सत्तारूप नहीं है, इसलिये वे एक नहीं हैं।)

टीका :ह्न विभक्त प्रदेशत्व (भिन्न प्रदेशत्व) पृथक्त्व का लक्षण है। वह तो सत्ता और द्रव्य में सम्भव नहीं है, क्योंकि गुण और गुणी में विभक्तप्रदेशत्व का अभाव होता है ह्न शुक्लत्व और वस्त्र की भाँति। वह इसप्रकार है कि जैसे ह्न जो शुक्लत्व के ह्न गुण के प्रदेश हैं, वे ही वस्त्र के ह्न गुणी के हैं, इसलिये उनमें प्रदेशभेद नहीं है; इसीप्रकार जो सत्ता के ह्न गुण के प्रदेश हैं, वे ही द्रव्य के ह्न गुणी के हैं, इसलिये उनमें प्रदेशभेद नहीं है।

ऐसा होने पर भी उनमें (सत्ता और द्रव्य में अन्यत्व है, क्योंकि (उनमें) अन्यत्व के लक्षण का सद्‌भाव है। [1]अतद्‌भाव अन्यत्व का लक्षण है। वह तो सत्ता और द्रव्य के है ही, क्योंकि गुण और गुणी के [2]तद्भाव का अभाव होता है ह्न शुक्लत्व और वस्त्र की भाँति। वह इसप्रकार

१. अतद्‌भाव = (कथंचित्) उसका न होना; (कथंचित्) उसरूप न होना (कथंचित्) अतद्‌रूपता। द्रव्य कथंचित् सत्तारूप से नहीं है और सत्ता कथंचित् द्रव्यरूप से नहीं है, इसलिये उनके अतद्‌भाव है।
२. तद्‌भाव = उसका होना, उस रूप होना, तद्‌रूपता।

है कि ह्न जैसे एक चक्षु इन्द्रिय के विषय में आनेवाला और अन्य सब इन्द्रियों के समूह को गोचर न होनेवाला शुक्लत्व गुण है, वह समस्त इन्द्रियसमूह को गोचर होनेवाला ऐसा वस्त्र नहीं है; और जो समस्त इन्द्रियसमूह को गोचर होनेवाला वस्त्र है, वह एक चक्षु इन्द्रिय के विषय में आनेवाला तथा अन्य समस्त इन्द्रियों के समूह को गोचर न होनेवाला ऐसा शुक्लत्व गुण नहीं है, इसलिये उनके तद्‌भाव का अभाव है; इसीप्रकार [1]किसी के आश्रय रहनेवाली, [2]निर्गुण, एक गुण की बनी हुई, [3]विशेषण, [4]विधायक और [5]वृत्तिस्वरूप जो सत्ता है; वह किसी के आश्रय के बिना रहनेवाला, गुणवाला, अनेक गुणों से निर्मित, [6]विशेष्य, [7]विधीयमान और [8]वृत्तिमानस्वरूप ऐसा द्रव्य नहीं है तथा जो किसी के आश्रय के बिना रहनेवाला, गुणवाला, अनेक गुणों से निर्मित, विशेष्य, विधीयमान और वृत्तिमानस्वरूप द्रव्य है; वह किसी के आश्रित रहनेवाली, निर्गुण, एक गुण से निर्मित, विशेषण, विधायक और वृत्तिस्वरूप ह्न ऐसी सत्ता

१. सत्ता द्रव्य के आश्रय से रहती है, द्रव्य को किसी का आश्रय नहीं है। (जैसे घड़े में घी रहता है, उसीप्रकार द्रव्य में सत्ता नहीं रहती (क्योंकि घड़े में और घी में तो प्रदेशभेद है) किन्तु जैसे आम में वर्ण ह्न गंधादि हैं, उसीप्रकार द्रव्य में सत्ता है।)
२. निर्गुण = गुणरहित (सत्ता निर्गुण है, द्रव्य गुणवाला है। जैसे ह्न आम वर्ण, गंध, स्पर्शादि गुणयुक्त है; किन्तु वर्णगुण कहीं गंध, स्पर्श या अन्य किसी गुणवाला नहीं है; क्योंकि न तो वर्ण सूँघा जाता है और न स्पर्श किया जाता है। और जैसे आत्मा ज्ञानगुणवाला, वीर्यगुणवाला इत्यादि है, परन्तु ज्ञानगुण कहीं वीर्यगुणवाला या अन्य किसी गुणवाला नहीं है; इसीप्रकार द्रव्य अनन्त गुणोंवाला है, परन्तु सत्ता गुणवाली नहीं है। (यहाँ, जैसे दण्डी दण्डवाला है, उसीप्रकार द्रव्य को गुणवाला नहीं समझना चाहिए; क्योंकि दण्डी और दण्ड में प्रदेशभेद है, किन्तु द्रव्य और गुण अभिन्नप्रदेशी हैं।)
३. विशेषण = विशेषता; लक्षण; भेदक धर्म।
४. विधायक = विधान करनेवाला; रचयिता।
५. वृत्ति = होना, अस्तित्व, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य।
६. विशेष्य = विशेषता को धारण करनेवाला पदार्थ; लक्ष्य; भेद्य पदार्थ ह्न धर्मी। (जैसे मिठास, सफेदी, सचिक्कणता आदि मिश्री के विशेष गुण हैं और मिश्री इन विशेषगुणों से विशेषित होती हुई अर्थात् उन विशेषताओं से ज्ञात होती हुई, उन भेदों से भेदित होती हुई एक पदार्थ है; और जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य इत्यादि आत्मा के विशेषण हैं और आत्मा उन विशेषणों से विशेषित होता हुआ (लक्षित, भेदित, पहचाना जाता हुआ) पदार्थ है, उसीप्रकार सत्ता विशेषण है और द्रव्य विशेष्य है। (यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि विशेष्य और विशेषणों के प्रदेशभेद नहीं है।)
७. विधीयमान = रचित होनेवाला। (सत्ता इत्यादि गुण द्रव्य के रचयिता हैं और द्रव्य उनके द्वारा रचा जानेवाला पदार्थ है।)
८. वृत्तिमान = वृत्तिवाला, अस्तित्ववाला, स्थिर रहनेवाला। (सत्ता वृत्तिस्वरूप अर्थात् अस्तित्वरूप है और द्रव्य अस्तित्व रहने स्वरूप है।)

नहीं है; इसलिये उनके तद्‌भाव का अभाव है। ऐसा होने से ही, यद्यपि सत्ता और द्रव्य के कथंचित् अनर्थान्तरत्व (अभिन्नपदार्थत्व, अनन्यपदार्थत्व) है, तथापि उनके सर्वथा एकत्व होगा ह्न ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए; क्योंकि तद्‌भाव एकत्व का लक्षण है। जो उसरूप ज्ञात नहीं होता, वह (सर्वथा) एक कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता; परन्तु गुण-गुणी-रूप से अनेक ही है ह्न ऐसा अर्थ है।

भावार्थ :ह्न भिन्नप्रदेशत्व, वह पृथक्त्व का लक्षण है; अतद्‌भाव, वह अन्यत्व का लक्षण है। द्रव्य में और गुण में पृथक्त्व नहीं है, फिर भी अन्यत्व है।

प्रश्न :ह्न जो अपृथक् होते हैं, उनमें अन्यत्व कैसे हो सकता है?

उत्तर :ह्न उनमें वस्त्र और शुभ्रता (सफेदी) की भाँति अन्यत्व हो सकता है। वस्त्र के और उसकी शुभ्रता के प्रदेश भिन्न नहीं हैं, इसलिये उनमें पृथक्त्व नहीं है। ऐसा होने पर भी शुभ्रता तो मात्र आँखों से ही दिखाई देती है; जीभ, नाक आदि शेष चार इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होती और वस्त्र पाँचों इन्द्रियों से ज्ञात होता है। इसलिये (कथंचित्) वस्त्र, वह शुभ्रता नहीं है और शुभ्रता, वह वस्त्र नहीं है। यदि ऐसा न हो तो वस्त्र की भाँति शुभ्रता भी जीभ, नाक इत्यादि सर्व इन्द्रियों से ज्ञात होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिये वस्त्र और शुभ्रता में अपृथक्त्व होने पर भी अन्यत्व है ह्न यह सिद्ध होता है।

इसीप्रकार द्रव्य में सत्तादि गुणों में अपृथक्त्व होने पर भी अन्यत्व है; क्योंकि द्रव्य के और गुण के प्रदेश अभिन्न होने पर भी द्रव्य में और गुण में संज्ञा-संख्या-लक्षणादि भेद होने से (कथंचित्) द्रव्य गुणरूप नहीं है और गुण वह द्रव्यरूप नहीं है।

गाथा १०६ पर प्रवचन

आत्मा और परमाणु पृथक्-पृथक् हैं। दोनों में प्रदेश भेद त्रिकाल है। ''प्रदेशों का पृथक्-पृथक् होना पृथक्त्व का लक्षण है। आत्मा और शरीर के प्रदेश बिल्कुल पृथक् हैं, आत्मा और कर्म के प्रदेश भी पृथक् हैं। शरीर के एक परमाणु का दूसरे परमाणु से प्रदेशभेद है; इसीलिए कोई आत्मा दूसरे आत्मा अथवा शरीरादि का कुछ भी नहीं कर सकता। यह ज्ञेयतत्त्व अधिकार है। स्वज्ञेय के प्रदेश पृथक् और परज्ञेय के प्रदेश पृथक् हैं।

भिन्न प्रदेश का होना, वह पृथक्त्व का लक्षण है। आत्मा का शरीर, कर्म तथा अन्य आत्मा के साथ प्रदेश भेद है; इसीलिये कोई आत्मा दूसरे आत्मा अथवा शरीरादि का कुछ भी नहीं कर सकता। आत्मा दूसरे की दया नहीं पाल सकता; क्योंकि उनके प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं।

सत्ता गुण और द्रव्य का भिन्न प्रदेशत्व संभव नहीं है, क्योंकि गुण और गुणी के भिन्न प्रदेशत्व का अभाव है अर्थात् वे एक प्रदेश में रहते हैं। सफेदी के प्रदेश और वस्त्र के प्रदेश पृथक् नहीं हैं। सफेद गुण के अंश वस्त्र के अंश हैं, वे प्रदेश से भिन्न नहीं हैं, इसीलिये उनमें प्रदेश भेद नहीं है। जैसे अस्तित्व गुण असंख्य प्रदेश में है, वैसे आत्मा असंख्य प्रदेशी है; इसलिये गुण-गुणी में प्रदेश भेद नहीं है।

कोई प्रश्न करता है कि दूसरा कुछ व्यवहार कहो तो सरल पड़ता है तो उससे कहते हैं कि भाई! यही व्यवहार है। गुण और गुणी ऐसा भेद करना, यही व्यवहार है। गुण-गुणी का भेद छोड़कर अभेद होना, वही निश्चय है। निश्चय की दृष्टि रखकर स्वरूप समझने के लिए जो शुभ विकल्प आते हैं, वे व्यवहार हैं; किन्तु उससे कल्याण नहीं होता।

गुण-गुणी में प्रदेशभेद नहीं है ह्न ऐसा बराबर समझे तथा निश्चय का भान हो; फिर भी यदि अस्थिरता का राग होता है तो उससे धर्म नष्ट नहीं हो जाता। गुण-गुणी में प्रदेश की अभेदता को समझे बिना शुभभाव करे तो उसे धर्म नहीं होता।

इसतरह सत्ता और द्रव्य में प्रदेशभेद से भेद नहीं होने पर भी सत्ता गुण और द्रव्य गुणी को परस्पर अन्यत्व है; क्योंकि सत्ता और द्रव्य में अन्यत्व के लक्षण का सद्भाव है।

अतद्‌भाव = उसरूप नहीं होना, यह अन्यत्व का लक्षण है।

द्रव्य कथंचित् सत्तारूप नहीं और सत्ता कथंचित् द्रव्यरूप नहीं। सत्ता और द्रव्य में तत्-रूप होने का अभाव है, क्योंकि जब ज्ञान सम्यक्

हुआ, तब सम्पूर्ण द्रव्य पूर्णरूप से सम्यक्‌रूप नहीं हो जाता। एक अंश में सम्पूर्ण अंशी नहीं हो सकता। एक गुण अनन्त गुणरूप नहीं होता और गुणी में एकत्व का अभाव है; यह बात अब दृष्टांत से समझाते हैं।

वस्त्र की सफेदी मात्र आँख से ही दिखाई देती है; किन्तु यह सफेदी स्पर्श से, चखने से, सूँघने से अथवा आवाज से जानने में नहीं आती; इसीलिये सफेदी मात्र चक्षु इन्द्रिय का विषय है। वस्त्र का जानना स्पर्श से, चखने से, सूँघने से, देखने से और आवाज करने से ही हो सकता है अर्थात् पाँच इन्द्रिय द्वारा वस्त्र को जाना जा सकता है। चक्षु इन्द्रिय द्वारा जानने में आनेवाली जो सफेदी है, वह पाँच इन्द्रिय द्वारा जानने में आनेवाला वस्त्र नहीं है और पाँच इन्द्रिय द्वारा जानने में आनेवाला वस्त्र एक चक्षु द्वारा जानने में आनेवाली सफेदी नहीं है। सफेदी एक गुण है और वस्त्र में तो बहुत गुण हैं ह्न जैसे कि सफेदी, अस्तित्व, नरमपना आदि।

आँख के विषयवाला ज्ञेय पदार्थ पाँच इन्द्रिय के विषयवाला ज्ञेयरूप नहीं होता और पाँच इन्द्रिय के विषयवाला ज्ञेय पदार्थ आँख के विषयवाले ज्ञेय पदार्थ जितना (मात्र) नहीं होता। सम्पूर्ण वस्तु एक गुण में नहीं आती; इसकारण वस्त्र और सफेदी में एकत्व नहीं है अर्थात् वस्त्र और सफेदी में अतद्भाव है। इसीप्रकार सत्ता गुण और द्रव्य गुणी के स्वभाव में अन्तर है।

(१) सत्ता द्रव्याश्रित है और द्रव्य निराश्रित है :ह्न

इसी तरह अन्य गुण भी द्रव्य के आश्रय से हैं, किन्तु द्रव्य को किसी का आश्रय नहीं; द्रव्य तो गुणों को आश्रय देता है, किन्तु स्वयं किसी का आश्रय नहीं लेता, इसीलिये द्रव्य आश्रयदाता (आश्रय देनेवाला) है। जैसे बर्तन में घी रहता है, वैसे द्रव्य में सत्ता नहीं रहती; क्योंकि बर्तन और घी में तो प्रदेशभेद है, किन्तु सत्ता और द्रव्य में ऐसा प्रदेशभेद नहीं है, किन्तु जैसे आम में वर्ण, गंध है; वैसे ही द्रव्य में सत्ता है।

(२) सत्ता निर्गुण है और द्रव्य अनन्तगुणरूप है :ह्न

जैसे वर्ण गुण गंध अथवा स्पर्शरूप नहीं होता, वैसे ही आत्मा का ज्ञानगुण-वीर्यगुण अथवा दर्शनगुणरूप नहीं होता। सत्ता गुण में अन्य गुण नहीं आते अर्थात् एक गुण में अन्य गुण नहीं आ सकते, इसीलिये सत्तागुण निर्गुण है। द्रव्य में अनंत गुण होते हैं, इसीलिये द्रव्य गुणवाला है। (जैसे दण्डी दण्डवाला है, वैसे द्रव्य को गुणवाला नहीं समझना; क्योंकि दण्डी और दण्ड में तो प्रदेशभेद है, किन्तु द्रव्य और गुण तो अभिन्न प्रदेशी हैं।

(३) सत्ता एक गुणरूप है और द्रव्य अनन्त गुणरूप है :ह्न

सत्ता गुण में दूसरा गुण नहीं है, सत्ता एक ही गुण है। ज्ञान गुण को लो तो ज्ञानगुण एक ही ज्ञानगुण का बना हुआ है। वैसे ही प्रत्येक गुण को समझना; अतः सत्ता एक गुण की बनी हुई है।

द्रव्य तो अनेकगुणों का बना हुआ है। सत्ता, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनेक गुण आत्मा में हैं। पुद्‌गल में सत्ता, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि अनेक गुण हैं।

(४) सत्ता विशेषण है और द्रव्य विशेष्य है :ह्न

सत्ता गुण लक्षण है, द्रव्य को पहिचानने का चिह्न है और द्रव्य विशेष्य है अर्थात् विशेषणों से पहिचाना जानेवाला पदार्थ है; जैसे कि आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य आदि विशेषणों से पहिचाना जानेवाला पदार्थ है। सत्ता विशेषण है और द्रव्य विशेष्य है, फिर भी विशेषण और विशेष्य में प्रदेशभेद नहीं है।

(५) सत्ता विधायक है और द्रव्य विधीयमान है :ह्न

सत्ता विधायक (रचना करनेवाली) है। सभी गुण द्रव्य की रचना करनेवाले हैं अर्थात् गुण द्रव्य की रचना करते हैं। द्रव्य विधीयमान है ह्न द्रव्य गुणों से रचा जानेवाला पदार्थ है। द्रव्य किसी परपदार्थ से नहीं बनता, किन्तु अपने गुणों से रचित स्वयं सिद्ध पदार्थ है।

(६) सत्ता वृत्तिस्वरूप है और द्रव्य वृत्तिमान है :-

सत्ता वृत्तिस्वरूप है, गुण अस्तिस्वरूप है। द्रव्य वृत्तिमान स्वरूप है। द्रव्य अस्ति ध्रुवस्वरूप है।

इसप्रकार किसी के आश्रय से रहनेवाली, निर्गुण, एक गुण की बनी हुई, विशेषण, विधायक और वृत्तिस्वरूप ह्र ऐसी जो सत्ता है, वह किसी के आश्रय के बिना रहनेवाले, गुणवाले, अनेक गुणों का बना हुआ, विशेष्य, विधीयमान और वृत्तिमानस्वरूप ह्र ऐसा द्रव्य नहीं है। उपर्युक्त छह लक्षणवाला द्रव्य वह उपर्युक्त छह लक्षणवाली सत्ता नहीं है।

यहाँ तो एक सत्ता गुण का दृष्टांत दिया है। इसी तरह एक-एक गुण वह द्रव्य नहीं है और द्रव्य वह गुण नहीं है। आत्मा, ज्ञान नहीं और ज्ञान, आत्मा नहीं है। गुण, द्रव्य नहीं और द्रव्य, गुण नहीं; इसीलिए उन्हें तद्‌भाव का अभाव है। अर्थात् अतद्‌भाव है अर्थात् जो गुण है, वह द्रव्यरूप नहीं और जो द्रव्य है, वह गुणरूप नहीं है। सत्ता को और द्रव्य को कथंचित् अभिन्नपना अर्थात् उनमें प्रदेशभेद से भेद नहीं होने पर भी उनमें सर्वथा एकत्वपना नहीं है; क्योंकि उसरूप होना, वह एकत्व का लक्षण है, जो उसरूप जानने में नहीं आता, वह सर्वथा एक नहीं हो सकता। इसलिये गुण और गुणी कथंचित् भिन्न हैं ह्र अन्य हैं।

आत्मा और शरीर तथा कर्म, तीनों काल पृथक् हैं; दोनों में प्रदेशभेद है और आत्मा में द्रव्य तथा गुण में अतद्‌भाव है, दोनों में प्रदेशभेद नहीं, किन्तु भावभेद है। दोनों के भाव भिन्न हैं। ऐसा ज्ञान निर्मल किये बिना सामायिक पाठ का कोई अर्थ समझे बिना व ज्ञान किये बिना मात्र पढ़ ले और उसे सामायिक मान ले तो उसे सच्ची सामायिक अथवा व्रत नहीं होता।

वास्तव में आत्मा काया को स्थिर नहीं रख सकता, क्योंकि काया की सत्ता और आत्मा की सत्ता अत्यन्त भिन्न-भिन्न है और उनके प्रदेश भी भिन्न-भिन्न हैं। किसी द्रव्य का कोई स्वामी नहीं होता, फिर भी अज्ञानी मानता है कि मैं शरीर को बैठा सकता हूँ, पैसे और शरीर का सदुपयोग कर सकता हूँ, कर्म आत्मा को परिभ्रमण करवाते हैं ह्र यह उसका भ्रम है; किन्तु यथार्थ ज्ञान के बिना पर का अहंकार नहीं जाता और जीव को सच्ची शांति नहीं होती व स्वज्ञेय की सच्ची प्रतीति भी नहीं होती।

एक तत्त्व दूसरे भिन्न प्रदेशी तत्त्व को रख सके, मिला सके, छोड़ सके, रक्षण कर सके अथवा रखड़ाये ह्र ये सभी बातें बिलकुल मिथ्या हैं।

आत्मा शरीर के आधार से तो नहीं रहता, किन्तु उसके गुण के आधार से भी नहीं रहता; क्योंकि आत्मा तो अपने गुण को आश्रय देनेवाला है; एक गुण उसके द्रव्य के आश्रय से है, किन्तु एक द्रव्य उसके गुणों के आश्रय से नहीं।

यहाँ आत्मा को अपने गुणों का भी आश्रय नहीं है ह्र ऐसा कहा है तो फिर शरीर, पैसा, रुपया, देव-गुरु-शास्त्र के आधार से आत्मा रहे और जीवित रहे ह्र ये मान्यता तो बिलकुल ही अज्ञान से भरी हुई है।

प्रश्न :ह्र गुण आधार है और गुणी आधेय है ह्र ऐसा तो आपने पहले के प्रवचन में कहा था?

उत्तर :ह्र भाई! वहाँ गुण तथा द्रव्य है...है...है... यह बताना था, गुण न हो तो वहाँ गुणी न हो, यह बताया था अर्थात् गुण आधार और गुणी आधेय ह्र ऐसा कहा था। वहाँ दोनों के सद्‌भाव को स्थापित करना था अर्थात् इसतरह कथन करने में आया था कि गुण हो वहाँ गुणी होता है। जबकि यहाँ तो यह बताना है कि आत्मा एक गुण के आश्रय से नहीं रहता तो फिर दूसरी आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय के आश्रय से तो सर्वथा है ही नहीं, क्योंकि दोनों में प्रदेशभेद से भेद है।

पुस्तक लकड़ी की चौकी के आश्रय से तो नहीं है, अपितु पुस्तक तो अकेले सत्तागुण के आश्रय से भी नहीं है, इसीतरह आत्मा कर्म के आश्रय से नहीं और कर्म भी आत्मा के आश्रय से नहीं है। गरीब, सेठ के आश्रय से नहीं है; संसारी जीव भगवान के आश्रय से नहीं और विद्यार्थी मास्टर (शिक्षक) के आधार से नहीं। प्रत्येक वस्तु स्वयंसिद्ध है, पर से भिन्न प्रदेशी है। उन्हें एक-दूसरे का आश्रय है और वे एक-दूसरे के कारण रहती हैं ह्र ऐसा कहना तो अज्ञानभाव है।

शरीर और आत्मा भिन्न प्रदेशी हैं, फिर भी शरीर कारण आत्मा और आत्मा के कारण शरीर चलता है ह्र ऐसा कहना (मानना) अज्ञानभाव है।

गाथा १०६ के भावार्थ पर प्रवचन

आत्मा और शरीर के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं और भिन्न प्रदेशत्व पृथक्ता का लक्षण है, अतद्भाव अन्यत्व का लक्षण है। द्रव्य और गुण के प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं हैं, किन्तु इनमें अन्यत्व है अर्थात् अतद्भाव है; क्योंकि गुण संपूर्ण गुणी नहीं और गुणी एकगुण में नहीं आ जाता, इसीलिए गुण-गुणी में अनेकत्व सिद्ध होता है।

प्रश्न :ह्न जो प्रदेश से भिन्न नहीं है, उनमें अन्यत्व अर्थात् अन्य-अन्यपना कैसे हो सकता है? गुण और द्रव्य के प्रदेश एक ही हैं तो गुण को और द्रव्य को अन्य-अन्यपना किस तरह होगा? आत्मा तथा शरीर अथवा आत्मा और कर्म के प्रदेशभेद हैं, इसीलिए आत्मा और शरीर अथवा कर्म का अन्य अन्यपना सम्भवित होता है, किन्तु आत्मा और उसके गुण में प्रदेशभेद नहीं है तो उनमें अन्य-अन्यपना किस तरह होगा?

उत्तर :ह्न वस्त्र और सफेदी के समान उनमें भिन्नत्व हो सकता है। वस्त्र और सफेदी के प्रदेश भिन्न नहीं हैं; इसीलिए उनमें पृथक्त्व नहीं है, ऐसा होने पर भी सफेदी मात्र एक चक्षु इन्द्रिय का विषय है और अन्य चार इन्द्रियों का विषय नहीं है और वस्त्र तो पाँच इन्द्रिय से जानने में आये, ऐसा है; इसीलिए सफेदी, वस्त्र नहीं और वस्त्र, सफेदी नहीं है।

यदि ऐसा ना हो और सफेदी और वस्त्र एक ही हों तो वस्त्र के समान सफेदी भी पाँचों इन्द्रियों से जानने में आना चाहिए अथवा वस्त्र सफेदी के समान एक चक्षु इन्द्रिय का विषय होना चाहिए, किन्तु ऐसा तो नहीं होता। सफेदी एक चक्षु इन्द्रिय का ही विषय है और वस्त्र पाँचों इन्द्रियों का विषय हैं, इसीलिए इस आधार से निश्चित होता है कि दोनों पदार्थ भाव से भिन्न-भिन्न हैं।

इस दृष्टांत से निश्चित होता है कि द्रव्य और अस्तित्व आदि गुणों के प्रदेशभेद नहीं होने पर भी अन्यत्व है; क्योंकि द्रव्य के और गुण के प्रदेश भिन्न नहीं होने पर भी द्रव्य और गुण में संज्ञा, संख्या और लक्षण आदि भेद होने से द्रव्य कथंचित् गुणरूप नहीं और गुण कथंचित् द्रव्यरूप नहीं है।

१. संज्ञा ह्न नाम को संज्ञा कहते हैं। गुण का नाम गुण है और द्रव्य का नाम द्रव्य है अर्थात् संज्ञा भेद से उनमें भेद है।

२. संख्या :ह्न गुण संख्या में अनन्त हैं और द्रव्य संख्या से एक है, इसीलिए इनमें संख्या भेद से भिन्नता है।

३. लक्षण :ह्न गुण का लक्षण किसी के सहारे से रहना, एक गुण में दूसरे गुण का न रहना तथा द्रव्य की रचना करनेवाला है।

द्रव्य का लक्षण गुणों को आश्रय देना, अनेक गुणों का समूहपना है। द्रव्य में अभेदता बताना है।

इसतरह द्रव्य और गुण के प्रदेशभेद से भेद नहीं होने पर भी संज्ञा, संख्या, लक्षण आदि भेद से उनमें भेद है।

प्रश्न :ह्न ऐसा भेद समझाकर आप क्या करवाना चाहते हो? निर्विकल्पता के लिए तो भेद का निषेध करने में आया है। अकेले अभेद आत्मा को समझने का उपदेश देते हो?

उत्तर :ह्न प्रशम के लक्ष्य से ज्ञान की निर्मलता होती है। अनेक प्रकार का ज्ञान करने से ज्ञान राग का कारण नहीं हो जाता। ज्ञेयों में अनन्त विविधता है। ज्ञेयों की अनेकता राग नहीं कराती है, यदि वह राग का कारण हो तो केवली भगवान अनन्त ज्ञेयों को जानते हैं तो उन्हें भी राग होना चाहिए, किन्तु ऐसा तो नहीं होता।

अनेक प्रकार की विविधतारूप ज्ञान राग का कारण नहीं है।

अनेक प्रकार के ज्ञेयों की विविधता वह राग का कारण नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार के कर्मों की विविधता भी राग का कारण नहीं है।

राग का कारण तो रागी जीव के राग की उस समय की योग्यता है। शास्त्र में कहा है कि परद्रव्यानुसारी वृत्ति, वह राग का कारण है; किन्तु परद्रव्य राग का कारण नहीं है।

गुण-गुणी के भेद का अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करना तो ज्ञान की पर्याय है, इसके कारण राग नहीं होता; किन्तु रागी जीव को रागांश है, इसलिए राग होता है।

आत्मा में जो गुण-गुणी भेद है, वह राग का कारण नहीं है। गुण-गुणी भेद है ह्न ऐसा ज्ञान होना भी राग का कारण नहीं है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र ऐसे गुणभेद आत्मा में हैं, इसीलिए राग होता है ह्न ऐसा नहीं है। ऐसे गुण आत्मा में अनन्त हैं, अनन्तों का ज्ञान जीव करे, किन्तु उससे राग नहीं होता।

जिस तरह द्रव्य-गुण-पर्याय राग का कारण नहीं है, उसी तरह द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान भी राग का कारण नहीं है।

भेद और अभेद दोनों वस्तु का स्वभाव है। पर्याय के कारण अथवा भेद के कारण राग होता हो तो केवली को भी राग होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। रागी जीव को अपनी योग्यता और भूमिकानुसार राग वर्तता है; इसीलिए राग होता है। इस राग को तोड़ने के लिए अभेद तरफ दृष्टि करना और स्थिरता करना चाहिए।

प्रश्न :ह्न प्रवचनसार में द्रव्य-गुण-पर्याय को भिन्न-भिन्न जानना, वह ज्ञान की निर्मलता और वीतरागता का कारण कहा है और नियमसार में द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद करने को पराधीन आवश्यक क्रिया कहा है। जीव ऐसे भेद में रुकता है, तब तक उसे निश्चय आवश्यक नहीं होता ह्न ऐसा कहा है तो इन दोनों कथनों में तो विशेष है?

उत्तर :ह्न प्रवचनसार में भेद करके जो ज्ञान कराया है, वह प्रशम के लक्ष्य से कहा है, किन्तु राग बढ़ाने के लिए नहीं कहा। स्वज्ञेय तथा परज्ञेयों को यथार्थ जाने तो स्वभाव की महिमा आती है। जाने बिना किसकी प्रतीति करेगा, किसमें ठहरेगा? अर्थात् प्रवचनसार में ज्ञानप्रधान कथन से सम्यक्त्व की व्याख्या है और नियमसार में ऐसा कहा है कि भेद को जानने के बाद यदि भेद में अटक कर भेदबुद्धि में रुक जायेगा तो तुझे धर्म नहीं होगा। यहाँ भेद-बुद्धि का और राग का निषेध कराया है, किन्तु द्रव्य-गुण-पर्याय के ज्ञान का निषेध नहीं कराया। वहाँ भेदबुद्धि और राग का निषेध कराकर अभेद आत्मा में ठहर; ऐसे अखण्ड की प्रतीति कराने के लिए श्रद्धा प्रधान कथन है, इसीलिए दोनों में विरोध नहीं है; जहाँ जैसा है, वैसा समझना चाहिए। ●

प्रवचनसार गाथा १०७

अब, अतद्भाव को उदाहरण द्वारा स्पष्टरूप से बतलाते हैं :ह्न

सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओ त्ति वित्थारो।
जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो॥१०७॥

(हरिगीत)

सत् द्रव्य सत् गुण और सत् पर्याय सत् विस्तार है।
तदरूपता का अभाव ही तद्-अभाव अर अतद्भाव है ॥१०७॥

अन्वयार्थ :ह्न [सत् द्रव्यं] सत् द्रव्य [सत् च गुणः] सत् गुण [च] और [सत् च एव पर्यायः] सत् पर्याय ह्न [इति] इसप्रकार [विस्तारः] (सत्तागुण का) विस्तार है। [यः खलु] (उनमें परस्पर) जो [तस्य अभावः] उसका अभाव अर्थात् उस रूप होने का अभाव है [सः] वह [तदभावः] तद्-अभाव [अतद्भावः] अर्थात् अतद्भाव है।

टीका :ह्न जैसे एक [1]मोतियों की माला हार के रूप में, सूत्र (धागा) के रूप में और मोती के रूप में ह्न (त्रिधा) तीन प्रकार से विस्तारित की जाती है; उसीप्रकार एक द्रव्य, द्रव्य के रूप में, गुण के रूप में और पर्याय के रूप में ह्न तीन प्रकार से विस्तारित किया जाता है।

और जैसे एक मोतियों की माला का शुक्लत्व गुण, शुक्ल हार, शुक्ल धागा और शुक्ल मोती ह्न ऐसे तीन प्रकार से विस्तारित किया जाता है, उसीप्रकार एक द्रव्य का सत्तागुण, सत् द्रव्य, सत्गुण और सत्पर्याय ह्न ऐसे तीन प्रकार से विस्तारित किया जाता है।

और जिस प्रकार एक मोतियों की माला में जो शुक्लत्व गुण है; वह हार नहीं है, धागा नहीं है या मोती नहीं है और जो हार, धागा या मोती है, वह शुक्लत्व गुण नहीं है; इसप्रकार एक-दूसरे में जो उसका अभाव

१. मोतियों की माला = मोती का हार, मौक्तिकमाला।

अर्थात् तद्रूप होने का अभाव है, वह तद्-अभाव लक्षण अतद्भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है। इसीप्रकार एक द्रव्य में जो सत्तागुण है, वह द्रव्य नहीं है, [1]अन्य गुण नहीं है या पर्याय नहीं है; और जो द्रव्य, अन्य गुण या पर्याय है, वह सत्तागुण नहीं है। इसप्रकार एक-दूसरे में जो उसका अभाव अर्थात् तद्रूप होने का अभाव है, वह [2]तद्-अभाव लक्षण अतद्भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है।

भावार्थ :ह्न एक आत्मा का विस्तार कथन में आत्मद्रव्य के रूप में ज्ञानादिगुण के रूप में और सिद्धत्वादि पर्याय के रूप में ह्न तीन प्रकार से वर्णन किया जाता है। इसीप्रकार सर्व द्रव्यों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

और एक आत्मा के अस्तित्व गुण को 'सत् आत्मद्रव्य', सत् ज्ञानादिगुण और सत् सिद्धत्वादि पर्याय ह्न ऐसे तीन प्रकार से विस्तारित किया जाता है; इसीप्रकार सर्व द्रव्यों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

और एक आत्मा का जो अस्तित्व गुण है, वह आत्मद्रव्य नहीं है; (सत्ता गुण के बिना) ज्ञानादिगुण नहीं है या सिद्धत्वादि पर्याय नहीं है; और जो आत्मद्रव्य है, (अस्तित्व के सिवाय) ज्ञानादिगुण है या सिद्धत्वादि पर्याय है, वह अस्तित्व गुण नहीं है ह्न इसप्रकार उनमें परस्पर अतद्भाव है, जिसके कारण उनमें अन्यत्व है। इसीप्रकार सभी द्रव्यों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

इसप्रकार इस गाथा में सत्ता का उदाहरण देकर अतद्भाव को स्पष्टतया समझाया है।

(यहाँ इतना विशेष है कि जो सत्ता गुण के सम्बन्ध में कहा है, वह अन्य गुणों के विषयों में भी भलीभाँति समझ लेना चाहिए। जैसे कि :ह्न सत्ता गुण की भाँति एक आत्मा के पुरुषार्थ गुण को पुरुषार्थी आत्मद्रव्य, पुरुषार्थी ज्ञानादिगुण और पुरुषार्थी सिद्धत्वादि पर्याय ह्न इसप्रकार

१. अन्यगुण = सत्ता के अतिरिक्त दूसरा कोई भी गुण।
२. तद्-अभाव = उसका अभाव; (तद्-अभाव = तस्य अभावः) तद्भाव अतद्भाव लक्षण (स्वरूप) है; अतद्भाव अन्यत्व का कारण है।

विस्तारित कर सकते हैं। अभिन्नप्रदेश होने से इसप्रकार विस्तार किया जाता है, फिर भी संज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि भेद होने से पुरुषार्थ गुण को तथा आत्मद्रव्य को, ज्ञानादि अन्य गुण और सिद्धत्वादि पर्याय को अतद्भाव है, जो कि उनमें अन्यत्व का कारण है।

गाथा १०७ पर प्रवचन

द्रव्य तथा गुण के प्रदेश भेद नहीं होने पर भी संज्ञा, संख्या, लक्षणभेद से भेद है ह्न यह गाथा १०६ में कहा था और अब अतद्भाव को गाथा १०७ में स्पष्ट करते हैं।

एक आत्मा की सत्ता दूसरे आत्मा और अन्य द्रव्यों की सत्ता से भिन्न है, वह किसी के साथ एकमेक नहीं है। सत्ता गुण का तीन प्रकार से विस्तार किया गया है। शक्तिवान, शक्तियाँ और अंश ह्न तीनों एक होकर सत् अखण्ड द्रव्य है; फिर भी उनमें परस्पर अतद्भाव है। जो द्रव्य है, वह गुण अथवा पर्याय नहीं है; जो गुण है, वह द्रव्य अथवा पर्याय नहीं है और जो पर्याय है, वह द्रव्य अथवा गुण नहीं है। उसरूप होने का अभाव ही अतद्भाव है।

ऐसा वस्तु का स्वभाव यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान का कारण है। अनन्त द्रव्य, गुण और पर्यायों का ज्ञान करना राग का कारण नहीं है। भेदबुद्धिवाला रागी जीव राग करता है तो द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद राग का कारण है ह्न ऐसा आरोप किया जाता है। अरागपने द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान करें तो वह राग का कारण नहीं है।

समयसार की सातवीं गाथा में कहा है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र ह्न ऐसे भेद व्यवहार से हैं और निश्चय से ज्ञान, दर्शन, चारित्र ह्न ऐसा भेद आत्मा में नहीं है। गुण-गुणी भेद में रुकने से सम्यक्त्व नहीं होता ह्न इसलिए वहाँ ऐसा कहा है और यहाँ प्रवचनसार में कहा है कि द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत् ह्न ऐसे द्रव्य में तीन भेद करना ज्ञान की निर्मलता का कारण है। तो फिर दोनों शास्त्रों में विरोध होगा? नहीं! क्योंकि किसी भी शास्त्र में विरोध कथन नहीं हो सकता।

रागी जीव को भेदबुद्धि - रागपने की बुद्धि वर्तती है, उसे स्वरूप में एकाकार करने के लिए और भेद का लक्ष्य छुड़ाने के लिए समयसार में वह कथन किया है। रागी जीव राग करता है, इसीलिए भेद के ऊपर राग का आरोप किया जाता है तथा मैं अभेद हूँ ह्न ऐसा जो विकल्प उठता है, वह भी स्वभाव में नहीं है। ज्ञानी जीव स्वभाव की ओर ढलता है। तब यह स्वभाव है और मुझे इसकी भावना भानी है ह्न ऐसा भेद स्वानुभव के समय नहीं होता; निर्विकल्प अनुभूति में तो एकाकार, अभेदता है।

प्रवचनसार में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का विस्तार बताया है और वह प्रशम के लक्ष्य से ज्ञान की निर्मलता-निर्विकल्पता का कारण है ह्न ऐसा बताया है।

वस्तु का स्वभाव भेदरूप है। भेद स्वभाव राग का कारण नहीं है। वस्तु में भेद अथवा पर का ज्ञान होता है ह्न इस कारण राग नहीं होता, अपितु रागी जीव को अपनी राग की योग्यता के कारण राग होता है। ज्ञान और ज्ञेय राग का कारण नहीं है।

जो जीव राग करता है, उसे गुण-भेद के कारण राग हुआ ह्न ऐसा आरोप किया जाता है। ज्ञानी अपने ज्ञायक स्वभाव में ठहर नहीं सकता, तब तक प्रशम के लक्ष्य से निर्मलता करने के लिए ज्ञान की वृद्धि करता है। यह मात्र शास्त्र के पन्नों का अथवा शुभराग का अभ्यास नहीं है। अकषाय भाव के लक्ष्य से जो अभ्यास है, वही ज्ञान की वृद्धि का कारण है।

भेदबुद्धि छोड़कर अभेद-अखण्ड ज्ञान प्राप्त करना, यह ज्ञानी का उपदेश है। द्रव्य में द्रव्य-गुण-पर्याय भेद पर्यायबुद्धि से पड़ते हैं; इन भेदों का ज्ञान छोड़ना ह्न ऐसा यहाँ नहीं कहा है। ज्ञेयों की अनेकता भी ज्ञान में आती है, यह कोई राग का कारण नहीं है। रागी जीव भेद का लक्ष्य करता है, तब उसे अपनी योग्यता के कारण राग होता है; इसलिए अभेद पर लक्ष्य कर ऐसा कहा गया है।

इस गाथा में सत्ता गुण का उदाहरण दिया है, इसी तरह अन्य गुण भी

विस्तार को प्राप्त हुए हैं ह्न ऐसा समझना चाहिए।

एक गुण द्रव्य नहीं है और वह दूसरा गुण अथवा पर्याय नहीं है ह्न इस कारण उनमें अतद्भाव है। सम्पूर्ण द्रव्य एक गुण में नहीं आता। वस्तु तो अनेक गुणों का पिण्ड है ह्न इसतरह अतद्भाव है, किन्तु उनमें क्षेत्र भेद नहीं है।

यदि एक गुण गुणीरूप हो जाये तो एक गुण में से दूसरे गुण का लाभ मिलना चाहिए; किन्तु ऐसा नहीं होता। लाभ तो ध्रुवद्रव्य की दृष्टि से मिलता है। एक गुण पर दृष्टि करने से अनेक गुण निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। एक गुण, गुणी नहीं है और गुणी में एक गुण मात्र नहीं होता। परमाणु में सत्ता गुण सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है और सम्पूर्ण द्रव्य सत्ता गुण में नहीं आ जाता।

यह आत्मा परमात्मा (परम आत्मा) है, इसमें परम-अणु (परमाणु) नहीं है और जड़ परमाणु में परम आत्मा नहीं है, दोनों में भिन्न भाव वर्तता है ह्न ऐसा भेदज्ञान करना वीतरागता का कारण है।

सत्ता गुण सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है; क्योंकि द्रव्य तो गुणवाला पदार्थ है। एक-गुण है, वह अनन्त गुण नहीं है; अनन्त गुण है, वह एक गुण नहीं है। अपने द्रव्य में ऐसा भेदज्ञान, ज्ञान की विशेष निर्मलता कराता है, किन्तु वह राग का कारण नहीं है, अपितु राग से छूटने का अर्थात् वीतरागता का कारण है, मलिनता से छूटने का और निर्मलता उत्पन्न करने का कारण है।

जो जीव गुण-गुणी को सर्वथा एक मानते हैं ह्न ऐसे अज्ञानी जीव को निर्विकल्पता का निमित्त कारण जो यथार्थ ज्ञान है, वह भी नहीं है; यथार्थ ज्ञान ही अनुभव का कारण है।

सम्यग्दृष्टि जीवों को अन्तर अनुभव के समय गुण-गुणी में कथंचित् भेद है ह्न ऐसा सम्यग्ज्ञान वर्तता है; किन्तु गुण-गुणी सर्वथा एक हैं ह्न ऐसा ज्ञान नहीं वर्तता। द्रव्य में अनेक ज्ञेय जानने में आते हैं, इस अनेकता का ज्ञान राग का कारण नहीं है। भेदबुद्धि छुड़ाने के लिए और अभेदबुद्धि कराने के लिए अर्थात् अभेद में बुद्धि स्थापित करने के लिए समयसार की

सातवीं गाथा में कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुणों का भेद नहीं करना।

जीव ज्ञान से सभी ज्ञेयों को जाने इसमें आपत्ति नहीं है। ज्ञान का स्वभाव तो जानने का ही है। एक अभेद आत्मा को जाने तो राग न हो; किन्तु अनेक को जाने तो राग हो ह्न ऐसा वस्तुस्वरूप ही नहीं है।

राग को छोड़ने में निर्विकल्पता है, भेद का ज्ञान छोड़ने में निर्विकल्पता नहीं है, ज्ञान में से भेदभाव निकाल देना ह्न यह निर्विकल्पता का कारण नहीं है। द्रव्य, गुण और पर्याय में अतद्‌भाव है। ये जैसे हैं, वैसा उनका ज्ञान वर्त रहा है। जैसे आत्मा और अन्य द्रव्य बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं, वैसे द्रव्य और गुण सर्वथा भिन्न भी नहीं है; क्योंकि दोनों के प्रदेश एक ही हैं तथा द्रव्य और गुण एकदम अभिन्न भी नहीं हैं; क्योंकि उनमें संज्ञा, संख्या, लक्षण आदि भेद से भेद हैं।

एक मोती की माला का हाररूप से, धागारूप से और मोतीरूप से ह्न तीन प्रकार से विस्तार किया जाता है।

आत्मा और परमाणु पृथक्-पृथक् वस्तु हैं। आत्मा परमाणु को बदल नहीं सकता; क्योंकि एक की सत्ता दूसरे की सत्ता में व्यापक नहीं है, लेकिन अपनी सत्ता अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापक नहीं है ह्न ऐसा नहीं है अर्थात् वह तीनों में व्यापक है। शक्तिमानरूप से, शक्तिरूप से और अंशरूप से ह्न इस तरह सम्पूर्ण वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय की पिण्ड है, वह तीनों में विस्तृत है।

ज्ञान की निर्मलता करने के लिए तीन भेद किये जाते हैं। अपेक्षा समझना चाहिए। भेदों का ज्ञान राग नहीं कराता। अतः भेदों का ज्ञान ही नहीं करना ह्न ऐसा नहीं है।

एक सत्ता तीनों में व्याप्त है ह्न यह बताते हैं।

एक द्रव्य का विस्तार द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से किया जाता है। द्रव्य अकेले द्रव्य में नहीं, किन्तु गुण और पर्याय में भी व्याप्त है।

द्रव्य और गुणों की सत्ता ध्रुव है और पर्याय की सत्ता एक समय की है। यदि उस समय की सत्ता पर्याय में न हो तो पर्याय है ह्न ऐसा कौन निर्णय करेगा? यदि द्रव्य हो और उसके अंश न हों तो वस्तु ही सत् नहीं रहती। पर्याय अंशरूप से है तो ही सम्पूर्ण वस्तु सिद्ध होती है। किसी भी समय वर्तमान अंश न हो तो द्रव्य ही नहीं रहेगा।

द्रव्य अंश रहित हो तो द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। प्रति समय तीनों अंशों की अखण्ड व्यापकता है।

द्रव्य, द्रव्य सामान्य में है; गुण-गुणों में है और द्रव्य पर्याय में है। मोती के हार के समान द्रव्य तीनों में व्याप्त है।

आत्मा अबन्धस्वभावी निवृत्त तत्त्व है। यह जीव उसका तो ज्ञान नहीं करता और पुण्य और विकार में अपने अज्ञान के कारण रुक जाता है। पुण्य में सर्वस्व मान लेनेवाले जीव को अपने स्वतंत्र अविकारी होने का और विकारी भाव से छूटने का अवसर नहीं रहता। भाई! तेरी सत्ता कैसी है, यह समझ! तो तुझे तेरी महिमा आयेगी।

एक सत्ता द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्याप्त है।

सत्ता, गुण के ही अस्तित्व को सिद्ध करे तो द्रव्य और पर्याय सिद्ध नहीं होती।

सत्ता, पर्याय के अस्तित्व को ही सिद्ध करे तो द्रव्य और गुण सिद्ध नहीं होते।

सत्ता, द्रव्य-गुण के ही अस्तित्व को सिद्ध करे तो पर्याय सिद्ध नहीं होती।

अतः एक सत्ता द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्याप्त है और तीनों को सिद्ध करती है।

मोती की माला के सफेदी गुण का सफेद हार, सफेद धागा और सफेद मोती ह्न तीन प्रकार से विस्तार किया जाता है। सफेदी अकेले हार में नहीं है, अकेले धागे में नहीं है अथवा अकेले मोती में नहीं है, अपितु तीनों में व्याप्त है। इसीतरह सत्ता गुण द्रव्य में है, दूसरे गुणों में है और

पर्याय में है। आत्मा की सत्ता परपदार्थों में नहीं है, किन्तु अपने द्रव्य-गुण पर्याय में अभेद है। अखण्ड सत्ता भूमि का क्षेत्र तीनों में व्याप्त है। ऐसी सत्ता का सही ज्ञान होने से पर में अहंकार समाप्त हो जाता है और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है।

अपनी सत्ता निमित्त की सत्ता में नहीं है और निमित्त की सत्ता अपनी सत्ता में नहीं है ह्न ऐसे ज्ञान बिना धर्म का निर्णय किसतरह किया जा सकता है?

यहाँ तक तो सत्तागुण तीनों में व्याप्त है, यह बात की है; अब द्रव्य, गुण और पर्याय में परस्पर अतद्‌भाव है, यह बात करते हैं।

एक मोती की माला में जो सफेदीगुण है, वह हार नहीं है, वह धागा नहीं है अथवा वह मोती नहीं है और जो हार, धागा अथवा वह मोती है, वह सफेदीगुण नहीं है ह्न ऐसा एक-दूसरे में जो उसरूप होने का अभाव है, वह तद्‌अभाव लक्षण अतद्-भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है; इसी तरह का एक द्रव्य में जो सत्ता गुण है, वह द्रव्य नहीं, अन्य गुण नहीं अथवा पर्याय नहीं है।

१. जो सत्ता गुण है, वह द्रव्य नहीं है; क्योंकि द्रव्य तो अनन्त गुणों का पिण्ड है। यदि सत्ता गुण ही द्रव्य हो तो द्रव्य अनन्त गुणों का पिण्ड नहीं हो सकता। इसीलिए सत्तागुण द्रव्य नहीं है। ऐसा होने से गुण का द्रव्य के साथ अतद्‌भाव है।

२. जो सत्ता गुण है, वह अन्य गुण नहीं है :ह्न सत्तागुण अन्य गुण अर्थात् ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप नहीं है। सत्तागुण का अंश अपने में (सत्तागुण में) है, किन्तु अन्य गुणों में नहीं है। ज्ञान का अंश, ज्ञान अंशरूप से बराबर है; किन्तु ज्ञान अंश चारित्र गुण के अंशरूप से अथवा अन्य गुणों में अंश रूप नहीं है, इसीलिए एक गुण का अन्य गुण के साथ अतद्‌भाव है।

३. जो सत्ता गुण है, वह पर्याय नहीं है :ह्न एक गुण एक पर्याय में ही आ जाता हो तो दूसरे समय दूसरी पर्याय प्रगट नहीं हो सकती और पर्याय

के व्यय होने के साथ ही उस गुण के भी नाश का प्रसंग आ जाएगा, किन्तु ऐसा नहीं होता। गुण में से तो अनेक पर्यायें प्रगट होती हैं; इसीलिए गुण, पर्याय जितना ही नहीं है। अतः गुण का पर्याय के साथ अतद्‌भाव है। इसीलिए जो सत्तागुण है, वह द्रव्य नहीं है, वह अन्य गुण नहीं है; इसी तरह वह पर्याय भी नहीं है और जो द्रव्य है, वह सत्ता गुण नहीं है, अन्य गुण है, वह सत्तागुण नहीं है और जो पर्याय है, वह सत्तागुण नहीं है; इसतरह एक-दूसरे में उसरूप होने का अभाव है अर्थात् अतद्‌भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है। सत्ता गुण के दृष्टांत से प्रत्येक गुण का द्रव्य के साथ; अन्य गुणों के साथ और पर्याय के साथ अतद्‌भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है ह्न ऐसा समझना चाहिए।

द्रव्यसत्ता ह्न द्रव्य सत्तारूप से है और वह गुणसत्ता तथा पर्यायसत्ता रूप से नहीं है।

गुणसत्ता ह्न गुण सत्तारूप से है और वह द्रव्यसत्ता तथा पर्यायसत्ता रूप से नहीं है।

पर्यायसत्ता ह्न पर्याय सत्तारूप से है और वह द्रव्यसत्ता तथा गुणसत्ता रूप से नहीं है।

द्रव्य, गुण और पर्याय में संज्ञा, संख्या, लक्षणभेद से भेद है; किन्तु उनमें प्रदेशभेद नहीं है। ऐसा अनेकान्त स्वभाव समझना; ज्ञान, सुख और धर्म का कारण है।

प्रश्न ह्न इतना सब ज्ञान करें तो ज्ञान को आराम कब मिलेगा ?

उत्तर ह्न भाई ! अपने अमर्यादित ज्ञानस्वभाव को संकुचित करके अल्प करना आराम नहीं है। वह जीव तो अपने ज्ञान को ढंकता है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव तो अखण्डरूप से अपने को परिपूर्ण जानने का है और तीनों काल, तीनों लोक के पदार्थों को एक ही समय में जानने का है ह्न ऐसे स्वभाव की सामर्थ्य की महिमा आना चाहिए।

इतनी शक्तिवाला ज्ञानस्वभाव है ह्न ऐसी श्रद्धा करना दृष्टि का आराम है और परिपूर्ण स्वभाव में अभेद होना परिपूर्ण आराम है।

प्रश्न :ह्न ऐसा ज्ञान कहाँ तक करेंगे?

उत्तर :ह्न ज्ञान की उपेक्षा करके उसे संकुचित करने में ज्ञान को आराम नहीं मिलता। बहुत सुना हो तो भी स्वलक्ष्य से विशेष ज्ञान होने पर ज्ञान की संकुचितता घटती है और ज्ञान विकसित होता है; तथा राग भी घटता है और वीतरागता बढ़ती है, यह ज्ञान और चारित्र का आराम है। ज्ञान का पेट बहुत बड़ा है। सम्पूर्ण लोकालोक उसमें समा जायें ह्न विशाल पेटवाला है और सभी प्रकार की उलझनों को निकाल दे ह्न ऐसा है।

इस तरह स्वज्ञेय को द्रव्यसत्ता, गुणसत्ता, पर्यायसत्ता से यथार्थरूप से जानना सम्यग्ज्ञान का और धर्म का कारण है।

अनंत आत्मा और परमाणु भिन्न-भिन्न हैं और एक-एक वस्तु में तीन भेद पड़ते हैं। सभी आत्माएँ और परमाणु मिलकर एक द्रव्य नहीं है, किन्तु द्रव्य, गुण और पर्याय ह्न ऐसा तीन प्रकार से अन्यत्व एक ही वस्तु में है।

आत्मा का शरीर के ऊपर स्वामित्व नहीं है; क्योंकि दोनों पृथक् हैं; परन्तु आत्मा में द्रव्य, गुण और पर्याय में अतद्भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है। एक आत्मा में भिन्न-भिन्न तीन भाग हैं, इसमें जो एक भाग है, वह दूसरा भाग नहीं है; फिर भी उनमें प्रदेशभेद नहीं है। जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है और जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है ह्न ऐसे अन्यत्व के कारण उनमें अतद्भाव है।

द्रव्य विशेष्य है और गुण विशेषण है। द्रव्य अन्वयरूप त्रिकाली शक्ति का पिण्ड है और ज्ञानादिगुण आत्मा की शक्तियाँ हैं और जो सिद्धत्व आदि अंश हैं, वे वर्तमान वर्तती पर्यायें हैं। प्रत्येक संसारी और सिद्ध परमात्मा को इसतरह तीन प्रकार से वर्णन किया गया है।

कितने ही जीव मानते हैं कि संसारदशा में तो जीव पृथक्-पृथक् रहते हैं, किन्तु मोक्ष होने के पश्चात् सभी एक में मिल जाते हैं, किन्तु उनकी ये मान्यता झूठी है; क्योंकि वहाँ भी प्रत्येक सिद्ध जीव पृथक्-पृथक् रहते हैं। प्रत्येक सिद्ध आत्मा का भी तीन प्रकार से वर्णन किया गया है। सामान्य द्रव्य, ज्ञान-दर्शनादि शक्तियाँ और सिद्धत्व अवस्था ह्न

इसप्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय अतद्भाव रूप से वर्त रहे हैं।

अज्ञानी तर्क करता है कि सर्व व्यापक का ध्यान करें तो निर्विकल्पता होगी; किन्तु भाई! तेरे स्वरूप की समझ बिना सच्चा ध्यान हो ही नहीं सकता। एक समय के केवलज्ञान की शक्ति तीन काल एवं तीन लोक के पदार्थों को जानने की है, फिर भी यह अंश तो एक समय मात्र का है और एक ज्ञानगुण की पर्याय है; ऐसे अनन्तज्ञानादि गुणों का पिण्ड, वह द्रव्य है।

पर्याय गुण नहीं है, गुण द्रव्य नहीं है और द्रव्य पर्याय नहीं है ह्न ऐसा परस्पर अतद्भाव समझकर तीनों का यथार्थ ज्ञान करके अभेद सामर्थ्यवान अखण्डानन्द की प्रतीति करें तो यथार्थ दृष्टि होगी और धर्म होगा।

इस ज्ञान के बिना सच्चा ध्यान नहीं होता। आत्मा सामान्य द्रव्यरूप से, ज्ञानादि गुणरूप से और सिद्धत्व आदि पर्यायरूप से त्रिधा विस्ताररूप कहा गया है। इसीप्रकार सभी द्रव्यों का स्वरूप समझना चाहिए।

एक आत्मा के अस्तित्व गुण का द्रव्य के अस्तित्व में, दर्शनादि गुणों के अस्तित्व में और सिद्धत्वादि पर्यायों के अस्तित्व में विस्तार किया गया है।

द्रव्य में केवल एक गुण अर्थात् एक सत्तागुण, चारित्रगुण, दर्शनगुण नहीं है; किन्तु अनन्त गुण हैं तथा एक सत्ता एक ही पर्याय में नहीं है, अपितु सभी पर्यायों में है। अपनी सत्ता अन्य द्रव्य में नहीं है, इसी तरह वह अन्य के कारण नहीं है तथा एक ही पर्याय में रहे ह्न इतनी ही मात्र सत्ता नहीं है; परन्तु द्रव्य, गुण, पर्याय ह्न तीनों में सत्ता व्याप्त है।

एक आत्मा का जो अस्तित्व गुण है, वह आत्मद्रव्य नहीं; ज्ञानादि गुण नहीं, वह सिद्धत्वादि पर्याय नहीं है तथा जो आत्मा द्रव्य है, ज्ञानादि गुण है अथवा सिद्धत्वादि पर्याय है, वह अस्तित्व गुण नहीं है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय में परस्पर अतद्भाव है।

यहाँ इतना विशेष है कि जो सत्तागुण के विषय में कहा है, वह अन्य गुणों के विषय में भी समझना; जैसे कि वीर्यगुण, आत्मद्रव्य में है; अन्य ज्ञानादि गुणों में भी है और सिद्धत्वादि पर्यायों में भी है; इसीप्रकार प्रत्येक

गुण का विस्तार किया जा सकता है; फिर भी संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा होने से वीर्यगुण का द्रव्य तथा पर्याय के साथ अतद्भाव है, जो कि अन्यत्व का कारण है। अभेद प्रदेश होने पर भी वीर्यगुण में संपूर्ण आत्मा नहीं आता, इसीतरह वीर्यगुण अन्य गुणरूप नहीं होता, इसीतरह वीर्यगुण पर्याय मात्र ही नहीं है। इसप्रकार इनमें अतद्भाव है।

इसीप्रकार परमाणु में उसका द्रव्य, उनके स्पर्शादि गुण और उनकी अवस्था में प्रदेशभेद नहीं है तो भी द्रव्य एक स्पर्श गुण में नहीं होता और स्पर्श गुण अन्य गुणरूप नहीं होता और एक अवस्था मात्र सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है, इसप्रकार इनमें परस्पर अतद्भाव है।

निश्चयाभासी जीव को अकेली एकांत मिथ्या निश्चय की बात अर्थात् एकांत अद्वैतवाद अच्छा लगता है, किन्तु द्रव्य-गुण-पर्याय में बहुत भेद (विस्तार) है ह्न ऐसा कहकर वह यथार्थ ज्ञान नहीं करता और ज्ञान के प्रति अरुचि बताता है।

अज्ञानी जीव कहता है कि मनुष्य मरने के बाद अनन्त में समा जाता है, किन्तु भाई! प्रत्येक सिद्ध की सत्ता सिद्ध अवस्था में भिन्न-भिन्न है।

जो जीव केवलदशा को प्राप्त करते हैं, वे जीव मृत्यु के समय असाध्य नहीं होते; उनका शरीर रोगी नहीं होता, परन्तु उनका शरीर तो स्फटिक जैसा होता है; उन्हें आहार नहीं होता, शरीर के ऐसे लक्षण होते हैं तथा अन्तर में अनन्त चतुष्टय, केवलज्ञान तथा वीतरागता प्रगट हो गई है, वैसी दशा केवलज्ञानी की होती है। ऐसे लक्षण केवलज्ञान पानेवाले जीवों के होते हैं।

साधक जीव प्रत्येक आत्मा और परमाणु की पृथक् सत्ता मानते हैं और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सकता है ह्न ऐसा नहीं मानते। अपनी सत्ता पर में नहीं व्याप्त होती, किन्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त होती है; फिर भी द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में परस्पर अतद्भाव है ह्न साधक जीव ऐसा मानकर आत्मज्ञान सहित समाधिमरण पूर्वक देह छोड़ते

हैं और स्वर्गादिक में जाकर एकावतारी होकर फिर केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय के यथार्थ ज्ञान बिना अज्ञानी जीव कहता है कि किसी जीव ने भगवान की प्रार्थना करते-करते देह छोड़ी और परमधाम को प्राप्त किया। तो उससे पूछते हैं कि भाई देह क्या है? प्रार्थना क्या है? इत्यादि का सही ज्ञान करना चाहिए। देह तो जड़ और परवस्तु है, प्रार्थना तो शुभ, विकृत अवस्था है। आत्मा देह तथा इस शुभ रूप विकृत अवस्था से भिन्न है और पुण्य से धर्म नहीं होता ह्न ऐसे सम्यग्ज्ञान पूर्वक आत्मा में रमणता चारित्र है। ऐसे सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो जीव अपने को अपने में जोड़ता है, वह जीव योगी है; इसीलिए अपने स्वज्ञेय का यथार्थ अभ्यास करना चाहिए।

श्री नियमसार में कहा है कि द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद में जो मुनि रुकते हैं; उन्हें परावश्यक है, किन्तु निश्चय आवश्यक नहीं है। वहाँ ऐसा कहने का भावार्थ यह है कि जीव वहाँ राग और भेदबुद्धि में रुकता है, इसीलिये राग तथा भेदबुद्धि का नाश करने के लिए और अभेद चैतन्य में ढलने के लिए वैसा कहा है, इसीलिये अभेददृष्टि रखकर ज्ञान की विशेष निर्मलता करना तथा स्वज्ञेय और परज्ञेय को अनेक पहलुओं से प्रशम के लक्ष्य से जानना राग का कारण नहीं है।

यह ज्ञेय अधिकार है, इसीलिये स्वज्ञेय और परज्ञेय का भेद करके यथार्थ ज्ञान करना सम्यग्दर्शन तथा वीतरागता का कारण है ह्न ऐसा यहाँ बताया गया है। ●

मैं तो अरस, अरूपी ज्ञानानन्द-स्वभावी आत्मा हूँ ह्न जो अनादि-अनन्त है, अजर-अमर है, न कभी जन्मता है और न कभी मरता है। जन्मना-मरना तो पर्याय पलटने को कहते हैं। मैं मात्र पर्याय नहीं हूँ। जिसमें से पर्याय आती है, मैं तो ऐसा त्रैकालिक पदार्थ हूँ।

ह्न सत्य की खोज, पृष्ठ-८८

प्रवचनसार गाथा १०८

अब, सर्वथा अभाव वह अतद्‌भाव का लक्षण है, इसका निषेध करते हैं :ह्न

जं दव्वं तं ण गुणो जो वि गुणो सो ण तच्चमत्थादो।
एसो हि अतब्भावो णेव अभावो त्ति णिद्दिट्ठो॥१०८॥

(हरिगीत)

द्रव्य वह गुण नहीं अर गुण द्रव्य ना अतद्भाव यह।
सर्वथा जो अभाव है वह नहीं अतद्भाव है॥१०८॥

अन्वयार्थ :ह्न [अर्थात्] स्वरूप अपेक्षा से [यद् द्रव्यं] जो द्रव्य है [तत् न गुणः] वह गुण नहीं है, [यः अपि गुणः] और जो गुण है [सः न तत्त्वं] यह द्रव्य नहीं है। [एषः हि अतद्भावः] यह अतद्‌भाव है; [न एव अभावः] सर्वथा अभाव वह अतद्भाव नहीं है; [इति निर्दिष्टः] ऐसा (जिनेन्द्र देव द्वारा) दरशाया गया है।

टीका :ह्न एक द्रव्य में, जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है; जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है ह्न इसप्रकार जो द्रव्य का गुणरूप से अभवन (न होना) अथवा गुण का द्रव्यरूप से अभवन, वह अतद्‌भाव है; क्योंकि इतने से ही अन्यत्व व्यवहार (अन्यत्वरूप व्यवहार) सिद्ध होता है; परन्तु द्रव्य का अभाव गुण है, गुण का अभाव द्रव्य है ह्न ऐसे लक्षणवाला अभाव वह अतद्‌भाव नहीं है। यदि ऐसा हो तो (१) एक द्रव्य को अनेकत्व आ जायेगा, (२) उभयशून्यता (दोनों का अभाव) हो जायेगी अथवा (३) अपोहरूपता आ जायेगी। इसी को समझाते हैं :ह्न

(द्रव्य का अभाव, वह गुण है और गुण का अभाव, वह द्रव्य ह्न ऐसा मानने पर प्रथम दोष इसप्रकार आयेगा :ह्न)

(१) जैसे चेतन द्रव्य का अभाव, वह अचेतन द्रव्य है; अचेतन द्रव्य का अभाव, वह चेतन द्रव्य है ह्न इसप्रकार उनके अनेकत्व (द्वित्व) है, उसीप्रकार द्रव्य का अभाव वह गुण, गुण का अभाव वह द्रव्य ह्न इसप्रकार

एक द्रव्य के भी अनेकत्व आ जायेगा। (अर्थात् द्रव्य के एक होने पर भी उसके अनेकत्व का प्रसंग आ जायेगा।)

(अथवा अपोहरूपता नामक तीसरा दोष इसप्रकार आता है :ह्न)

(२) जैसे सुवर्ण का अभाव होने पर सुवर्णत्व का अभाव हो जाता है और सुवर्णत्व का अभाव होने पर सुवर्ण का अभाव हो जाता है ह्न इसप्रकार उभयशून्यत्व ह्न दोनों का अभाव हो जाता है, उसीप्रकार द्रव्य का अभाव होने पर गुण का अभाव और गुण का अभाव होने पर द्रव्य का अभाव हो जायेगा; इसप्रकार उभयशून्यता हो जायेगी। (अर्थात् द्रव्य तथा गुण दोनों के अभाव का प्रसंग आ जायेगा।)

(३) जैसे पटाभावमात्र ही घट है, घटाभावमात्र ही पट है, (अर्थात् वस्त्र के केवल अभाव जितना ही घट है और घट के केवल अभाव जितना ही वस्त्र है) ह्न इसप्रकार दोनों के अपोहरूपता है, उसीप्रकार द्रव्याभावमात्र ही गुण और गुणाभावमात्र ही द्रव्य होगा ह्न इसप्रकार इसमें भी (द्रव्य-गुण में भी) [1]अपोहरूपता आ जायेगी, (अर्थात् केवल नकाररूपता का प्रसङ्ग आ जायेगा।)

इसलिये द्रव्य और गुण का एकत्व, अशून्यत्व और [2]अनपोहत्व चाहनेवाले को यथोक्त ही (जैसा कहा, वैसा ही) अतद्‌भाव मानना चाहिए।

गाथा १०८ पर प्रवचन

इस ज्ञेय-अधिकार को यथार्थरूप से जाने तो सम्यग्ज्ञानरूपी आँख खुल जाये और वह फिर कभी बन्द ही न हो अर्थात् मिथ्याभाव ही ना रहे। अनन्त द्रव्य, अनन्तगुण और अनन्त पर्यायों को जाने तो भ्रम दूर हो जाये; परन्तु अनादिकाल से जीव परपदार्थों की ही महिमा करने में रुका हुआ है; किसी की कृपा की आशा में ही रुका हुआ है, कोई तो क्रियाकाण्ड में और कोई पुण्य की महिमा में रुक जाते हैं, जिससे उन्हें स्वरूप की

१. अपोहरूपता = सर्वथा नकारात्मकता; सर्वथा भिन्नता। (द्रव्य और गुण में एक-दूसरे का केवल नकार ही हो तो द्रव्य गुणवाला है, यह गुण इस द्रव्य का है ह्न इत्यादि कथन से सूचित किसी प्रकार का संबंध ही द्रव्य और गुण के नहीं बनेगा।)
२. अनपोहत्व = अपोहरूपता का न होना; केवल नकारात्मकता का न होना।

महिमा नहीं आती। पैसा तो आता है और जाता है, किन्तु आत्मा को समझे बिना पर्याय की दरिद्रता नहीं जाती; इसीलिए चैतन्य लक्ष्मी का ही आश्रय करने लायक है।

एक आत्मा का अन्य आत्माओं के साथ तथा एक आत्मा का शरीर के साथ सर्वथा अभाव है; परन्तु अन्य द्रव्य और गुण को तथा गुण और पर्याय को अथवा द्रव्य और पर्याय को एक-दूसरे के साथ सर्वथा अभाव नहीं है।

एक द्रव्य में जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है; जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है ह्न इसप्रकार द्रव्य का गुणरूप नहीं होना और गुण का द्रव्यरूप नहीं होना अतद्‌भाव है, परन्तु द्रव्य का अभाव वह गुण और गुण का अभाव, वह द्रव्य ह्न यह अतद्‌भाव का लक्षण नहीं है। यदि द्रव्य और गुण का सर्वथा अभाव माना जाये अर्थात् परमाणु का तथा रंग का सर्वथा अभाव, अथवा आत्मा का तथा ज्ञानगुण का सर्वथा अभाव माना जाये तो तीन दोष आते हैं :ह्न

१. द्रव्य में अनेकत्व का प्रसंग आयेगा।

२. द्रव्य और गुण दोनों के नाश होने का प्रसंग आयेगा।

३. अपोहरूपता अर्थात् दोनों के केवल अभाव का प्रसंग आ जायेगा।

जीव के स्वज्ञेय के यथार्थ स्वरूप का विचार शान्तिपूर्वक एकाग्रता से करना चाहिए। अपने स्वज्ञेय का विचार करने में इन्द्रियाँ मदद नहीं करतीं तो फिर सगे-सम्बन्धी अथवा देव-गुरु-शास्त्र कैसे मदद करेंगे? जहाँ तक राग का अंश है, वहाँ तक मन का अवलम्बन है; किन्तु इन्द्रियाँ अथवा शरीर का सम्बन्ध नहीं है। आत्मा ज्ञानस्वभाव है ह्न ऐसी दृष्टि ही यथार्थ फल देती है। वर्तमान में भी शरीर तथा इन्द्रिय के अवलम्बन बिना ज्ञान धारा चलती है। शरीर चलता न हो, कमजोर हो गया हो, फिर भी ज्ञान काम कर रहा है। जैसे व्यापार-धन्धे को तथा सगे-सम्बन्धी को याद करता है, वैसे ही तेरा स्वज्ञेय कैसा है, उसे याद कर; बाहर के पदार्थ तो तुझे स्पर्श भी नहीं करते।

आत्मा और जड़ दोनों पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं, दोनों के बीच अभावस्वभाव की मोटी दीवार खड़ी है ह्न ऐसा अभावस्वभाव द्रव्य तथा गुण के बीच में नहीं है। आत्मा और शरीर के बीच जैसा अभावस्वभाव है, वैसा द्रव्य और गुण के बीच माना जाये तो इसमें तीन दोष आते हैं ह्न

(१) द्रव्य के अनेकत्व का प्रसंग :ह्न शरीर का अभाव आत्मा है और आत्मा का अभाव शरीर है, दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। इसप्रकार आत्मा तथा शरीर का अनेकत्व है, किन्तु इसी तरह आत्मा का अभाव वह गुण है और ज्ञानगुण का अभाव वह आत्मा है। यदि ऐसा माना जाये तो एक द्रव्य को अनेकत्व आ जायेगा। अर्थात् द्रव्य एक होने पर भी द्रव्य को अनेकत्व होने का प्रसंग आ जायेगा। शरीर और आत्मा के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं, इसी तरह यदि द्रव्य और गुण के प्रदेश भी पृथक् हों तो द्रव्य अनेक हो जाये। ऐसा अभाव द्रव्य और गुणों के बीच मानना योग्य नहीं है।

(२) उभयशून्यता का प्रसंग :ह्न सोने का अभाव होने पर स्वर्णत्व का अभाव होता है और स्वर्णत्व का अभाव होने पर सोने का भी अभाव हो जाता है। यदि सोना न हो तो सोने के पीलापन, चिकनापन आदि गुण भी नहीं होते। इसी तरह यदि पीलापन, चिकनापन न हो तो सोना भी नहीं होगा। अतः सोना और उसके पीलापन, चिकनापन आदि गुणों का भी अभाव होता है।

इसीतरह द्रव्य का अभाव होने पर गुण का भी अभाव होता है और गुण का अभाव होने पर द्रव्य का भी अभाव होता है। जैसे कि आत्मा का अभाव होने पर ज्ञानगुण का भी अभाव होता है और ज्ञानगुण का अभाव होने पर आत्मा का भी अभाव होता है। जिससे जो अस्तित्व परस्पर रहना चाहिए, वह नहीं रहता। इसीलिए द्रव्य तथा गुण के बीच सर्वथा अभाव मानना योग्य नहीं है।

(३) अपोहरूपता का प्रसंग :ह्न जैसे वस्त्र का अभावमात्र ही घड़ा है और घड़े का अभाव ही वस्त्र है अर्थात् वस्त्र और घड़ा दोनों को सर्वथा

नकारात्मकपना है अर्थात् सर्वथा भिन्नता है; इसीतरह द्रव्य का अभावमात्र गुण हो और गुण का अभाव मात्र द्रव्य हो तो केवल नकाररूपता का प्रसंग आयेगा, जिसे अपोहरूपता का दोष कहा जाता है। आत्मा का अभावमात्र ज्ञान है और ज्ञान का अभावमात्र आत्मा है। यदि ऐसा माना जाये तो आत्मा ज्ञानवाला है और ज्ञान आत्मा का है ह्न ऐसे कथन से आत्मा और ज्ञान का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं बनता, इसीलिए अपोहरूपता नामक दोष होना सही नहीं है।

आत्मा ज्ञानरहित नहीं हो सकता और ज्ञान आत्मा के बिना नहीं हो सकता। स्वभाव स्वभाववान का है। दोनों के एकत्व की इच्छा करनेवाले को, केवल नकारात्मकता की इच्छा नहीं करनेवाले को ह्न जैसा कहा, वैसा अतद्‌भाव मानना योग्य है; किन्तु ऐसे दोषवाला मानना योग्य नहीं है।

आत्मा है तो शरीर है?

नहीं।

शरीर है तो आत्मा है?

नहीं।

एक परमाणु है तो दूसरा परमाणु है?

नहीं।

सत्तागुण है तो आत्मा है?

हाँ।

आत्मा है तो सत्तागुण है?

हाँ।

जहाँ गुण होते हैं, वहाँ गुणी भी होता है और जहाँ गुणी होते हैं, वहाँ गुण होता ही है; फिर भी गुण-गुणी में अतद्‌भाव है। द्रव्य हो अथवा न हो तो भी गुण हो जावें ह्न ऐसा नहीं होता और गुण हो ह्न अथवा न हो, फिर भी द्रव्य हो जावे ह्न ऐसा भी नहीं होता।

अतद्‌भाव होने पर भी गुण, गुणी के बिना चला लेवें और गुणी, गुण के बिना चला लेवें ह्न ऐसा नहीं होता। जीव है तो दुकान है? नहीं, किन्तु दुकान की ममता है तो जीव है, क्योंकि जीव और दुकान पृथक् हैं, किन्तु

जीव का चारित्र गुण पृथक् नहीं है। बाप है तो लड़का है? नहीं, गुरु है तो शिष्य है? नहीं। इसप्रकार दो द्रव्यों की स्वतंत्रता जानना चाहिए।

अनादि से अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मेरे कारण दुकान चलती है और पैसे के कारण सभी झुकते हैं; किन्तु दोनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। अपनी ममता के कारण पैसा नहीं आता और पैसे के कारण ममता नहीं होती, क्योंकि ममता की सत्ता और पैसे की सत्ता भिन्न-भिन्न है।

संसारी जीव और पैसे के बीच अत्यन्त अभाव है ह्न यह बात सही है, किन्तु संसारी जीव को संसार के साथ ममता का अभाव नहीं है। ममता के समय ममता नहीं है ह्न ऐसा कहें तो चारित्र गुण नहीं रहता; क्योंकि ममता आत्मा के चारित्र गुण की पर्याय है।

ममता के समय ममता को न माना जाये तो पर्याय का अभाव मानने पर चारित्र गुण भी नहीं रहता और यदि गुण नहीं है तो गुणी भी नहीं है। इसीलिए गुण-गुणी में परपदार्थ के समान अत्यन्त अभाव नहीं होता। ममता स्वज्ञेय की पर्याय है, ममता के समय ममता रहित द्रव्य नहीं है और द्रव्य के बिना ममता भी नहीं है, किन्तु ममता है तो पैसा है और पैसा है तो ममता है ह्न ऐसा नहीं है।

यदि कुटुम्ब और स्त्री के कारण ममता हो तो कुटुम्ब, स्त्री के वियोग के साथ ही ममता चली जाना चाहिए और ममता के कारण संसार के पदार्थों का अस्तित्व रहता हो तो ममता चले जाने के साथ वे पदार्थ भी दूर हो जाना चाहिए; किन्तु ममता और परपदार्थ के साथ सम्बन्ध नहीं है, अपितु ममता का स्वद्रव्य के साथ सम्बन्ध है।

आत्मा स्वयं विकारी भाव में अटके तो ममता होती है। यथार्थ में वह ऐसी योग्यता से संसार खड़ा करता है। पर्याय में संसार न हो तो प्रगट आनन्द और सुख होना चाहिए और द्रव्य-गुण में ममता हो तो ममता का अभाव होकर सिद्धदशा प्रगट नहीं हो सकती; इसीलिए ममता पर से नहीं होती और द्रव्य-गुण में भी नहीं होती। ऐसा यथार्थ ज्ञान करके द्रव्य-गुण शुद्ध है ह्न ऐसी दृष्टि होने पर ममता का अभाव हो सकता है।

प्राचीन काल में नासमझ स्त्रियाँ सती हो जाती थीं और अपने पति

के पीछे जलकर मर जाती थीं, जो कि बहुत बड़ा अज्ञान है। अपना ज्ञान स्वभाव सत् है, पति के जीव में और मुझमें अत्यन्त अभाव है, उनके प्रदेश और मेरे प्रदेश भिन्न हैं, इसप्रकार यथार्थ ज्ञान करके वियोग के प्रसंग में समाधान करना चाहिए; इसके बदले कुध्यान करके जलकर मरे, वह तो बड़ी असती है। शोक का विकल्प अथवा अन्य कोई कमजोरी का विकल्प आये अर्थात् मरने का विकल्प आये तो ऐसा न करके ज्ञान की विशेष दृढ़ता करना चाहिए।

पैसा मिले तो उसमें जीव आनन्द मानता है, पैसे का मिलना हुआ इसका क्या अर्थ है? तेरी सत्ता में पैसा मिलता है अथवा वह तेरी सत्ता में आता है? पैसा आकाश के एक क्षेत्र से (तेरे क्षेत्र में नहीं) आया है तो तू मानता है कि वह मुझे मिला और यदि वह चला जावे तो तू मानता है कि वह मुझे नहीं मिला; भाई! यह तो तेरी भूल है।

भाई! तुझे पैसा नहीं, अपितु ममता मिली है। पैसे के कारण ममता नहीं मिली, अपितु तू चारित्र-गुण में विपरीत भाव करता है, इसीलिए तुझे ममता मिलती है।

पैसा दिखाई दिया है, वह किसी सत्ता से दिखता है? पैसे की सत्ता से पैसा दिखता है अथवा तेरे ज्ञान की सत्ता से और उसके आधार से दिखता है। अपने ज्ञान की सत्ता के कारण स्व-पर का ज्ञान करता है; पर के कारण ममता नहीं है और पर के कारण ज्ञान नहीं है, किन्तु ज्ञान ज्ञान की सत्ता के कारण है।

अज्ञानी जीव मानता है कि पैसा हो तो पैसे की बहुत गर्मी रहती है, किन्तु भाई! पैसे लेकर बाहर गाँव जाता हो और वहाँ लूटनेवाले आयें; तब ऐसा मानता है कि यदि पैसा साथ नहीं लिया होता तो अच्छा होता, कम से कम जान तो बच जाती। किन्तु भाई! पैसे की सुरक्षा की फिक्र लूटनेवाले के कारण नहीं है और पैसा है तो तुझे मृत्यु का भय आया है ह्न ऐसा भी नहीं है। प्रत्येक पदार्थ की सत्ता पृथक्-पृथक् है। तुझमें जो ममता और भय की परिणति होती है, वह तेरे साथ सम्बन्ध रखती है।

कार चलते हुए रुकती है, वह उसकी क्षेत्रान्तर अवस्था नहीं होनी

थी; इसीलिए वह रुकी है, किन्तु पेट्रोल नहीं था, इसलिए वह नहीं रुकी है। पेट्रोल और मोटर में परस्पर अभाव है। दोनों की सत्ता पृथक्-पृथक् है। कार की स्थिर रहनेरूप अवस्था सत् है। यदि सत् अंश न हो और पेट्रोल के आधार से वह पर्याय हो तो वह अंश सत् नहीं रहता; पर्याय सत् न रहे तो गुण भी सत् नहीं रहता और वह द्रव्य भी नहीं रहता।

यहाँ गुण-गुणी को अभेद बताना है। पेट्रोल और कार में जैसा अभाव है, वैसा अभाव द्रव्य और उसकी स्थिर अथवा क्षेत्रान्तर की पर्याय में नहीं है। यह पर्याय गुण की है और गुण-गुणी का है। सत्, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में है।

पानी गरम हुआ, उसमें ऊष्णता वह पानी की पर्याय है। ऊष्णता में सत्ता है कि नहीं? ऊष्णता की सत्ता अपने कारण है अथवा पर के कारण? अपने कारण है, किन्तु अग्नि के कारण नहीं है। अग्नि है तो ऊष्णता है और ऊष्णता है तो अग्नि को आना पड़ा ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है, यह उसका भ्रम है।

कर्म है तो राग है? नहीं। कर्म का उदय आया, इसीलिए जीव को राग करना पड़ा ह्न ऐसा अज्ञानी मानता है। राग की एक-एक पर्याय सत् है, वह उसके द्रव्य-गुण के साथ सम्बन्ध रखती है, कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं रखती है। राग की अटकी हुई पर्याय चारित्र गुण को बताती है। राग के समय चारित्रगुण राग की अवस्था के बिना नहीं होता और गुण, बिना द्रव्य के नहीं होता। परपदार्थ है तो विकार है, यदि ऐसा माना जाये तो वह तो पड़ा रहता है और विकार का नाश हो जाता है; इसीलिए यह बात असत्य है। राग के समय विकार है तो चारित्र गुण है और चारित्रगुण है तो द्रव्य है। सिद्ध दशा में सिद्ध की पर्याय है तो उनमें गुण है और उनमें गुण है तो गुणी एक द्रव्य भी है।

इसीलिए जो जीव पर के कारण अपने में फेरफार होता है ह्न ऐसा मानते हैं, वे जीव अपने द्रव्य तथा कर्म को और निमित्त की सत्ता को ही नष्ट कर देते हैं; अतः अतद्भाव अर्थात् अन्यत्व यथायोग्य मानना चाहिए। आत्मा का और शरीर का जैसा अभाव है, वैसा अभाव द्रव्य और गुण के बीच नहीं मानना चाहिए। ●

प्रवचनसार गाथा १०१

अब, सत्ता और द्रव्य का गुण-गुणीपना सिद्ध करते हैं :ह्न

जो खलु दव्वसहावो परिणामो सो गुणो सदविसिट्ठो।
सदवट्ठिदं सहावे दव्वं ति जिणोवदेसोयं॥१०१॥

(हरिगीत)

परिणाम द्रव्य स्वभाव जो वह अपृथक् सत्ता से सदा।
स्वभाव में थित द्रव्य सत् जिनदेव का उपदेश यह॥१०१॥

अन्वयार्थ :ह्न [यः खलु] जो, [द्रव्यस्वभावः परिणामः] द्रव्य का स्वभावभूत (उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक) परिणाम है [सः] वह (परिणाम) [सदविशिष्टः गुणः] सत् से अविशिष्ट (सत्ता अभिन्न है ऐसा) गुण है [स्वभावे अवस्थितं] स्वभाव में अवस्थित (होने से) [द्रव्यं] द्रव्य [सत्] है ह्न [इति जिनोपदेशः] ऐसा जो (९९वीं गाथा में कथित) जिनोपदेश है (अयम्) वही यह है। (अर्थात् ९९वीं गाथा के कथन में से इस गाथा में कथित भाव सहज ही निकलता है।)

टीका :ह्न द्रव्य स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से सत् है ह्न ऐसा पहले (९९वीं गाथा में) प्रतिपादित किया गया है और (वहाँ) द्रव्य का स्वभाव परिणाम कहा गया है। यहाँ यह सिद्ध किया जा रहा है कि जो द्रव्य का स्वभावभूत परिणाम है, वही सत् से अविशिष्ट (अस्तित्व से अभिन्न - अस्तित्व से कोई अन्य नहीं ह्न ऐसा) गुण है।

द्रव्य के स्वरूप का वृत्तिभूत ऐसा जो अस्तित्व द्रव्यप्रधान कथन के सत् शब्द से कहा जाता है, उससे अविशिष्ट (उस अस्तित्व से अनन्य) गुणभूत ही द्रव्य स्वभावभूत परिणाम है; क्योंकि द्रव्य की [१]वृत्ति (अस्तित्व) तीन प्रकार के समय को (भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल को) स्पर्शित करती होने से (वह वृत्ति ह्न अस्तित्व) प्रतिक्षण उस-उस स्वभावरूप परिणमित होती है।

१. वृत्ति = वर्तना; अस्तित्व रहना वह; टिकना वह।

(इस प्रकार) प्रथम तो द्रव्य का स्वभावभूत परिणाम है; और वह (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम) अस्तित्वभूत ऐसी द्रव्य की वृत्तिस्वरूप होने से, सत् से अविशिष्ट, द्रव्य विधायक (द्रव्य का रचयिता) गुण ही है। इसप्रकार सत्ता और द्रव्य का गुणगुणीपना सिद्ध होता है।

गाथा १०१ पर प्रवचन

अब सत्ता और द्रव्य का गुण-गुणीपना सिद्ध करते हैं :ह्न

जो द्रव्य का स्वभावभूत (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक) परिणाम है, वह परिणाम सत् से अविशिष्ट (सत्ता से अभिन्न है) गुण है। स्वभाव में अवस्थित होने से द्रव्य सत् है ह्न ऐसा जो ९९वीं गाथा में कहा गया जो उपदेश है, वही यह है। अर्थात् ९९वीं गाथा के कथन में से इस गाथा में कथित भाव सहज ही निकलता है। यह गाथा वस्तु को गुण-गुणी के भेद से रहित अभेदरूप बताती है।

द्रव्य स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से सत् है ह्न ऐसा ९९वीं गाथा में प्रतिपादित किया गया है। परिणाम स्वभाव कूटस्थ नहीं है, किन्तु उसमें समय-समय नई पर्याय होती है, पूर्व पर्याय का व्यय होता है और द्रव्य ध्रुव बना रहता है ह्न ऐसा स्वतंत्र स्वभाव है।

द्रव्य के स्वरूप को त्रिकाल अवस्थित अस्तित्वरूप सत् कहा गया है; अस्तित्व उससे भिन्न नहीं है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों ही सत्ता के अंश हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव द्रव्य में हो रहे हैं, जो पर के कारण नहीं, अपितु सत्तागुण के कारण हैं।

अस्तित्वगुण का उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव है और वह द्रव्य से भिन्न नहीं है; इसीलिये अस्तित्वगुण द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से परिणमित कराता है; गुण रचयिता (रचनेवाला) है, गुणी रचना (रचाया गया) है, गुण-गुणी को रचता है और गुणी गुण से रचा जाता है। गुण सदैव गुणी को स्थिर (बनाये) रखता है।

अपना अस्तित्व पर से भिन्न है, किन्तु स्वयं अपने अस्तित्व गुण से भिन्न नहीं है। अन्य द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव से अपना उत्पाद-

व्यय-ध्रुव स्वभाव नहीं है, किन्तु वह अपनी सत्ता गुण के उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव से स्वयं रचित है। समय-समय उत्पाद-व्यय-ध्रुव न हो तो सत्ता गुण नहीं रहता और रचनेवाला गुण न हो तो रचा जानेवाला द्रव्य भी नहीं रहता। उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम सत्ता बना है, सत्ता गुण द्रव्य का है; इसीलिए गुण-गुणी एक-दूसरे का अवलम्बन लेते हैं।

सत्ता गुण कर्त्ता है और द्रव्य उसका कार्य है; उत्पाद पर्याय कर्त्ता और द्रव्य उसका कार्य है, व्यय पर्याय कर्त्ता है और द्रव्य उसका कार्य है; ध्रुव पर्याय कर्त्ता है और द्रव्य उसका कार्य है ह्न इसतरह परस्पर द्रव्य-गुण-पर्याय में कर्त्ता-कार्यपना है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव के परिणाम धारावाही निरंतर चला करते हैं। यदि वे परिणाम न हों तो सत्ता भी न हो और सत्ता न हो तो गुणी द्रव्य भी नहीं रहता। यहाँ पर्याय जो कि अभिन्न है, उसे कारण कहा है और द्रव्य जो कि नित्य है, उसे कार्य कहा है।

प्रश्न :ह्न अनित्य, नित्य की रचना किस तरह करेगा?

उत्तर :ह्न वर्तमान अंश एक समय का है, यदि उसे न माना जाये तो द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता; यदि एक ही समय के वर्तमान अंश का अभाव करो तो उससे द्रव्य के ही अभाव होने का प्रसंग आ जाता है; इसीलिए अनित्य पर्याय कारण है और द्रव्य कार्य है ह्न ऐसा भी कहा जाता है।

इस गाथा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम अस्तित्व गुण से भिन्न नहीं और अस्तित्व गुण द्रव्य की रचना करता है, यह बताकर गुण-गुणीपने को अभेद सिद्ध किया है।

द्रव्य अपने स्वभाव में नित्य अवस्थित है। प्रत्येक आत्मा और परमाणु अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव में नित्य स्थित हैं। समय-समय नई पर्याय उत्पन्न होती है, पूर्व की पर्याय व्यय होती है और आत्मा अथवा परमाणु ध्रुव रूप से अवस्थित रहता है, इसीलिए सत् कहा जाता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों होकर सम्पूर्ण त्रिकाली अस्तित्व गुण होता है।

गाथा ११ में कहा है कि द्रव्य स्वभाव में सदैव अवस्थित है, इस

कारण यह सत् है। द्रव्य का स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप परिणाम है ह्न ऐसा कहा था; अब यहाँ गाथा १०१ में ऐसा निर्णय किया है कि वही परिणाम अस्तित्व से भिन्न नहीं ह्न ऐसा गुण है, इसीलिए अस्तित्व अर्थात् सत्ता वह गुण है और द्रव्य गुणी है।

द्रव्य के स्वरूप को बनाये रखने का कारण अस्तित्व गुण है। इस अस्तित्व गुण को द्रव्यप्रधान कथन द्वारा सत् शब्द से कहा गया है। द्रव्य का स्वभावभूत परिणाम अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव उस सत् से भिन्न नहीं है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों होकर जो परिणाम हुआ, वही सत्ता है।

आत्मा में मिथ्यात्व की पर्याय का नाश, सम्यक्त्व की पर्याय का उत्पाद और आत्मा का ध्रुवरूप बने रहना, वह स्वभाव परिणाम है और स्वभाव परिणाम वही अस्तित्व गुण है, अन्य कोई नहीं; इसीलिए अस्तित्व गुणस्वरूप ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव रूप परिणाम है। आत्मा सत्ता अर्थात् अस्तित्वरूप परिणमित हो रहा है। इसीलिए सत्ता वह गुण है और आत्मा गुणी है; इसतरह गुण-गुणी का अभेद सम्बन्ध सिद्ध होता है।

गाथा ११वीं में द्रव्य स्वभाव में स्थित हैं ह्न ऐसा कहकर गुण-गुणी की अभेदता बताई है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम में द्रव्य स्थित है, ऐसा कहो अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम जो कि अस्तित्व गुण है, उसमें द्रव्य स्थित है ह्न ऐसा कहो ह्न दोनों का अभिप्राय एक ही है; क्योंकि अस्तित्व गुण स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुवपरिणामरूप ही है; इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम सत् शब्द से कहा गया है। उस अस्तित्व गुण से द्रव्य का स्वभावभूत परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुव भिन्न नहीं है, किन्तु परिणाम अस्तित्व से अनन्य है अर्थात् एक ही है; क्योंकि द्रव्य का अस्तित्व, भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल है, इस कारण अस्तित्व समय-समय उस-उस स्वभाव से अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव से परिणमित होता है।

द्रव्य का स्वभावभूत परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, वह द्रव्य के अस्तित्व के साथ कायम होने के कारण सत् नाम का गुण द्रव्य की रचना

करनेवाला है, इसीलिए सत्ता वह गुण है और द्रव्य गुणी है। इस कारण सत्ता और द्रव्य का गुण-गुणीपना सिद्ध होता है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम वही अस्तित्व गुण है और उस गुण में गुणी रहा है; इस कारण हाथ का चलना आत्मा के कारण नहीं होता। हाथ का उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम तो पुद्गल द्रव्य में है और आत्मा का उत्पाद-व्यय-ध्रुव आत्मा में है। आत्मा की इच्छा के कारण हाथ का चलना नहीं होता।

किसी जीव के किसी को दान में रुपये देने का विकल्प आया, परन्तु विकल्प के कारण रुपयों का क्षेत्रान्तर नहीं हुआ है और रुपयों का क्षेत्रान्तर हुआ है; इसीलिए विकल्प नहीं आया है। यहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं बताना है। रुपयों का उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम भिन्न-भिन्न है और यहाँ उन्हें भिन्न-भिन्न बताना है।

पहले जीव को ममता का परिणाम था; उसका अपने कारण व्यय हुआ; दान में देने के परिणाम का उत्पाद स्वयं के कारण हुआ (किन्तु परजीव दुःखी है, इसीलिए वह नहीं हुआ) और स्वयं आत्मा ध्रुवरूप स्थिर रहा है।

पर के कारण उत्पाद हुआ अथवा यह वस्तु थी तो आत्मा स्थिर रहा ह्न यह प्रश्न ही नहीं है। मात्र निरपेक्ष बात ही लेना है। समय-समय उत्पाद-व्यय-ध्रुव के परिणाम अस्तित्व गुण में हैं। ये तीन परिणाम ही सत्ता गुण है और आत्मा सत्ता गुण में है ह्न ऐसा सत्ता और द्रव्य को गुण-गुणीपना सिद्ध होता है। इस तरह रुपयों का तथा हाथ का उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वतंत्र समझना चाहिए।

इस गाथा में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की तरह कर्त्तापने की बात भी नहीं है, अपितु जो पदार्थ हैं, वे समय-समय किस तरह हैं और किस तरह वर्तन कर रहे हैं, वह यहाँ बताया है। सभी जड़ पदार्थ और आत्मा समय-समय किसतरह परिणमन कर रहे हैं, उस परिणाम को बताकर वह परिणाम स्वयं ही सत्ता है और सत्ता द्रव्य से भिन्न नहीं है ह्न ऐसा सिद्ध करते हैं।

●

प्रवचनसार गाथा ११०

अब, गुण और गुणी के अनेकत्व का खण्डन करते हैं:ह्न

णत्थि गुणो त्ति व कोई पज्जाओ त्तीह व विणा दव्वं।
दव्वत्तं पुण भावो तम्हा दव्वं सयं सत्ता॥११०॥

(हरिगीत)

पर्याय या गुण द्रव्य के बिन कभी भी होते नहीं।
द्रव्य ही है भाव इससे द्रव्य सत्ता है स्वयं॥११०॥

अन्वयार्थ :ह्न [इह] इस विश्व में [गुणः इति वा कश्चित्] गुण ऐसा कुछ [पर्यायः इति वा] या पर्याय ऐसा कुछ [द्रव्यं विना नास्ति] द्रव्य के बिना (द्रव्य से पृथक्) नहीं होता; [द्रव्यत्वं पुनः भावः] और द्रव्यत्व वह भाव है (अर्थात् अस्तित्व गुण है) [तस्मात्] इसलिये [द्रव्यं स्वयं सत्ता] द्रव्य स्वयं सत्ता (अस्तित्व) है।

टीका :ह्न वास्तव में द्रव्य से पृथग्भूत (भिन्न) ऐसा कोई गुण या ऐसी कोई पर्याय कुछ नहीं होता; जैसे ह्न सुवर्ण से पृथग्भूत उसका पीलापन आदि या उसका कुण्डलत्वादि नहीं होता तदनुसार। अब, उस द्रव्य के स्वरूप की वृत्तिभूत जो अस्तित्व नाम से कहा जानेवाला द्रव्यत्व, वह उसका भाव नाम से कहा जानेवाला गुण ही होने से, क्या वह द्रव्य से पृथक्रूप वर्तता है? नहीं ही वर्तता। तब फिर द्रव्य स्वयमेव सत्ता हो।

गाथा ११० पर प्रवचन

''यहाँ द्रव्यत्व शब्द का अर्थ जो कि द्रव्यत्व नाम का सामान्य गुण है, उस अर्थ में नहीं लेना है, अपितु जो सत् है, वह द्रव्य है और सत्ता वह द्रव्यत्व है। द्रव्य और द्रव्यत्व अर्थात् सत् और सत्ता भिन्न नहीं है। द्रव्य स्वयं ही द्रवित होता है ह्न परिणमित हो रहा है; अस्तित्व गुण में परिणमित हो रहा है। गुण और पर्याय द्रव्य से भिन्न नहीं हैं। द्रव्य अस्तित्व गुण से परिणमित हो रहा है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से परिणमित होता है, वस्तु एक ही है, भिन्न नहीं है।

(आत्मा और पुद्‌गल द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में रह रहे हैं, यह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम है, जिसे सत्तागुण कहा है।)

द्रव्य रहित सत्ता पृथक् नहीं मिलेगी।

द्रव्य रहित द्रव्यत्व पृथक् नहीं मिलेगा।

द्रव्य बिना उत्पाद-व्यय-ध्रुव पृथक् नहीं मिलेंगे।

प्रत्येक जड़ पदार्थ और आत्मा का परिणाम द्रव्य से भिन्न नहीं है। भाषारूप परमाणु की अवस्था उसके पुद्‌गल द्रव्य से भिन्न नहीं है, किन्तु वह अवस्था जीव से अथवा होंठ से बिलकुल भिन्न है। अर्थात् भाषा को ऐसा बोलना अथवा वैसा बोलना ह्न यह प्रश्न ही नहीं रहता, क्योंकि उसका अस्तित्व उसी में है और जीव का अस्तित्व जीव में है।

भाषा, शब्द, हाथ, अक्षर सभी ज्ञेय पदार्थ हैं; ये सभी ज्ञेय पदार्थ अपने स्वभाव, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणमित हो रहे हैं। ये पदार्थ इनके अपने स्वभाव से भिन्न दिखाई नहीं देंगे और प्रत्येक ज्ञेय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वयं उनमें दिखाई देंगे, किन्तु अन्य में नहीं दिखाई देंगे।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम को सत्ता गुण में रखा है और सत्तागुण को गुणी में रखकर स्वज्ञेय को एक बताया है।

अपना सत् अपने सत्तागुण को छोड़कर अन्य के सत्ता गुण में तथा अन्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव में नहीं मिल जाता तथा अन्य पदार्थ का सत् उनके सत्तागुण को छोड़कर इस जीव के सत्तागुण में और इस जीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव में नहीं मिल जाता; इसप्रकार स्वज्ञेय तथा परज्ञेय को स्वतंत्र समझना और मानना चाहिए। यही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

वास्तव में द्रव्य से पृथक् कोई गुण नहीं है। इसी तरह पर्याय भी नहीं है। एक द्रव्य के गुण-पर्याय अन्य द्रव्य में नहीं मिलते और उनके गुण-पर्याय को उनसे पृथक् ढूँढा जाये तो भी वे नहीं मिलते।

जिसतरह सोने का पीलापन, चिकनापन आदि गुण और कुण्डल आदि उसकी अवस्था सोने से पृथक् नहीं होते अर्थात् सोना तो एक जगह रहे और पीलापन अथवा कुण्डलादि अवस्था (आकार) दूसरी जगह रह जाये - ऐसा नहीं होता; इसीतरह आत्मा तो एक जगह रहे और उसके ज्ञान, दर्शन आदि गुण तथा उसकी श्रुतज्ञानादि अथवा विकारी

अवस्थायें दूसरी जगह रहें ह्न ऐसा कभी नहीं होता; इसीलिए द्रव्य के बने रहने का कारणभूत अस्तित्व नाम से कहा जानेवाला जो द्रव्यत्व है, वह द्रव्य का भाव है, यह भाव द्रव्य से पृथक् नहीं हो सकता, इसीलिए द्रव्य स्वयं ही भाव अर्थात् सत्ता है।

द्रव्य, द्रव्यत्व भाव से पृथक् नहीं है। भगवान पदार्थ अपने भाव से पृथक् नहीं होता। सत् अपनी सत्ता से पृथक् नहीं है, इसीलिए सत् ऐसा द्रव्य, वही सत्ता है जो कि द्रव्य से अभिन्न है ह्न पृथक् वस्तु नहीं है।

प्रत्येक आत्मा और जड़ पदार्थों की सत्ता पृथक्-पृथक् है और प्रत्येक पदार्थ की सत्ता अपने-अपने में है, अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने परिणाम से पृथक नहीं हैं और वे अन्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम से पृथक् हैं ह्न ऐसा भेदज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है।

सम्यग्दृष्टि मेंढक को भी मैं स्वयं अपने गुण और पर्याय से अभिन्न हूँ और दूसरे के गुण और पर्याय से भिन्न हूँ ह्न ऐसा भान रहता है। सम्यग्दृष्टि मेंढक को नौ पदार्थ के नाम और भाषा बोलने का योग नहीं रहता, फिर भी अपनी सत्ता अपने गुण-पर्यायों से अभिन्न और पर से भिन्न है ह्न ऐसा भावभासन समय-समय वर्त रहा है।

ऐसे यथार्थ भेदज्ञान बिना लाखों बार णमोकार मंत्र की जाप करें अथवा पूजा करें अथवा तीर्थयात्रा करें, उसमें यदि कषाय की मंदता होगी तो वह पुण्य का कारण होती है, किन्तु उससे धर्म नहीं होता। जो जीव जड़लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए नमस्कार मंत्र की माला जपते हैं अथवा कोई शुभभाव की क्रिया करते हैं; वे अपनी स्वरूप लक्ष्मी का भोग छोड़कर जड़लक्ष्मी की रुचि कर रहे हैं, उन जीवों को तो शून्य का भी ठिकाना नहीं। जैसे यज्ञ में आहुति जलाकर स्वाहा करते हैं, वैसे ही यह अज्ञानी जीव जड़लक्ष्मी की प्राप्ति की आशा में स्वरूप-लक्ष्मी को स्वाहा कर रहा है अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप आत्मा का होम कर रहा है और इसकारण उसे स्वरूप की जाग्रति का अवसर नहीं आता, अतः उसकी पर्याय बहुत अल्प होकर वह नीच गति को प्राप्त होगा।

इसीलिए जीवों को यथार्थ भेदज्ञान करके सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रगट करना चाहिए। यही धर्म और सम्पूर्ण शांति का मार्ग है। ●

प्रवचनसार गाथा १११

अब, द्रव्य के सत्-उत्पाद और असत्-उत्पाद होने में अविरोध सिद्ध करते हैं :ह्न

एवंविहं सहावे दव्वं दव्वत्थपज्जयत्थेहिं।
सदसब्भावणिबद्धं पादुब्भावं सदा लभदि॥१११॥

(हरिगीत)

पूर्वोक्त द्रव्यस्वभाव में उत्पाद सत् नयद्रव्य से।
पर्यायनय से असत् का उत्पाद होता है सदा॥१११॥

अन्वयार्थ :ह्न [एवंविधं द्रव्यं] ऐसा (पूर्वोक्त) द्रव्य [स्वभावे] स्वभाव में [द्रव्यार्थपर्यायार्थाभ्यां] द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों के द्वारा [सद्सद्भावनिबद्धं प्रादुर्भावं] सद्भावसंबद्ध और असद्भावसंबद्ध उत्पाद को [सदा लभते] सदा प्राप्त करता है।

टीका :ह्न इस प्रकार यथोचित (पूर्वकथित) सर्व प्रकार से [1]अकलंक लक्षणवाला, अनादिनिधन यह द्रव्य सत्-स्वभाव में (अस्तित्वस्वभाव में) उत्पाद को प्राप्त होता है। द्रव्य का वह उत्पाद, द्रव्य की [2]अभिधेयता के समय सद्भावसंबद्ध ही है और पर्यायों की अभिधेयता के समय असद्भावसंबद्ध ही है। इसे स्पष्ट समझाते हैं :ह्न

जब द्रव्य ही कहा जाता है ह्न पर्यायें नहीं, तब उत्पत्ति-विनाश रहित, युगपत् प्रवर्तमान, द्रव्य को उत्पन्न करनेवाली [3]अन्वय शक्तियों के द्वारा, उत्पत्ति-विनाश लक्षणवाली, क्रमशः प्रवर्तमान, पर्यायों की उत्पादक

१. अकलंक = निर्दोष (यह द्रव्य पूर्व कथित सर्वप्रकार निर्दोष लक्षणवाला है।)

२. अभिधेयता = कहने योग्यपना; विवक्षा; कथनी।

३. अन्वयशक्ति = अन्वयरूप शक्ति। (अन्वयशक्तियाँ उत्पत्ति और नाश से रहित हैं, एक ही साथ प्रवृत्त होती हैं और द्रव्य को उत्पन्न करती हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र इत्यादि आत्मद्रव्य की अन्वयशक्तियाँ हैं।

उन-उन [1]व्यतिरेकव्यक्तियों को प्राप्त होनेवाले द्रव्य को [2]सद्भावसंबद्ध ही उत्पाद है; सुवर्ण की भाँति। जैसे :ह्न जब सुवर्ण ही कहा जाता है ह्न बाजूबंध आदि पर्यायें नहीं, तब सुवर्ण जितनी स्थायी, युगपत् प्रवर्तमान, सुवर्ण की उत्पादक अन्वयशक्तियों के द्वारा, बाजूबंध इत्यादि पर्याय जितने स्थायी क्रमशः प्रवर्तमान, बाजूबंध इत्यादि पर्यायों की उत्पादक उन-उन व्यतिरेकव्यक्तियों को प्राप्त होनेवाले सुवर्ण का सद्भाव संबद्ध ही उत्पाद है।

और जब पर्यायें ही कही जाती हैं, द्रव्य नहीं, तब उत्पत्ति-विनाश जिनका लक्षण है ह्न ऐसी क्रमशः प्रवर्तमान, पर्यायों को उत्पन्न करनेवाली उन-उन व्यतिरेकव्यक्तियों के द्वारा, उत्पत्ति-विनाश रहित, युगपत् प्रवर्तमान, द्रव्य की उत्पाद अन्वयशक्तियों को प्राप्त होनेवाले द्रव्य को [3]असद्भावसंबद्ध ही उत्पाद है; सुवर्ण की ही भाँति। वह इसप्रकार जब बाजूबंधादि पर्यायें ही कही जाती हैं ह्न सुवर्ण नहीं, तब बाजूबंध इत्यादि पर्याय जितनी टिकनेवाली, क्रमशः प्रवर्तमान, बाजूबंध इत्यादि पर्यायों की उत्पाद उन-उन व्यतिरेक-व्यक्तियों के द्वारा, सुवर्ण जितनी टिकनेवाली, युगपत् प्रवर्तमान, सुवर्ण की उत्पादक अन्वयशक्तियों को प्राप्त सुवर्ण के असद्भावयुक्त ही उत्पाद है।

अब, पर्यायों की अभिधेयता (कथनी) के समय भी, असत्-उत्पाद में पर्यायों को उत्पन्न करनेवाली वे-वे व्यतिरेक व्यक्तियाँ युगपत् प्रवृत्ति

१. व्यतिरेकव्यक्ति = भेदरूप प्रगटता। [व्यतिरेकव्यक्तियाँ उत्पत्ति विनाश को प्राप्त होती हैं, क्रमशः प्रवृत्त होती हैं और पर्यायों को उत्पन्न करती हैं। श्रुतज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि तथा स्वरूपाचरण चारित्र, यथाख्यात चारित्र इत्यादि आत्मद्रव्य की व्यतिरेकव्यक्तियाँ हैं। व्यतिरेक और अन्वय के अर्थों के लिए ११९वें पृष्ठ का फुटनोट (टिप्पणी) देखें।]

२. सद्भावसंबद्ध = सद्भाव-अस्तित्व के साथ संबंध रखनेवाला ह्न संकलित। [द्रव्य की विवक्षा के समय अन्वय शक्तियों को मुख्य और व्यतिरेकव्यक्तियों को गौण कर दिया जाता है, इसलिये द्रव्य के सद्भावसंबद्ध उत्पाद (सत्-उत्पाद, विद्यमान का उत्पाद) है।]

३. असद्भावसंबद्ध = अनस्तित्व के साथ संबंधवाला-संकलित। [पर्यायों की विवक्षा के समय व्यतिरेकव्यक्तियों को मुख्य और अन्वयशक्तियों को गौण किया जाता है, इसलिये द्रव्य के असद्भावसंबंध उत्पाद (असत् उत्पाद, अविद्यमान का उत्पाद) है।]

प्राप्त करके अन्वयशक्तिपने को प्राप्त होती हुई पर्यायों को द्रव्य करता है (पर्यायों की विवक्षा के समय भी व्यतिरेक व्यक्तियाँ अन्वयशक्ति रूप बनती हुई पर्यायों को द्रव्यरूप करती हैं); जैसे बाजूबंध आदि पर्यायों को उत्पन्न करनेवाली वे-वे व्यतिरेक व्यक्तियाँ युगपत् प्रवृत्ति प्राप्त करके अन्वयशक्तिपने को प्राप्त करती हुई बाजूबंध इत्यादि पर्यायों को सुवर्ण करता है तदनुसार। द्रव्य की अभिधेयता के समय भी, सत्-उत्पाद में द्रव्य की उत्पादक अन्वयशक्तियाँ क्रम प्रवृत्ति को प्राप्त करके उस-उस व्यतिरेक व्यक्तित्व को प्राप्त होती हुई, द्रव्य को पर्यायें (पर्यायरूप) करती हैं; जैसे सुवर्ण की उत्पादक अन्वय शक्तियाँ क्रमप्रवृत्ति प्राप्त करके उस-उस व्यतिरेक व्यक्तित्व को प्राप्त होती हुई, सुवर्ण को बाजूबंधादि पर्यायमात्र (पर्यायमात्ररूप) करती हैं।

इसलिये द्रव्यार्थिक कथन से सत्-उत्पाद है, पर्यायार्थिक कथन से असत्-उत्पाद है ह्न यह बात अनवद्य (निर्दोष, अबाध्य) है।

भावार्थ :ह्न जो पहले विद्यमान हो, उसी की उत्पत्ति को सत्-उत्पाद कहते हैं और जो पहले विद्यमान न हो, उसकी उत्पत्ति को असत्-उत्पाद कहते हैं। जब पर्यायों को गौण करके द्रव्य का मुख्यतया कथन किया जाता है, तब जो विद्यमान था वही उत्पन्न होता है, (क्योंकि द्रव्य तो तीनों काल में विद्यमान है); इसलिये द्रव्यार्थिक नय से तो द्रव्य को सत्-उत्पाद है; और जब द्रव्य को गौण करके पर्यायों का मुख्यतया कथन किया जाता है, तब जो विद्यमान नहीं था, वह उत्पन्न होता है (क्योंकि वर्तमान पर्याय भूतकाल में विद्यमान नहीं थी), इसलिये पर्यायार्थिक नय से द्रव्य के असत् उत्पाद है।

यहाँ यह लक्ष्य में रखना चाहिए कि द्रव्य और पर्यायें भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं; इसलिये पर्यायों की विवक्षा के समय भी, असत् उत्पाद में, जो पर्यायें हैं, वे द्रव्य ही हैं, और द्रव्य की विवक्षा के समय भी, सत्-उत्पाद में जो द्रव्य है, वे पर्यायें ही हैं।

गाथा १११ पर प्रवचन

अब द्रव्य के सत् उत्पाद और असत् उत्पाद होने में अविरोध सिद्ध करते हैं :ह्न

प्रत्येक आत्मा में समय-समय नया उत्पाद होता है, द्रव्य रहित गुण अथवा पर्याय पृथक् दिखाई नहीं देती। पर्यायें भिन्न-भिन्न होती हैं, उनका परिवर्तन कहाँ से होता है ह्न यह न्याय इस गाथा में बताते हैं।

प्रत्येक द्रव्य विद्यमान पदार्थ है, उसमें से अवस्था का उत्पाद हुआ है; उस उत्पाद और विद्यमान पदार्थ-द्रव्य को मुख्य रखकर सत् उत्पाद कहा गया है और वर्तमान अवस्था जो पूर्व में नहीं थी और अब हुई है ह्न ऐसी पर्याय को मुख्य रखकर उसे असत् उत्पाद कहा गया है। यह असत् उत्पाद भी द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखता है। उत्पाद तो एक ही है, परन्तु कथन शैली दो प्रकार की है।

द्रव्य-दृष्टि से जो वस्तु थी, वह स्वयं से वर्तमान अवस्थारूप प्रगट हुई है और पर्याय-दृष्टि से वर्तमान अवस्था जो पूर्व में प्रगटरूप नहीं थी, वह निमित्त आया तो प्रगट हुई अथवा निमित्त के कारण असत् उत्पाद हो ह्न ऐसा नहीं है; दोनों में उत्पाद तो अपनी शक्ति के कारण हुआ है; दोनों ही कथन पद्धति में उत्पाद स्वयं के द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखता है, किन्तु परद्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं रखता। असत् उत्पाद के समय उस पर्याय का धर्म प्रगट होता है, पर्याय धर्म भिन्न-भिन्न दिखाई देता है, जो वस्तु से पृथक् नहीं है।

पर्याय अपने द्रव्य को प्राप्त करती है, किन्तु अन्य द्रव्य अथवा संयोग को प्राप्त नहीं होती।

द्रव्य, पर्याय को प्राप्त होता है, किन्तु अन्य द्रव्य अथवा संयोग को प्राप्त नहीं होता।

असद्भाव सम्बद्ध उत्पाद अन्वयशक्ति को साथ रखकर हुआ है, किन्तु पर आया है; इसीलिए वह नहीं हुआ है।

प्रश्न :ह्न उसे असत् उत्पाद किसलिए कहा गया है?

उत्तर :ह्न वर्तमान पर्याय पूर्व में प्रगट नहीं थी, किन्तु वर्तमान में प्रगट हुई है ह्न इस अपेक्षा असत् उत्पाद कहा गया है। पर्याय तो प्रत्येक समय है? वह किसी समय न हो ह्न ऐसा नहीं होता। यह पर्याय पूर्व में नहीं थी, मात्र इतना बताने के लिए असत् उत्पाद कहा है, किन्तु निमित्त आया; इसीलिए पर्याय भिन्न-भिन्न हुई है ह्न ऐसा नहीं है।

प्रश्न :ह्न इसमें तो हमारा सभी व्यवहार चला जायेगा?

उत्तर :ह्न यदि तुम्हारी पर्याय किसी दिन रुक जाये तो तुम्हारा व्यवहार रुके, किन्तु तुम्हारी पर्याय तो किसी भी दिन नहीं रुकती, समय-समय हो ही रही है; इसीलिए तुम्हारा व्यवहार तो प्रतिदिन चालू ही है, किसी भी दिन रुकता नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि सच्ची समझ करने से मिथ्यात्वरूपी पागलपन का व्यवहार रुक जायेगा और समझदारी के व्यवहार का उत्पाद होगा।

शास्त्र में ऐसा आता है कि आत्मा ही आत्मा का बैरी है और आत्मा ही आत्मा का बंधु है। इसका अर्थ ऐसा समझना चाहिए कि परजीव इस आत्मा का शत्रु अथवा मित्र नहीं है, किन्तु पर-पदार्थ मेरे हैं और मुझे उनसे सुख-दुःख है ह्न ऐसी भ्रान्तिवाली अपनी एक समय की अवस्था ही अपनी शत्रु है और आत्म ज्ञानस्वरूप सुख का सागर है, पर कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है ह्न ऐसी यथार्थ प्रतीतिरूप अवस्था ही अपनी मित्र है।

इस गाथा में उत्पाद को देखने की दो प्रकार की विधि बताते हैं। उत्पाद तो एक ही है, कथन शैली दो प्रकार की है। दोनों में उत्पाद का सम्बन्ध तो द्रव्य के साथ है। मूल गाथा में है कि द्रव्य स्वयं ही सद्भावसम्बद्ध और असद्भावसम्बद्ध उत्पाद को सदा प्राप्त होता है।

(१) आत्मा में सम्यग्दर्शन की पर्याय का ही उत्पाद हुआ, वह आत्मा में श्रद्धा गुण में से हुआ है। इस उत्पाद को द्रव्यार्थिकनय से सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहते हैं।

(२) सम्यग्दर्शन की पर्याय पूर्व में नहीं थी और वर्तमान में हुई; इसीलिए इस उत्पाद को पर्यायार्थिकनय से असद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहते हैं; किन्तु यह उत्पाद तो द्रव्य साथ सम्बन्ध रखता है अर्थात् उसमें से हुआ है, परन्तु पर-पदार्थ के कारण नहीं हुआ।

दोनों में आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शन पर्यायों के उत्पादरूप परिणमित हुआ है। देव-गुरु-शास्त्र के कारण वह पर्याय हुई है ह्न यह बात असत्य है।

इसतरह पुद्गल द्रव्य में जो हाथ के हलन-चलनरूप अवस्था होती है, उसमें ह्न

(१) पुद्गल द्रव्य की क्षेत्रान्तर होने की पर्याय का उत्पाद हुआ, वह पुद्गल द्रव्य की क्रियावती शक्ति के कारण हुआ है; इस उत्पाद को द्रव्यार्थिकनय से सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहते हैं।

(२) वर्तमान हलन-चलनरूप अवस्था जो पूर्व में प्रगट नहीं थी और वर्तमान में प्रगट हुई ह्न इस उत्पाद को पर्यायार्थिकनय से असद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहते हैं। यह उत्पाद भी द्रव्य और शक्ति के साथ सम्बन्ध रखता है।

आत्मा ने इच्छा की तो हाथ चला ह्न यह बात असत्य है। हाथ के चलने रूप असत् उत्पाद भी हाथ के पुद्गल द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखता है, किन्तु वह आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रखता।

इसतरह छहों द्रव्यों में परिणमन हुआ करता है और उसे देखने की दो दृष्टि हैं। दोनों में सम्बन्ध तो एक मात्र उसके द्रव्य के साथ ही है; परद्रव्य के साथ सम्बन्ध है ही नहीं।

जो जीव आत्मा और शरीर को एक मानता है और शरीर की क्रिया के उत्पाद से आत्मा को धर्म का उत्पाद मानता है, उसे कभी भी धर्म नहीं होता। आत्मा का व्यवहार आत्मा में ही हो सकता है, किन्तु किसी भी पर-पदार्थ में वह कभी भी नहीं हो सकता।

अपना शुद्ध स्वभाव वह निश्चय है और समय-समय प्रगट होने वाली जो निर्मल पर्याय है, वह व्यवहार है ह्न ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप समझे बिना कभी भी धर्म नहीं होता।

इसप्रकार ऊपर कहे हुए सर्वप्रकार से निर्दोष लक्षणवाला और

अनादि-निधन यह द्रव्य अस्तित्व स्वभाव में उत्पाद को प्राप्त होता है। छह द्रव्य हैं, उन्हें किसी ईश्वर ने नहीं बनाया है, वे स्वयंसिद्ध हैं और निर्दोष लक्षणवाले हैं; उन लक्षणों में कभी भी बाधा नहीं आती। 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम् सत्' और 'सत् द्रव्यलक्षणम्' द्रव्य का लक्षण सत् है और वह बाधारहित है। यह सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुव सहित द्रव्य सत्, स्वभाव में उत्पाद को प्राप्त होता है।

जातिस्मरण ज्ञान एक समय की ज्ञान-गुण की पर्याय का उत्पाद है और पूर्व समय की ज्ञान की अवस्था का नाश होना व्यय है तथा वस्तु आत्मा ध्रुव है। पूर्व पर्याय तो वर्तमान में नहीं है, किन्तु जातिस्मरण वर्तमान पर्याय की ताकत से पूर्व की बात याद रखता है। ऐसा नहीं है कि पूर्व की पर्याय वर्तमान में नहीं है, इसीलिए पूर्व का ज्ञान भी न हो। एक समय की ज्ञान पर्याय में तीन काल को जानने की शक्ति है, इसीलिए पूर्व का ज्ञान वर्तमान में नहीं जाना जा सके ह्न ऐसा नहीं है, वर्तमान समय में वह जान सकता है।

पूर्व अवस्था का नाश हुआ, उसमें से स्मृति की पर्याय नहीं आई है; किन्तु ध्रुव पदार्थ ज्ञानशक्ति है, उसमें से स्मृति आयी है ह्न ऐसा कहना, वह सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद है और वर्तमान स्मृति जो पूर्व में प्रगट नहीं थी और वर्तमान में प्रगट हुई ह्न ऐसा कहना, वह असद्भाव सम्बद्ध उत्पाद है।

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा शुद्धस्वरूपी है। वह देह की क्रिया नहीं कर सकता और पुण्य से धर्म नहीं होता ह्न ऐसी दृष्टि हो तो धर्म की पर्याय प्रगट हो। अपने में निश्चय प्रगट करें तो फिर शुभराग को उपचार से व्यवहार कहा गया है। धर्म पर्याय है, गुण नहीं है। धर्म की नई पर्याय का उत्पाद होता है; जबकि गुण शक्तिरूप त्रिकाल है। वस्तु गुण-पर्याय का पिण्ड है। मैं अखण्ड चैतन्यमूर्ति हूँ, राग अथवा निमित्त मैं नहीं हूँ ह्न ऐसे भान सहित धर्म की पर्याय प्रगट होती है, उसे द्रव्य की मुख्यता के सम्बन्ध से कहा गया है कि विद्यमान शक्ति में से उत्पाद हुआ है, यह सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद है और सम्यक्त्वरूप धर्म की पर्याय पूर्व में प्रगट नहीं थी और

वर्तमान में प्रगट हुई ह्न ऐसा कहना, वह असद्भाव सम्बन्ध उत्पाद है।

शरीर का शरीर के कारण चलनेरूप उत्पाद होता है अथवा स्थिर रहनेरूप उत्पाद होता है, किन्तु जीव हो तो शरीर का चलनेरूप उत्पाद होता है और जीव न हो तो शरीर का स्थिर रहने रूप उत्पाद होता है ह्न यह बात असत्य है। शरीर का स्थिर रहनेरूप हलन-चलनरूप उत्पाद शरीर द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखता है, किन्तु वह जीव द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं रखता।

द्रव्य का उत्पाद द्रव्य के कथन के समय सद्भाव सम्बद्ध है और पर्यायों के कथन के समय असद्भाव सम्बद्ध है; उसे स्पष्टरूप से समझाया है :ह्न

(१) (अ) अन्वय शक्तियाँ उत्पत्ति-विनाश रहित हैं। (अन्वय अर्थात् सादृश्यता; यह वही है ह्न ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपपना) गुण किसी भी समय उत्पन्न नहीं होते और नाश को भी प्राप्त नहीं होते। अनादि-अनन्त सादृश्य हैं। जैसे :ह्न ज्ञान-दर्शन-चरित्र आत्मा की अन्वय शक्तियाँ हैं और स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण इत्यादि पुद्गल की अन्वय शक्तियाँ हैं।

(ब) अन्वय शक्तियाँ अर्थात् गुण एक साथ प्रवर्तते हैं, ज्ञान-दर्शन-चारित्र एक साथ प्रवर्तते हैं, आगे-पीछे नहीं।

(स) अन्वय शक्तियाँ अर्थात् गुण द्रव्य की रचना करते हैं, उसे उत्पन्न करते हैं। शक्तियाँ अनन्त हैं और द्रव्य एक है।

(२) व्यतिरेक व्यक्तियाँ = व्यतिरेक अर्थात् भेद, यह वह नहीं ह्न ऐसे ज्ञान के निमित्तभूत भिन्नरूपपना पर्याय अर्थात् अवस्था।

(अ) यह उत्पत्ति विनाश लक्षण वाली है अर्थात् समय-समय उत्पन्न होती है और विनाश को प्राप्त होती है।

(ब) एक के बाद एक प्रवर्तित होती है। क्रम-क्रम से होती है, किन्तु एक ही साथ नहीं होती। श्रुतज्ञान के समय केवलज्ञान नहीं है, स्वरूपाचरण चारित्र नहीं है, मिथ्यादर्शन की पर्याय के समय सम्यक्त्व की पर्याय नहीं है।

(स) व्यतिरेक पर्यायों को बनाते हैं ह्न उत्पन्न करते हैं, अवस्था को बनाते हैं।

द्रव्यार्थिकनय से देखा जाये तो उत्पत्ति-विनाश रहित एक ही साथ प्रवर्तती और द्रव्य की रचना करती ह्न ऐसी शक्तियों द्वारा द्रव्य का सत्-उत्पाद है। अर्थात् जो शक्तियाँ हैं... हैं... हैं... उसमें से उत्पाद हुआ है, किन्तु उस समय द्रव्य कैसा है? तो कहा कि उत्पाद विनाशवाली, एक के बाद एक प्रवर्तती, पर्यायों को बनाती हुई भेदरूप प्रगटता को प्राप्त है अर्थात् वहाँ भी द्रव्य भेदरूप प्रगटता सहित ही होता है।

द्रव्य की विवक्षा के समय गुणों को मुख्य और पर्यायों को गौण करने से द्रव्य की सत् जो शक्तियाँ हैं, उनमें से वह उत्पाद है; इसीलिए उसे सत् उत्पाद कहा है।

ध्रुव, व्यतिरेक को नहीं छोड़ता। अन्वय शक्तियों को मुख्य करने पर भी द्रव्य व्यतिरेक अर्थात् व्यक्तियों को भिन्न नहीं रखता (उनमें तन्मय रहता है) जड़ और चेतन द्रव्यों का उत्पाद उनके द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखता है। जड़ की पर्यायों का उत्पाद उसके स्पर्श-रस आदि शक्ति से उत्पन्न हुए पुद्गल द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखता है, किन्तु आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रखता और द्रव्य भी उस उत्पाद को प्राप्त करता है।

यथार्थ ज्ञान हुआ कब कहा जायेगा? मात्र धारणा से ज्ञान का उघाड़ (क्षयोपशम) होना यथार्थज्ञान नहीं है, किन्तु त्रिकाल शक्तियों के पिण्ड आत्मद्रव्य के साथ सम्बन्ध रखकर जो सम्यग्ज्ञान का सत्-उत्पाद होता है, वही यथार्थ ज्ञान है।

जो सम्यग्ज्ञान पर्याय हुई है, वह अन्तर में विद्यमान ज्ञान शक्ति में से प्रगट हुई है ह्न ऐसा द्रव्यार्थिकनय से देखा जाये तो आत्मा का सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद है। उस समय उसने ज्ञानादि अन्वय शक्तियों को छोड़ नहीं दिया है।

आत्मा स्वयं गुणी है। अस्तित्व उसका स्वभाव है, किन्तु उनमें प्रदेशभेद नहीं है। इसप्रकार निर्दोष लक्षणवाले आत्मद्रव्य की पर्याय की

उत्पत्ति पर के अस्तित्व से नहीं होती। अन्य द्रव्य में आत्मा का उत्पाद नहीं होता। अन्य के अस्तित्व में स्वयं उनका उत्पाद होता है।

गुणी, अपने अस्तित्व स्वभाव में उत्पाद को प्राप्त होता है। द्रव्य, गुण द्वारा उत्पाद को प्राप्त होता है; इसतरह द्रव्य-गुण-पर्याय को अखण्ड लिया है। सम्यग्दर्शन का उत्पाद अपनी शक्ति से हुआ है, किन्तु कर्म दूर हुए हैं, इसीलिए सम्यग्दर्शन का उत्पाद हुआ है ह्न ऐसा यहाँ है।

जब आत्मा और परमाणु सत्तागुण द्वारा उत्पाद को प्राप्त होते हैं, तब उस द्रव्य की समय-समय की अवस्था का उत्पाद है, सामान्य शक्तिमान की कथनी के समय सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहा है और सम्यक्त्व पर्याय जो पूर्व में प्रगट नहीं थी और वर्तमान में प्रगट हुई, इसीलिए उसे असद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहा जाता है। दोनों अपेक्षा में सम्बन्ध तो द्रव्य के साथ ही है। अपनी सत्ता के कारण अपने में उत्पाद हो रहा है ह्न ऐसा निर्णय करें तो अन्य से परिणाम होता है ह्न ऐसी विपरीत मान्यता छूट जाये और धर्म तथा सुख के लिए अपने द्रव्य के सामने ही देखना रहे।

मिथ्यात्व की पर्याय का नाश करके सम्यक्त्व की पर्याय की उत्पत्ति होती है। इस पर्याय को मुख्य न किया जाये और द्रव्य को मुख्य किया जाये, तब सम्यक्त्व का उत्पाद द्रव्य की शक्तियों में से हुआ है; इसीलिए इस उत्पाद को सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद कहा गया है। इसे दृष्टांत द्वारा समझाते हैं :ह्न

जब सोने में सोना ही कहा जाये; किन्तु सोने का कड़ा, हार आदि न कहा जाये, तब सोने में पीलापन, चिकनापन, वजन आदि एक ही साथ रहनेवाली अन्वय शक्तियाँ सामान्य सोने को सिद्ध करती हैं। कड़ा, हार आदि एक के बाद एक अवस्था को प्राप्त होते सोने की अवस्थाएँ, शक्तियों में से आई हैं ह्न ऐसा शक्तिमान द्रव्य को मुख्य करके कहा गया है। पीलापन, चिकनापन आदि सादृश्य गुण हैं, इनके द्वारा सोना एकरूप सादृश्य रहता है ह्न इसप्रकार सोने की सिद्धि करके पर्याय है ह्न ऐसा कहना, वह सद्भाव सम्बद्ध उत्पाद है।

असद्भावसम्बद्ध उत्पाद :ह्न जब अवस्था ही कही जाती है, द्रव्य नहीं, उत्पन्न और नाश लक्षणवाली, एक के बाद एक होती हुई, अवस्था को उत्पन्न करनेवाली व्यतिरेक शक्तियों द्वारा द्रव्य का असद्भावसम्बद्ध ही उत्पाद है। उस समय भी उस द्रव्य का उत्पत्ति विनाश रहित एक ही साथ प्रवर्तती, द्रव्य की रचना करती हुई अन्वय शक्तियों के साथ सम्बन्ध रखकर उत्पाद हुआ है। अनेकरूप भेद अवस्था होने पर भी द्रव्य अपने गुणों को छोड़कर भेदरूप नहीं हुआ है।

असद्भावसम्बद्ध = अविद्यमान के साथ सम्बन्ध रखनेवाला। पर्यायों के कथन के समय पर्यायों को मुख्य और गुणों को गौण करने से द्रव्य को असद्भावसम्बद्ध उत्पाद अर्थात् अविद्यमान का उत्पाद है ह्न ऐसा कहा गया है। इनकी निम्न विशेषतायें हैं ह्न

(१) उत्पाद विनाश वाली :ह्न मिथ्यात्व की पर्याय का नाश और सम्यक्त्व की पर्याय का उत्पाद; श्रुतज्ञान की पर्याय का नाश और केवलज्ञान की पर्याय का उत्पाद ह्न इसतरह पर्यायें उत्पाद-विनाश सहित हैं।

(२) क्रमशः प्रवर्तती :ह्न अवस्था एक के बाद एक होती है। क्षायोपशमिक के समय क्षायिक अवस्था नहीं होती; स्वरूपाचरण चारित्र के समय यथाख्यात चारित्र नहीं होता। ये एक के बाद एक प्रवर्तते हैं।

द्रव्य में ऐसी पर्यायें एक के बाद एक होती हैं। उसमें वर्तमान पर्याय पूर्व में प्रगट नहीं थी और वर्तमान में प्रगट हुई अर्थात् पर्याय अपेक्षा से द्रव्य को असत् उत्पाद हुआ ह्न ऐसा अवस्था को मुख्य करके कथन किया जाता है। निमित्त अथवा परपदार्थ आये अथवा वे थे तो असद्भावसम्बद्ध उत्पाद हुआ ह्न ऐसा नहीं है।

भगवान को जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य प्रगट हुए, वे पूर्व अवस्था में नहीं थे; पूर्व में तो ज्ञान, दर्शन आदि अवस्थाएँ अधूरी थीं। इस अधूरेपन का व्यय होकर अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए ह्न ऐसा कहना, वह असत् उत्पाद है।

वज्रवृषभनाराच संहनन था, इसीलिए केवलज्ञान का उत्पाद हुआ है

ह्न ऐसा नहीं है। चार घाति कर्म दूर हुए, इसीलिए अनन्तचतुष्टय का उत्पाद हुआ ह्न ऐसा नहीं है। असत् उत्पाद भी अनेक शक्तियों से रचित द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखकर होता है।

पर्याय के कथन की मुख्यता के समय शक्तियों को गौण किया है, किन्तु इससे शक्तियों का अभाव नहीं वर्तता अथवा असत् उत्पाद पूर्व पर्याय में से होता है ह्न ऐसा भी नहीं है।

असत् उत्पाद निमित्त से नहीं हुआ, इसीतरह वह पूर्व पर्याय में से भी नहीं हुआ, अपितु शक्तियाँ जो विद्यमान हैं, उनके साथ सम्बन्ध रखकर हुआ है; परन्तु कथन की विवक्षा में पर्याय की मुख्यता की है और शक्ति को गौण किया है।

सोने के दृष्टांत में जब कड़ा-कुण्डल आदि अवस्थाओं को ही कहा जाये, किन्तु सोने को नहीं; तब कड़ा, कुण्डल रहनेवाली एक के बाद एक होनेवाली अवस्था (कड़े के समय कुण्डल नहीं और कुण्डल के समय कड़ा नहीं) ह्न इन अवस्थाओं द्वारा सोने का असद्भाव युक्त ही उत्पाद है। वहाँ भी उसके कड़े आदि अवस्थाएँ सोना मात्र रहनेवाली एक ही साथ प्रवर्तती सोने को पीलापन, चिकनापन आदि शक्तियों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। कुण्डल आदि अवस्थाएँ सोने के पीलापन, चिकनापन को मित्र रखकर नहीं हुई हैं। पीलापन, चिकनापन आदि एक सोने को सिद्ध करते हैं। पर्यायें उनके साथ सम्बन्ध रखती हैं। पूर्व में कुण्डल नहीं था और वर्तमान में कुण्डल हुआ ह्न ऐसा कहना, वह असत् उत्पाद है।

कोई भी पर्याय एकदम नई कैसे हुई?

हरी कैरी में से पीली कैरी एकदम हुई, श्रुतज्ञान में से एकदम केवलज्ञान हुआ ह्न इनका कारण क्या है? क्या संयोग का निमित्त मिला, इसीलिए हुई? कर्म दूर हुए, इसीलिए केवलज्ञान हुआ? नहीं, ऐसा नहीं है। संयोग, निमित्त अथवा कर्म के साथ असत् उत्पाद का सम्बन्ध ही नहीं है। पहले प्रगट नहीं था और बाद में प्रगट हुआ, इसीलिए असत् उत्पाद कहा जाता है। भिन्न-भिन्न पर्यायों का सम्बन्ध तो उस द्रव्य के साथ ही है।

प्रश्न :ह्न शुभकर्म का उदय आया, इसीलिए देवगति का उत्पाद हुआ ह्न यह सही है न?

उत्तर :ह्न नहीं! देवगति की पर्याय का असत् उत्पाद उस जीव के साथ सम्बन्ध रखकर हुआ है, किन्तु वह कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं रखता; इसीतरह कर्म के परमाणु का उत्पाद उस कर्म के परमाणु पुद्‌गल द्रव्य के साथ सम्बन्ध रखकर हुआ है, किन्तु जीव के शुभभाव के कारण वह नहीं हुआ है।

यहाँ निमित्त के कारण उत्पाद हुआ ह्न यह बात नहीं ली है, इसी तरह पूर्व पर्याय के व्यय की बात भी नहीं ली है। क्रमशः प्रवर्तते उत्पाद की बात की है।

प्रश्न :ह्न शरीर में जीव होता है, तब तक ही तो बोला जाता है, जीव निकलने के बाद शरीर क्यों नहीं बोलता?

उत्तर :ह्न जीव की इच्छा नहीं थी अथवा जीव नहीं था, इसीलिए शब्द नहीं बोले गये ह्न ऐसा नहीं है; अपितु भाषा की पर्याय की मौनरूप अवस्था जो पहले नहीं थी और बाद में हुई; वह असत् उत्पाद, द्रव्य और अन्वय शक्ति, परमाणु के साथ सम्बन्ध रखकर हुआ है। उसका जीव के साथ सम्बन्ध नहीं है।

किसी जीव ने हाथ बढ़ाया; इसीलिए पर-जीव डूबने से बच गया, यह व्यवहार का कथन है। वास्तव में तो सामनेवाले जीव के बचनेवाली उत्पाद पर्याय जो पहले नहीं थी और वर्तमान में हुई, वह उस जीव की शक्ति के साथ सम्बन्ध रखती है, किन्तु अन्य जीव के साथ अथवा हाथ के साथ सम्बन्ध नहीं रखती।

दुकान की अवस्था का उत्पाद वह उस परमाणु और उनके गुणों के साथ सम्बन्ध रखकर हुआ है। वर्तमान अवस्था जो पूर्व में नहीं थी और वह हुई, इससे असत् उत्पाद हुआ है; किन्तु दुकान का चलना जीव के राग के साथ सम्बन्ध नहीं रखता।

अब, पर्यायों के कथन के समय भी असत् उत्पाद में वे भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ अन्य शक्तियों को प्राप्त करती हुई पर्यायों को द्रव्यरूप करती हैं।

दृष्टांत :ह्न आत्मा में सम्यक्त्व की पर्याय अथवा चारित्र की पर्याय द्रव्य से छूटकर अकेली नहीं रहती। यह पर्याय इस आत्मा की है ह्न ऐसा सिद्ध करती है, किन्तु अन्य द्रव्य की पर्यायें उसी द्रव्य को सिद्ध करती हैं।

असत् उत्पाद उसके द्रव्य को सिद्ध करता है, किन्तु वह किसी अन्य द्रव्य को सिद्ध नहीं करता। सोने में से हार, कुण्डल, कड़ा आदि आकार होते हैं। ये आकाररूप अवस्थाएँ पीलापन, चिकनापन, वजन आदि सोने के गुणों को प्राप्त करती हैं; किन्तु चिमटी, हथौड़ी, सोनी के हाथ अथवा सोनी के राग को प्राप्त नहीं करती। सोने के द्रव्य को सिद्ध करती हैं। सादृश्य शक्तियों को सिद्ध करती हैं।

रोटीरूप अवस्था आटे की सादृश्य शक्तियाँ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण को प्राप्त करती हुई आटे के परमाणु द्रव्य को सिद्ध करती हैं, किन्तु बाई अथवा बेलन को सिद्ध नहीं करतीं। विद्यार्थी पढ़ता है, वह उसके ज्ञान की उघाड़रूप अवस्था उसके सामान्य द्रव्य को बताती है, किन्तु होशियार शिक्षक को सिद्ध नहीं करती। क्षायिक सम्यक्त्व की पर्याय जिसे प्रगट हुई, वह उस आत्मा को सिद्ध करती है, किन्तु केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली को वह सिद्ध नहीं करती।

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य की अवस्था उस द्रव्य को सिद्ध करती है, किन्तु अन्य को सिद्ध नहीं करती।

अहो! ऐसी स्वतंत्रता की बात कही जाती हो, तब भी संयोगी दृष्टिवाला जीव स्वभाव को नहीं देखता और निमित्त तथा संयोग को ही देखता है, यह वास्तव में आश्चर्य की ही बात है।

सोनी था तो सोने का आकार बना; भगवान थे तो सम्यक्त्व हुआ ह्न आदि अनेक प्रकार से वह संयोग को ही देखता है, किन्तु भाई! संयोग भी तो एक वस्तु है। संयोग को भी उसके स्वभाव से देख! उस संयोग की अथवा वहाँ उपस्थित धन की अवस्था का उत्पाद, वह संयोगी अवस्था को सिद्ध करता है, किन्तु अन्य द्रव्य को सिद्ध नहीं करता। स्वभावदृष्टि से ज्ञान करके ज्ञेय को यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है।

सामान्य शक्तियाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि क्रमशः व्यतिरेक को प्राप्त करके द्रव्य को करती हैं और जो द्रव्य है, वही पर्याय है। आत्मा अवस्था के समय पर्यायरूप ही होता है, पर्याय से पृथक् नहीं रहता। कर्म के क्षयोपशम की पर्याय उसके द्रव्यरूप होकर रहती है और कर्मरूप द्रव्य पर्यायरूप होकर रहता है।

प्रश्न :ह्न चक्की का पाट नीचे स्थिर रहता है और ऊपर का पाट घूमता है, इसतरह ध्रुव भिन्न रहता है और उत्पाद-व्यय भिन्न परिणमन करते हैं ह्न तो क्या इसतरह होगा?

उत्तर :ह्न द्रव्य और उसकी शक्तियाँ तटस्थ रहकर पर्याय होती है ह्न ऐसा नहीं है। सम्पूर्ण द्रव्य पर्यायरूप होता है और पर्याय, द्रव्य (ध्रुव) के साथ रहती है। द्रव्य, पर्याय को नहीं छोड़ता और पर्याय, द्रव्य को नहीं छोड़ती।

द्रव्य के कथन के समय भी सत् के उत्पाद में द्रव्य को उत्पन्न करनेवाली अन्वय शक्तियाँ एक के बाद एक अवस्था को प्राप्त होती हुई द्रव्य को अवस्थारूप करती हैं। द्रव्य स्वयं ही पर्यायरूप होता है।

सोने को उत्पन्न करनेवाली अन्वय शक्तियाँ पीलापन, चिकनापन, वजन आदि क्रमशः प्रवृत्ति को प्राप्त करके अवस्था को प्राप्त होती हुई सोने को कुण्डल, कड़ा आदिरूप करती हैं। सोना स्वयं उस अवस्थारूप होता है। आत्मा की ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि शक्तियाँ स्वयं एक के बाद एक अवस्था को प्राप्त करके मतिज्ञानरूप, श्रुतज्ञानरूप, रागरूप अथवा अविकारी अवस्थारूप होती हैं। आत्मा स्वयं ही रागादिरूप अथवा श्रुतज्ञानरूप होता है। द्रव्यार्थिकनय से सत् उत्पाद है और पर्यायार्थिकनय से असद् उत्पाद है ह्न यह बात दोष रहित है ह्न बाधा रहित है।

भावार्थ पर प्रवचन

जिसका पहले अस्तित्व हो, उसकी ही उत्पत्ति को सत् उत्पाद कहते हैं और जिसका पहले अस्तित्व न हो, उसकी उत्पत्ति को असत् उत्पाद कहा गया है। जब अवस्था को गौण करके द्रव्य का मुख्यरूप से कथन किया जाता है अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञानादि अवस्था को गौण करके आत्मद्रव्य का कथन किया जावे तो जो अस्तित्व है, वही उत्पन्न होता है अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि शक्तियाँ ही उत्पन्न होती हैं।

जो है, उसमें से है 'है' हुआ है अर्थात् यहाँ ऐसा कैसे हुआ ह्न यह प्रश्न ही नहीं रहता। जो गुण हैं, वे स्वयं ही व्यक्तरूप हुए हैं। इसकारण द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य को सत् उत्पाद है और जब द्रव्य को गौण करके पर्याय का मुख्य रूप से कथन किया जाता है, तब वर्तमान पर्याय जो पूर्व में नहीं थी, वह उत्पन्न हुई है; इस कारण पर्यायार्थिकनय से द्रव्य को असत् उत्पाद कहा गया है। एक ही उत्पाद को दो संबंध लागू पड़ते हैं। द्रव्य के साथ संबंध कहना हो, तब सत्-उत्पाद और पर्याय के साथ संबंध कहना हो, तब द्रव्य को असत्-उत्पाद हुआ कहा गया है।

यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। केवलज्ञान आत्मा से पृथक् नहीं है और आत्मा केवलज्ञान से पृथक् नहीं है। पुद्गल द्रव्य में कैरी पीली अवस्था से पृथक् नहीं है और पीली अवस्था कैरी से पृथक् नहीं है, इसकारण पर्यायों की विवक्षा के समय भी, असत्-उत्पाद में जो पर्यायें हैं, वही द्रव्य है और जो द्रव्य है, वह पर्याय ही है। ध्रुव शक्ति पर्यायरूप होकर रहती है और पर्याय ध्रुव होकर रहती है।

पैसे की पर्याय जीवरूप होकर नहीं रहती, किन्तु उसके ध्रुव द्रव्यरूप होकर रहती है।

रोटी की पर्याय शरीररूप होकर नहीं रहती, किन्तु अपने परमाणु ध्रुवरूप होकर रहती है।

पुत्र उसके माँ-बाप रूप होकर के नहीं रहता, किन्तु आत्मा की पर्याय उसके आत्मा के ध्रुवरूप होकर रहती है और शरीर की पर्याय शरीर के ध्रुवरूप होकर रहती है। ध्रुव स्वभाव एक समय मात्र पर्याय में आता है और पर्यायरूप होता है। नाश से पहले अवस्था नहीं थी और बाद में हुई,

इसीलिए वह पृथक् रहता है ह्न ऐसा नहीं है। अवस्था उसकी सामान्य शक्ति के साथ सम्बन्ध रखकर रहती है।

जीव सँभालकर रखे तो घी सुरक्षित रहेगा और लापरवाही करने से घी गिर गया ह्न ऐसा नहीं है। जीव की लापरवाही की पर्याय उसके जीव ध्रुव को प्राप्त करके रहती है, किन्तु जीव घी को नहीं रखता, घी को सँभालता नहीं, घी को गिराता भी नहीं, घी की पर्याय उसके परमाणु को प्राप्त करके रहती है।

इसीलिए द्रव्य उसके पर्याय को प्राप्त करके रहता है और पर्यायें उसके द्रव्य को प्राप्त करके रहती हैं ह्न ऐसा सिद्ध होता है। ●

देह में विराजमान, पर देह से भिन्न एक चेतन तत्त्व है। यद्यपि उस चेतन तत्त्व में मोह-राग-द्वेष की विकारी तरंगें उठती हैं, तथापि वह ज्ञानानन्दस्वभावी ध्रुवतत्त्व उनसे भिन्न परम पदार्थ है, जिसके आश्रय से धर्म प्रगट होता है। उस प्रगट होने वाले धर्म को सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा अन्तर में प्रगट हो, इसके लिए परम पदार्थ ज्ञानानन्दस्वभावी ध्रुवतत्त्व की अनुभूति अत्यन्त आवश्यक है। उस अनुभूति को ही आत्मानुभूति कहते हैं। वह आत्मानुभूति जिसे प्रगट हो गई, 'पर' से भिन्न चैतन्य आत्मा का ज्ञान जिसे हो गया, वह शीघ्र ही भव-भ्रमण से छूट जायेगा। 'पर' से भिन्न चैतन्य आत्मा का ज्ञान ही भेदज्ञान है।

तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ-२७७-७८

प्रवचनसार गाथा ११२

अब (सर्व पर्यायों में द्रव्य अनन्य है अर्थात् वह का वही है, इसलिये उसके सत्-उत्पाद है ह्न इसप्रकार) सत्-उत्पाद को अनन्यत्व के द्वारा निश्चित करते हैं :ह्न

जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।
किं दव्वत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि॥११२॥

(हरिगीत)

परिणमित जिय नर देव हो या अन्य हो पर कभी भी।
द्रव्यत्व को छोड़े नहीं तो अन्य होवे किसतरह॥११२॥

अन्वयार्थ :ह्न [जीवः] जीव [भवन्] परिणमित होता हुआ [नरः] मनुष्य, [अमरः] देव [वा] अथवा [परः] अन्य (तिर्यंच, नारकी या सिद्ध) [भविष्यति] होगा, [पुनः] परन्तु [भूत्वा] मनुष्य देवादि होकर [किं] क्या वह [द्रव्यत्वं प्रजहाति] द्रव्यत्व को छोड़ देता है? [न जहत्] नहीं छोड़ता हुआ वह [अन्यः कथं भवति] अन्य कैसे हो सकता है? (अर्थात् वह अन्य नहीं, वह का वही है।)

टीका :ह्न प्रथम तो द्रव्य द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को कभी भी न छोड़ता हुआ सत् (विद्यमान) ही है। और द्रव्य के जो पर्यायभूत व्यतिरेक व्यक्ति का उत्पाद होता है, (अर्थात् उस उत्पाद में भी अन्वयशक्ति तो अपतित-अविनष्ट-निश्चल होने से द्रव्य वह का वही है, अन्य नहीं।) इसलिये अनन्यपने के द्वारा द्रव्य का सत्-उत्पाद निश्चित होता है, (अर्थात् उपर्युक्त कथनानुसार द्रव्य का द्रव्यापेक्षा से अनन्यपना होने से, उसके सत्-उत्पाद है ह्न ऐसा अनन्यपने द्वारा सिद्ध होता है।)

इसी बात को (उदाहरण से) स्पष्ट किया जाता है :ह्न

जीव, द्रव्य होने से और द्रव्य-पर्यायों में वर्तने से जीव नारकत्व

तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व, देवत्व और सिद्धत्व में से किसी एक पर्याय में अवश्यमेव (परिणमित) होगा; परन्तु वह जीव उस पर्यायरूप होकर क्या द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है? नहीं छोड़ता। यदि नहीं छोड़ता तो वह अन्य कैसे हो सकता है कि जिससे त्रिकोट सत्ता (तीन प्रकार की सत्ता, त्रैकालिक अस्तित्व) जिसके प्रगट है ह्न ऐसा वह (जीव), वही न हो? (अर्थात् तीनों काल में विद्यमान वह जीव अन्य नहीं, वह का वही है।)

भावार्थ :ह्न जीव मनुष्य-देवादिक पर्यायरूप परिणमित होता हुआ भी अन्य नहीं हो जाता, अनन्य रहता है, वह का वही रहता है; क्योंकि वह यह देव का जीव है, जो पूर्वभव में मनुष्य था और अमुक भव में तिर्यंच था ह्न ऐसा ज्ञान हो सकता है। इसप्रकार जीव की भाँति प्रत्येक द्रव्य अपनी सर्व पर्यायों में वह का वही रहता है, अन्य नहीं हो जाता ह्न अनन्य रहता है। इसप्रकार द्रव्य का अनन्यपना होने से द्रव्य का सत्-उत्पाद निश्चित होता है।

गाथा ११२ पर प्रवचन

जीव अवस्था धारण करने से मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारकी अथवा सिद्ध होगा; परन्तु मनुष्य-देवादिक होकर क्या वह द्रव्यत्व को छोड़ देता है? नहीं, वह द्रव्यत्व को नहीं छोड़ता, इसकारण वह पृथक् कैसे होगा? अर्थात् वह नहीं, वह का वही है।

प्रथम तो द्रव्य उसके गुण को कभी भी नहीं छोड़ता, इसकारण अस्तित्व ही है। आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य आदि शक्तियों को कभी भी नहीं छोड़ता; इसीतरह पुद्‌गल द्रव्य भी अपनी स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि शक्तियाँ कभी नहीं छोड़ता और द्रव्य को जो पर्यायभूत व्यतिरेक व्यक्ति का उत्पाद होता है, उसमें भी गुणों का सम्बन्ध रखकर उत्पाद हुआ है, इसीलिए द्रव्य वह का वही है।

एक जीव मनुष्य से देव होता है अथवा नारकी होता है, भिन्न-भिन्न अवस्था धारण करता है, इसकारण जीव की सामान्य शक्तियाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र छूट जाती हैं? कर्म के कारण नारकी हुआ ह्न यह बात तो ली ही नहीं है, किन्तु उसरूप अपनी योग्यता से होता है, तब भी जीव वह का वही रहता है, वह बदल नहीं जाता।

कैरी हरी में से पीली होती है अथवा अन्य अवस्थारूप होती है, तब उसके परमाणु उससे पृथक् नहीं रहते। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि शक्तियों के साथ सम्बन्ध रखकर अवस्था होती है। उत्पाद के समय सम्बन्ध रखकर अवस्था होती है। उत्पाद के समय गुणों का नाश नहीं होता। वे हैं ह्न निश्चल हैं, इसीलिए अनन्यत्व द्वारा द्रव्य का सत् उत्पाद सिद्ध होता है। द्रव्य के साथ मिलापवाला उत्पाद है। इस बात को दृष्टांत से समझाते हैं :ह्न जीव द्रव्य होने से और द्रव्य अवस्थाओं में वर्तता होने से जीव देव-नारकी से तिर्यंच, मनुष्य अथवा सिद्ध में से किसी भी एक पर्यायरूप जरूर परिणमित होगा।

जीव सामान्य, उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुण और उसकी नारकी, मनुष्य अथवा कोई भी एक अवस्था ह्न तीनों एक अखण्ड द्रव्य को बताते हैं। कर्म के कारण नारकीपना नहीं है, इसीतरह कर्म के अभाव के कारण सिद्धत्व नहीं है। नारकी आदिरूप वह जीव हुआ है। किसी भी पर्यायरूप जरूर रहेगा, किन्तु वह अन्यरूप नहीं रहेगा और अन्य के कारण भी नहीं रहेगा। जीव में नारकीरूप अवस्था निश्चय से स्वयं से है, पर से नहीं ह्न ऐसा बताकर द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों होकर अखण्ड ज्ञेय बताया है।

''समयसार में दृष्टि का विषय बताने के लिए ध्रुवस्वभाव की बात की है; वहाँ जीवस्थान, गुणस्थान जीव का कायमी स्वरूप नहीं होने के कारण उसे अजीव बताया है और यहाँ प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि क्रोधरूप, मानरूप, मिथ्यात्वरूप, अज्ञानरूप, मार्गणास्थानरूप अलग-अलग गुणस्थानों की दशारूप जीव स्वयं रहता है; इसप्रकार अखण्ड ज्ञेय बताकर अंशी ऐसे द्रव्य को बताया है। वह का वही द्रव्य ध्रुव शक्ति-

वान रहता है ह्न ऐसा ध्रुव द्रव्य बताना है। शक्तिमान पर वजन है। द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीनों का ज्ञान कराकर द्रव्यदृष्टि करवाना है।

क्या जीव भिन्न-भिन्न पर्यायोंरूप होने पर अपनी शक्तियों को छोड़ देता है? नहीं छोड़ता। यदि वह उसकी शक्तियों को नहीं छोड़ता तो जीव पृथक् (अन्य-अन्य) कैसे होगा? अर्थात् पृथक् नहीं हो सकता, वह का वही रहता है।

जीव मनुष्य आदि अवस्थारूप होने पर भी पृथक् नहीं हो जाता, वही रहता है। एक समय का उत्पाद वह जीव का नहीं होता तो द्रव्य ही नहीं रहता। कर्म के कारण उत्पाद माना जाये तो द्रव्य ही नहीं रहता। कर्म के कारण हो तो उत्पाद अन्य का हो जावे, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतः उत्पाद रहित द्रव्य नहीं हो सकता।

मनुष्यायु कर्म का व्यय हुआ, इस कारण मनुष्य का व्यय हुआ ह्न ऐसा नहीं है।

देवायु कर्म का उदय हुआ, इस कारण देवत्व का उदय हुआ ह्न ऐसा नहीं है।

मनुष्य पर्याय का स्वयं जाने का समय था, इसकारण वह गई है और जीव के देवत्व के उत्पाद का समय था, इसकारण उसका उत्पाद हुआ है; किन्तु वह कर्म के कारण देव नहीं हुआ है।

यहाँ तो कर्म को याद ही नहीं किया है, अपितु जीव की मुख्यता से बात करके गति का दृष्टांत दिया है।

क्रोध, मान, माया तथा लोभ के परिणाम के समय जीव स्वयं उन रूप परिणमित होता है; किन्तु कर्म के उदय के कारण क्रोध, मान, माया, अथवा लोभरूप नहीं होता। जीव का भवन अर्थात् होना ह्न परिणमना स्वयं से है।

क्या अनेकरूप परिणाम होने पर भी जीव अन्य द्रव्यरूप हो जाता है? नहीं! जीव यह का यही रहता है। एक-एक समय में नई-नई पर्याय होती है। ध्रुव की सत्ता, पर्यायरूप होने की है। यदि उसे पर से होना माने

तो वह जड़ मूढ़ होता है और ध्रुव की सत्ता माने बिना अकेले अंश को माने तो वह पर्यायमूढ़ होता है।

पुण्य कर्म बाँधे तो जीव स्वर्ग जायेगा, यह बात तो सही है न?

नहीं! कर्म तो जड़ है, जड़ के कारण जीव स्वर्ग में नहीं जाता; अपितु जीव की स्वयं की योग्यता के कारण जीव स्वर्ग में जाता है। देव की पर्याय में जीव उस रूप रहता है और देवगति कर्म की पर्याय का उत्पाद तो कर्म में उस रूप होकर रहता है।

इस देव का जीव वही है, जो पूर्व भव में मनुष्य था और अमुक भव में तिर्यंच था ह्न ऐसा ज्ञान हो सकता है।

इस तरह जीव के समान प्रत्येक द्रव्य अपनी सर्व पर्यायों में वह का वही रहता है, किन्तु अन्यरूप नहीं हो जाता। पूर्व अवस्था का व्यय होने पर भी उसका ज्ञान हो सकता है, किन्तु पूर्व अवस्था थी; इसलिए उसका ज्ञान होगा ह्न ऐसा नहीं है।

परमाणु में हरी, पीली अवस्था होने पर भी परमाणु ऐसे का ऐसा ही रहता है, किन्तु पृथक् नहीं होता।

गाथा १११ में द्रव्य को सत् उत्पाद और असत् उत्पाद होने में अविरोध है ह्न ऐसा कहा था और इस गाथा में सत् उत्पाद को दृष्टांत देकर समझाया है।

इसतरह द्रव्य का अनन्यत्व होने से ह्न पृथक्त्व नहीं होने से सत्-उत्पाद सिद्ध होता है।

●

हमें आत्मानुभव होता क्यों नहीं ? जितनी कचास है, जितनी पुरुषार्थ में उग्रता की कमी है; उतनी ही देर है, भवितव्य भी ऐसा ही है। लगता है अब अधिक काल शेष नहीं है, चिन्ता न करो। तुम्हारी यह रुचि की तीव्रता ही बताती है कि अब अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी।

ह्न सत्य की खोज, पृष्ठ-२०२